जीवनी

हज़रत मुहम्मद

(सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम)

मुहम्मद इनायतुल्लाह सुब्हानी
अनुवाद
नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

अल्लाह दयावान कृपाशील के नाम से

अपनी बात

काफ़ी दिन हुए मिस्र में शिक्षा एवं प्रशिक्षण विभाग के महा निर्देशक जनाब मुहम्मद अहमद बरानिक़ की निगरानी में अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की सीरत पर एक पुस्तक-माला प्रकाशित हुई थी, जो चौदह खण्डों पर आधारित थी। मौलाना मुहम्मद अब्दुल-हई साहब, सम्पादक अल-हसनात की इच्छा पर इसे उर्दू भाषा में लाने का कार्य मौलाना मुहम्मद इनायतुल्लाह सुब्हानी साहब के हाथों अंजाम पाया। सुब्हानी साहब ने उक्त अरबी किताब-माला के आधार पर और जहाँ ज़रूरत महसूस की वहाँ कुछ घटा-बढ़ाकर उर्दू में 'मुहम्मदे-अरबी' *(सल्ल.)* के नाम से एक किताब तैयार की जो बहुत पसन्द की गई।

इस किताब की लोकप्रियता को देखते हुए विचार हुआ कि इसे हिन्दी-जगत तक भी पहुँचाया जाए। इस किताब को हिन्दी में रूपान्तरित करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, इसपर मैं ख़ुदा का जितना भी शुक्र अदा करूँ कम है।

इस किताब के अध्ययन से अल्लाह के पैग़म्बर हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* के जीवन की प्रमुख झलकियाँ आपके सामने आएंगी और इस किताब को पढ़नेवाला ऐसा महसूस करेगा, जैसे वह खुद उस दौर से गुज़र रहा है, जिस दौर से पैग़म्बरे-इस्लाम गुज़रे हैं।

सलामती और रहमत हो उस पाक नबी पर जिसने मानवता को दुनिया में रहने का सही ढंग और ख़ुदा तक पहुँचने का सच्चा मार्ग दिखाया। मुबारकबाद हो उन लोगों को जो स्वयं अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के मार्ग पर चलें और दुनिया को इस मार्ग पर चलने की दावत दें।

भवदीय

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

हज़रत मुहम्मद
सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम

विषय-वस्तु की एक झलक

(1) भई प्रात की बेला

(2) किरणें फूटती हैं

(3) ख़ुदा की आवाज़

(4) पहली पुकार

(5) कशमकश

(6) काली घटाएँ

(7) नाज़ुक दौर

(8) कारवाँ बनता गया

(9) विदा! ऐ वतन!

(10) सत्य का सन्देश तलवारों की छाँव में

(11) ख़ूने-दिल व जिगर से ज़िन्दगी को सींचा है

(12) तौहीद के दीप पर आंधियों के हमले

(13) और ......बुत टूट गए

(14) जीवन के अन्तिम दिन

सांकेतिक शब्दार्थ

संक्षिप्त रूप में इस्तेमाल कुछ ऐसे शब्द इस किताब में आएँगे, जिनकी मुकम्मल शक्ल और मतलब किताब के अध्ययन से पहले जान लेना ज़रूरी है, ताकि अध्ययन के दौरान कोई परेशानी न हो। वे शब्द निम्नलिखित हैं :

अलैहि॰ : इसकी मुकम्मल शक्ल है, **'अलैहिस्सलाम'** यानी 'उनपर सलामती हो!' नबियों और फ़रिश्तों के नाम के साथ यह आदर और प्रेम-सूचक शब्द बढ़ा देते हैं।

रज़ि॰ : इसका पूर्ण रूप है **'रज़ियल्लाहु अन्हु'**। इसके मायने हैं, 'अल्लाहे उनसे राज़ी हो!' **सहाबी** के नाम के साथ यह आदर और प्रेम-सूचक दुआ बढ़ा देते हैं।

'सहाबी' उस ख़ुश क़िस्मत मुसलमान को कहते हैं, जिसे नबी *(सल्ल॰)* से मुलाक़ात का मौक़ा मिला हो। **सहाबी** का बहुवचन **सहाबा** है और स्त्रीलिंग **सहाबियः** है।

रज़ि॰ : अगर किसी **सहाबियः** के नाम के साथ इस्तेमाल हुआ हो तो रज़ियल्लाहु अन्हा पढ़ते हैं और अगर सहाबा के लिए आए तो **रज़ियल्लाहु अन्हुम** कहते हैं।

सल्ल॰ : इसका पूर्ण रूप है, **'सल-लल-लाहु अलैहि वसल्लम'** जिसका मतलब है, 'अल्लाह उनपर रहमत और सलामती की बारिश करे!' हज़रत मुहम्मद *(सल्ल॰)* का नाम लिखते, लेते या सुनते हैं तो आदर और प्रेम के लिए दुआ के ये शब्द बढ़ा देते हैं।

भई प्रात की बेला

(1) अरब में शिर्क का आरम्भ

(2) अरब में शिर्क कहाँ से आया?

(3) शिर्क मंज़िल-ब-मंज़िल

(4) मक्का में सबसे पहला बुत किस तरह आया?

(5) अज्ञान काल के मशहूर बुत

(6) रिसालत के सिलसिले की अहम कड़ियाँ

(7) ज़मज़म कुँए की दोबारा खुदाई

(8) अब्दुल-मुत्तलिब की मन्नत

(9) अब्दुल्लाह की जान बच गई!

(10) अब्दुल्लाह की शादी आमिना से

(11) अब्दुल्लाह की दर्दनाक मौत

(12) मुबारक सुबह का उदय

(13) आमिना का लाल हलीमा की गोद में

(14) दाई हलीमा के घर बरकतें ही बरकतें

(15) बीबी आमिना की मौत

(16) आमिना का लाल दादा की सरपरस्ती में

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

'अल्लाह दयावान कृपाशील के नाम से'

(1)

इबराहीमी दीन (धर्म) अरब में ज़्यादा नहीं ठहरा। पूरे देश में फिर बुत परस्ती फैल गई। लोग ख़ुदा के साथ मूर्तियों को भी पूजने लगे। उनको ख़ुदा तक पहुँचने का माध्यम और ज़रीआ समझने लगे। उनका अक़ीदा था कि ये ख़ुदा के साझी और हमारे सिफ़ारिशी हैं। ये ही ज़रूरतों को पूरी करने और मुसीबतों को दूर करनेवाले हैं, इसलिए वे मुसीबतों में उन्हीं को पुकारते, फ़रियादें भी उन ही से करते और मुरादें भी उन ही से माँगते।

हज़रत इबराहीम तो ख़ालिस तौहीद (एकेश्वरवाद) की दावत देते थे और शिर्क और मूर्ति-पूजा से बेज़ार थे, लेकिन ये लोग उनकी शिक्षाओं को बिलकुल ही भूल गए और मूर्तियों के पुजारी बनकर रह गए। लेकिन ऐसा एक दम ही नहीं हो गया। इसमें भी ज़माना लगा। न जाने कितनी शताब्दियाँ बीत गईं और न जाने कितनी नस्लें गुज़र गईं, तब कहीं जाकर शिर्क के पैर जमे।

यह शिर्क आया कहाँ से? मूर्तिपूजा का चलन हुआ कैसे? बात यह थी कि हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* और इस्माईल *(अलैहि.)* से अरबों को अत्यधिक श्रद्धा और मुहब्बत थी। काबा का निर्माण उन्ही दोनों ने किया था, इसलिए उन्हें काबा से भी बड़ी मुहब्बत थी, फिर यह मुहब्बत यहीं तक सीमित न रही, इसके आस-पास जितने पत्थर थे, वे भी उनकी नज़र में बहुत ही प्रिय और बरकतवाले बन गए।

अब अगर वे मक्का से बाहर जाते, चाहे रोज़गार के लिए, चाहे कारोबार के लिए, तो वहाँ का एक पत्थर भी साथ ले लेते। उनका ख़याल था कि इससे सफ़र में बरकत होगी और मक़सद में कामियाबी।

फिर बात यहीं तक सीमित न रही। जो लोग मक्का से कुछ दूर रहते थे वे काबा के पास से पत्थर उठा-उठाकर ले गए और अपने यहाँ लगा लिए। अब वे काबा की तरह उनका तवाफ़ (परिक्रमा) करते। हजरे असवद[1] की तरह उनको चूमते।

---

1. एक विशेष काला पत्थर जो काबा में लगा हुआ है।

इस तरह वह अक़ीदा, जिसके ख़िलाफ़ हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* ने मुसलसल जिहाद किया था, अरब में फिर लौट आया।

फिर एक बात और थी, जिसकी वजह से यह अक़ीदा और तेज़ी से फैला। ज्वालामुखी पहाड़ फटते तो लावे की शक्ल में जो पत्थर निकलते, उनके बारे में धारणा थी कि ये टूटे हुए सितारे हैं, जो आकाश से धरती पर आ गए हैं। यहीं से वे पत्थर पवित्र समझे जाने लगे, क्योंकि कुछ जातियों के दिल में तारों की महिमा रच-बस गई थी इसलिए कि उनमें जगत सृष्टा की क़ुदरत का जलवा था, उसकी शक्ति और महानता की छाया थी।

इसलिए जिन पत्थरों के बारे में उन्हें विश्वास होता कि ये सितारों से टूटे हैं, उनको बहुत बरकतवाला समझते और बड़ी इज़्ज़त करते। फिर इज़्ज़त का यह ख़याल और आगे बढ़ा और अब उनकी पूजा भी होने लगी।

नस्लों पर नस्लें गुज़रती रहीं, यहाँ तक कि यह अक़ीदा बिलकुल पक्का हो गया। अब कोई भी पत्थर मिल जाता, जो ख़ूबसूरत और सुडौल होता, या जिसकी बनावट में कुछ नयापन होता, या किसी जानदार की शक्ल से मिलता-जुलता होता, उसकी महानता उनके दिल में बैठ जाती और वे उसको पूजने लगते।

फिर एक क़दम और आगे बढ़े। अब वे पत्थरों को खुद काटते-छाँटते। अपनी पसन्द की मूर्तियाँ बनाते, जिस बुज़ुर्ग या देवता से चाहते, उनका सम्बन्ध जोड़ देते और जो दिल चाहता उनके नाम रख लेते, फिर उनको एक जगह स्थापित करके पूजना शुरू कर देते। प्रेम और श्रद्धा में उनपर भेंट चढ़ाते, उनके नाम पर मन्नतें मानते। उनका ख़याल था कि इस तरह वे देवता अल्लाह के यहाँ सिफ़ारिश करेंगे, बिगड़े हुए काम भी बना देंगे और आख़िरत में मुक्ति और नजात के साधन भी सिद्ध होंगे।

मक्का में सबसे पहले जो मूर्ति लाई गई और फिर काबा के आँगन में लगाई गई, वह 'हुबल' की मूर्ति थी। उसको लानेवाला व्यक्ति अम्र-बिन-लुहय्यी था। यह कहीं सफ़र कर रहा था, रास्ते में एक जगह से गुज़र हुआ। देखा, लोग मूर्तियाँ पूज रहे हैं। उसको बहुत भला मालूम हुआ। उनसे कहा, एक मूर्ति हमें भी दे दो। हम अपने यहाँ ले जाएँगे।

हम भी इसकी पूजा करेंगे। लोग हँसी-खुशी तैयार हो गए और वह मूर्ति लेकर मक्का आ गया।

फिर धीरे-धीरे काबा में और मूर्तियाँ आ गईं। उनमें दो प्रमुख मूर्तियाँ 'इसाफ़' और 'नाइला' भी थीं। ये ज़मज़म नामक कुँए पर लगी थीं। उस समय वह बिलकुल पट चुका था। बहुत से तो उसका नाम तक न जानते थे।

यही नहीं, ज़्यादातर क़बीलों की अपनी-अपनी मूर्तियाँ भी थीं, जो इधर-उधर विभिन्न इलाक़ों में लगी हुई थीं। मिसाल के तौर पर–

उज़्ज़ा : यह क़ुरैश की सबसे बड़ी मूर्ति थी।

लात : ताइफ़ में एक क़बीला था सक़ीफ़, यह उसकी मूर्ति थी।

मनात : मदीना में दो मशहूर क़बीले थे, औस और ख़ज़रज, यह उनकी मूर्ति थी।

इनके अलावा और भी बहुत सी मूर्तियाँ थीं।

काबा वही घर था, जिसे इबराहीम *(अलैहि.)* और इसमाईल *(अलैहि.)* ने अपने मुबारक हाथों से बनाया था। बड़ी आरज़ुओं और तमन्नाओं से बनाया था। जिसके बनाने में अपना ख़ून पसीना एक किया था। क्यों? सिर्फ़ इसलिए कि यह तौहीद (एकेश्वरवाद) का केन्द्र बने। रब का सबसे बड़ा घर बने। लेकिन क़ौम ने साथ न दिया। यही अल्लाह का घर बुतख़ाना बन गया। यही तौहीद का केन्द्र शिर्क का स्रोत बन गया। लोग इबराहीम *(अलैहि.)* की दी हुई शिक्षा को भूल बैठे। अब उन्हें याद भी नहीं रहा कि कभी इसी घर से तौहीद की आवाज़ बुलन्द हुई थी, बल्कि अब उनके लिए इसकी कल्पना भी मुश्किल थी कि मूर्ति-पूजा के अलावा भी कोई सत्य हो सकता है। जिस बाप ने मूर्तियों के ख़िलाफ़ बग़ावत करके पूरी क़ौम की दुश्मनी मोल ली थी, अब उसी बाप की औलाद मूर्तियों पर दिल और जान से न्योछावर थी।

(2)

मक्का में न जाने कितने इनक़िलाब आए और गुज़र गए। न जाने कितनी नस्लें आईं और मिट गईं। न जाने कितनी क़ौमें सत्ता में आईं और बेदख़ल हो गईं, यहाँ तक कि बागडोर क़ुसई के हाथ में आई। ये किलाब के बेटे थे और इस्माईली ख़ानदान से इनका ताल्लुक़ था। क़ुरैश के रिश्तेदारों और सम्बन्धियों ने भी साथ दिया और हर प्रकार से उनका सहयोग किया।

मक्का में अब तक ख़ेमे ही ख़ेमे थे, इमारतों का नाम-निशान न था। किसी में यह हिम्मत न थी कि काबा की ज़मीन में कोई घर बनवाए या कोई दूसरी इमारत बनवाए जो बैतुल्लाह (काबा) से ऊँची हो।

क़ुसई पहले आदमी हैं, जिन्होंने यह हिम्मत दिखाई। उन्होंने एक इमारत बनवाई, जिसका नाम 'दारुन्नदवा' (मन्त्रणालय) रखा। वहाँ वे मक्का के बड़े लोगों को जमा करते। बैठकर नागरिक समस्याओं पर विचार करते। अहम मामलों में उनसे सलाह लेते। वहीं पर मुक़द्दमों के फ़ैसले भी होते। शादी, विवाह के मामले भी तय होते।

फिर क़ुसई ने क़ुरैश को भी इमारतें बनाने का हुक्म दिया। इस प्रकार उन्होंने भी काबा के आस-पास अपने घर बनाए परन्तु बीच में बहुत काफ़ी जगह छोड़ दी कि हाजी आएँ तो तवाफ़ आदि में कोई परेशानी न हो।

क़ुसई ने अपने ज़माने में कई बड़े-बड़े काम किए, जो लम्बे समय तक यादगार रहे। मशअरे-हराम उन्ही का तामीर किया हुआ है, जहाँ हज के दिनों में दीप जलते थे। उन्ही ने तमाम क़ुरैश को जमा किया और तक़रीर की :

> "भाइयो! काबा की ज़ियारत के लिए हाजी न जाने कहाँ-कहाँ से आते हैं। सैकड़ों, हज़ारों मील की दूरी तय करके आते हैं। भाइयो! उनकी मेहमान नवाज़ी और ख़िदमत करना तुम्हारी ज़िम्मेदारी है।"

फिर इस सिलसिले में उन्होंने दो विभाग स्थापित किए–

(1) **'सिक़ाया'** : इसका काम था कि हाजी आएँ तो उनके लिए

मीठे पानी का इन्तिज़ाम करे। ज़मज़म कुँआ पट चुका था, इसलिए पानी की कमी भी थी, बहुत दूर-दूर से लाना पड़ता। नबीज़ (खजूर का मीठा पानी) आदि का इन्तिज़ाम भी इसी विभाग के सुपुर्द था, जो अरबों का ख़ास पेय था।

(2) 'रिफ़ादा' : क़ुरैश ने एक सालाना रक़म तय की। इससे मिना और मक्का में हाजियों का सत्कार किया जाता। इस विभाग के ज़िम्मे इसी का प्रबन्ध था।

काबा से सम्बन्धित भी एक विभाग बनाया और इसका नाम "हिजाबा" रखा। जो इस विभाग का ज़िम्मेदार होता, काबा की कुंजी उसी के पास रहती। काबा से सम्बन्धित सारे काम उसी के सुपुर्द होते। कोई काबा के अन्दर जाना चाहता तो पहले उससे इजाज़त लेता। उसकी इजाज़त के बग़ैर अन्दर जाना मना था।

ये तीनों विभाग अरबों के नज़दीक बहुत ही प्रतिष्ठित और इज़्ज़तवाले थे। बाद में इन विभागों को इतना महत्त्व प्राप्त हो गया कि अगर किसी को उनमें से कोई विभाग मिल जाता या किसी विभाग में दूसरे का साझीदार हो जाता तो वह मारे खुशी के फूला न समाता। वह समझता कि मानो उसे किसी राज्य की बादशाही मिल गई। यही वजह है कि क़ुसई ने इन सारे विभागों को अपने लिए ख़ास कर लिया था।

ये विभाग तो हज और काबा से सम्बन्धित थे। इनके अलावा और भी कई विभाग थे, जिनपर क़ुसई का ही अधिकार था।

फिर जब क़ुसई बूढ़े हो गए, सारी ज़िम्मेदारियों का भार उठाना मुश्किल हो गया तो उन्होंने ये तीनों विभाग अब्दुद्दार के सुपुर्द कर दिए। ये क़ुसई के सबसे बड़े बेटे थे।

बाद में यह विभाग अब्दुद्दार से उनके बेटों के हिस्से में आए।

क़ुसई के एक और बेटे थे— अब्दे-मनाफ़। उनकी औलाद अपने असर और पहुँच के लिहाज़ से अब्दुद्दार की औलाद से बढ़ी हुई थी। उन्होंने चचेरे भाइयों से इन विभागों को छीनने का फ़ैसला कर लिया।

अतएव बड़ी कशमकश रही। अब्दुद्दार के ख़ानदान ने विभागों में उनको शरीक करने से इनकार कर दिया और लड़ाई की तैयारियाँ शुरू हो गईं। लेकिन फिर सुलह हो गई और तय हुआ कि ये विभाग दोनों में

बाँट दिए जाएँ।

बँटवारा हुआ तो अब्दे-मनाफ़ की औलाद के हिस्से में 'सिक़ाया' और 'रिफ़ादा' आया।

अब्दे-मनाफ़ के एक बेटे का नाम हाशिम था। ये भाइयों में सबसे बड़े थे और क़ौम में सबके प्यारे थे। माल-दौलत की भी उनके पास कोई कमी न थी। इसलिए ये दोनों पद उन्ही को मिले।

हाशिम बहुत दर्द-मन्द, ग़रीबों के हमदर्द और रहमदिल इनसान थे। दादा की रिवायत को उन्होंने भी जारी रखा। हमेशा हाजियों के लिए खाने का इन्तिज़ाम करते, न सिर्फ़ हाजियों के लिए इन्तिज़ाम करते, बल्कि मक्का के ग़रीबों का भी बड़ा ख़याल रखते। उन्होंने मक्कावालों की माली हालत बेहतर बनाने के भी तरीक़े सोचे। इसका इन्तिज़ाम किया कि साल में दो बार व्यापारियों के क़ाफ़िले विदेश जाएँ और वहाँ कारोबार करें। इस प्रकार हर साल एक क़ाफ़िला गर्मियों में जाता और एक सर्दियों में। गर्मियों में शाम (सीरिया) की ओर जाता और सर्दियों में यमन की ओर।

रूमी बादशाह से इजाज़त हासिल की कि क़ुरैशी उसके देश में कारोबारी सामान लेकर जाएँ तो उनसे कोई टैक्स न लिया जाए। हब्शा के राजा नज्जाशी से भी इसी तरह की इजाज़त हासिल की।

अरब में रास्ते असुरक्षित थे। हर समय लुट जाने का डर रहता। हाशिम ने इसको सामने रखते हुए दौरा किया और विभिन्न क़बीलों में जा-जा कर उनसे समझौता किया, "क़ुरैश का कोई क़ाफ़िला गुज़रे तो उसको नुक़सान न पहुँचाएँ। इस एहसान के बदले में क़ुरैशी क़ाफ़िले उन क़बीलों में खुद जाएँगे। उनकी ज़रूरत की चीज़ें ले जाएँगे और उनसे लेन-देन करेंगे।" यही वजह है कि अरब में लूट-मार का बाज़ार गर्म होते हुए भी क़ुरैश का क़ाफ़िला हमेशा सुरक्षित रहा।

इस तरह उन्होंने विभिन्न क़बीलों और देशों से राजनीतिक और कारोबारी समझौते किए। इससे क़ुरैश बिलकुल महफ़ूज़ हो गए और कारोबारी मैदान में ख़ूब आगे बढ़े।

एक बार की बात है, मक्का में सख़्त अकाल पड़ा। हाशिम ने सालन में रोटियाँ चूरकर लोगों को खिलाईं। उसी वक़्त से उनका नाम

हाशिम पड़ गया। क्योंकि हश्म के मायने हैं चूरा करना और हाशिम के मायने हैं चूरा करनेवाला।

हाशिम की यह उपाधि इस तरह प्रसिद्ध हुई कि उसने असल नाम को दबा दिया। उनका असल नाम था अम्र। परन्तु अब यह नाम किसी को याद नहीं रहा।

(3)

एक साल हाशिम कारोबार के लिए शाम (सीरिया) गए। साथ में व्यापारियों का पूरा काफ़िला था। वापस हुए तो यसरिब (मदीना) से गुज़र हुआ। काफ़िले में कुछ व्यापारी यसरिब के भी थे, जिनको वहाँ की एक औरत ने अपना कारोबारी माल देकर भेजा था।

क़ाफ़िला यसरिब पहुँचा तो वह औरत अपने व्यापारियों के पास आई और सफ़र की रिपोर्ट लेने लगी, "क्या बेचा? क्या ख़रीदा?" बातों से ऐसा लगता, जैसे वह कोई बहुत ही होशियार, तजरिबेकार और माहिर औरत हो। हाशिम यह सब देख रहे थे और दिल ही दिल में उसकी ख़ूबियों की तारीफ़ कर रहे थे। उसकी अक़्लमन्दी, सूझ-बूझ और चेहरे पर शराफ़त और संजीदगी की आभा देखकर मोहित हो रहे थे।

"यह कौन औरत है?" हाशिम ने पूछा।

व्यापारियों ने जवाब दिया, "नाम इसका सलमा है। बाप का नाम अम्र है। ख़ज़रज का एक ख़ानदान है बनी-नज्जार। यह उसी ख़ानदान से है।"

हाशिम : "क्या यह शादीशुदा है?"

जवाब मिला : "नहीं, अलबत्ता यह अपने यहाँ की बड़ी इज़्ज़तवाली औरत है, चाहती है कि कोई ऐसा शौहर मिल जाए जो इसकी आज़ादी को न छीने, अपनी आज़ादी को ख़त्म करना इसे पसन्द नहीं।"

हाशिम : "पूछो, क्या वह मुझे पसन्द करेगी?"

पूछा गया, तो वह तुरन्त तैयार हो गई, क्योंकि वह हाशिम को अच्छी तरह जानती थी। उसे मालूम था कि क़ौम में उनका क्या मक़ाम है।

अतएव हाशिम से उसकी शादी हो गई और वे उसे लेकर मक्का चले आए। नहाँ एक ज़माने तक साथ रहते रहे। फिर वह यसरिब लौट

आई। वहाँ एक लड़का हुआ, जिसका नाम उसने शैबा रखा।

इसके बाद कई साल बीत गए।

फिर एक साल गर्मी में तिजारती क़ाफ़िला चला तो साथ ही हाशिम भी गए। शाम (सीरिया) में एक जगह है ग़ज़्ज़ा। वहाँ पहुँचकर उनका इन्तिक़ाल हो गया। अब सारे विभाग मुत्तलिब के हाथ में आ गए, क्योंकि वे उनके भाई थे।

शैबा मुत्तलिब के भतीजे थे। ये यसरिब में माँ के पास ही रह रहे थे। अब मुत्तलिब को उनकी फ़िक्र हुई। फ़ैसला किया, भतीजे को मक्का लाएँ कि यहीं उनका ददिहाल था। यहीं बाप का पूरा परिवार था। मुत्तलिब इस मक़सद से यसरिब गए।

भाभी सलमा से मुलाक़ात हुई तो बोले—

"मेरा भतीजा बड़ा हो चुका है। हाथ पैर मज़बूत हो चुके हैं। चाहता हूँ अब उसे अपने यहाँ ले जाऊँ। तुम्हें मालूम ही है, हम क़ौम में ख़ानदान की हैसियत से सबसे ऊँचे हैं। वहाँ वह इज़्ज़त से रहेगा, यहाँ तो बेचारा परदेस में पड़ा है।"

सलमा : "उसकी जुदाई मेरे लिए मौत है। लेकिन यह भी पसन्द नहीं कि वह अपने बुज़ुर्गों से जुदा रहे। ज़रा पूछो, देखो, उसकी क्या इच्छा है?"

मुत्तलिब ने भतीजे से पूछा, तो जवाब मिला : "जब तक माँ की इजाज़त न हो, मैं कहीं नहीं जा सकता।"

सलमा ने मुत्तलिब की ज़िद देखी तो तैयार हो गई। कलेजे पर पत्थर रखकर इजाज़त दे दी। मुत्तलिब तीन दिन वहाँ मेहमान रहे, चौथे दिन शैबा को साथ लेकर मक्का रवाना हुए। उस समय शैबा की उम्र आठ साल थी।

दोनों एक ही ऊँट पर सवार थे, मुत्तलिब आगे थे और शैबा पीछे। मक्का में दाख़िल हुए, तो लोगों को गुमान हुआ कि यह मुत्तलिब का ग़ुलाम है। कहीं बाहर से लेकर आ रहे हैं। देखते ही शोर मचाया :

"मुत्तलिब ग़ुलाम लाए! क्या तुमने अब्दुल-मुत्तलिब यानी मुत्तलिब का ग़ुलाम देखा? देखो यह है अब्दुल-मुत्तलिब!"

मुत्तलिब ने इस तरह की आवाज़ें सुनीं तो बोले :

"क़ुरैशवालो! तुम भी अजीब लोग हो!! यह तो मेरा भतीजा है, बड़े भाई हाशिम का बेटा, यसरिब में था, वहाँ से लेकर आ रहा हूँ।"

लेकिन यह नया नाम (अब्दुल-मुत्तलिब) जो ख़ुद-ब-ख़ुद ज़ुबानों पर आ गया, अस्ल नाम पर छा गया। माँ ने उनका नाम शैबा रखा था और वे उसी नाम से पुकारे जाते थे, लेकिन अब अस्ल नाम किसी को याद न रहा और उसी वक़्त से वे अब्दुल-मुत्तलिब हो गए!

(4)

मुत्तलिब का इन्तिक़ाल हुआ तो अब्दुल-मुत्तलिब समझदार हो चुके थे। हाथ-पाँव मज़बूत हो चुके थे और शरीर में ताक़त आ चुकी थी। चचा का काम उन्होंने संभाल लिया। 'सिक़ाया' और 'रिफ़ादा' उनके हाथ में आ गए।

आबादी में तो कुँए थे नहीं। जो कुछ थे, मक्का के आसपास थे, उनमें भी कोई यहाँ था तो कोई वहाँ। हाजियों के लिए पानी वहीं से लाया जाता, काबे के पास कुछ हौज़ होते, उनमें भरा जाता। हौज़ों को बराबर भरते रहना फिर जब-तब उनकी सफ़ाई करना, एक समस्या थी। इसमें तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना होता। अब्दुल-मुत्तलिब फ़िक्र में पड़ गए।

ज़मज़म कुँए के बारे में यह मशहूर था कि उसका पानी मीठा और मज़ेदार था, कभी सूखता भी नहीं। जितनी ज़रूरत होती, हासिल हो जाता। न कोई तकलीफ़ उठानी पड़ती, न किसी तरह की परेशानी होती। अब्दुल-मुत्तलिब को इसका ख़याल आया।

"ज़मज़म को किसने पाटा और क्यों पाटा?" अब्दुल-मुत्तलिब ने क़ौम के बड़े-बूढ़े और जानकार लोगों से पूछा।

"पहले यहाँ जुरहुम नामक क़बीले की हुकूमत थी। उनका आख़िरी राजा मुज़ाज़ जुरहुमी था। जब उसकी क़ौम बिगड़ गई और बनाव से ज़्यादा बिगाड़ के काम करने लगी, तो बनूँ-ख़ुज़ाआ इसे सहन न कर सके। उन्होंने जुरहुम को बे-दख़ल करने का फ़ैसला कर लिया। इसके लिए जंग की। मैदान बनू-ख़ुज़ाआ के हाथ रहा। अब जुरहुम को यहाँ से जाना पड़ा। जाते समय मुज़ाज़ से और कुछ तो बन न पड़ा, परन्तु काबे में जो भेंट और चढ़ावे आए थे, ज़मज़म के अन्दर डाले और ऊपर से

पाट दिया।" जानकार लोगों ने ज़मज़म का पूरा इतिहास बयान कर दिया।

"अच्छा, तो जब तक ज़मज़म की खुदाई, सफ़ाई न हो जाए और पहले की तरह फिर वह जारी न हो जाए, उस समय तक हमें चैन से नहीं बैठना है।" अब्दुल-मुत्तलिब ने कहा।

उन्हीं दिनों ऐसा हुआ कि रात में वे सो रहे थे, सोते ही में यह आवाज़ सुनी :

"ज़मज़म की खुदाई कर डालो।"

यह ग़ैबी आवाज़ आई और बराबर आती रही। इससे उनकी हिम्मत और बढ़ी।

अतः खुदाई शुरू हो गई। लेकिन यह कोई आसान काम न था। जान तोड़ मेहनत करनी पड़ी। ख़ून-पसीना एक कर दिया, तब कहीं जाकर पानी निकला।

ज़मज़म में मुज़ाज़ की तलवारें भी मिलीं और काबा के चढ़ावे और नज़राने भी मिले। नज़रानों में सोने के दो हिरन भी थे।

अब्दुल-मुत्तलिब ने तलवारों से काबा के दरवाज़े बनवाए और हिरनों को उनके दोनों ओर रख दिया कि काबा की शोभा बढ़े।

ज़मज़म की खुदाई में अब्दुल-मुत्तलिब थक कर चूर हो गए थे, जिसका दिल पर काफ़ी असर हुआ और तनहाई का एहसास बहुत ज़्यादा सताने लगा। उस वक़्त तक केवल एक ही औलाद थी, जिसका नाम हारिस था। उन्होंने मन्नत मानी और अल्लाह से दुआ की :

"ऐ अल्लाह! अगर तू मुझे दस बेटे दे और सबके सब जवान होकर मेरा हाथ बटाने लगें तो एक को तेरे नाम पर क़ुरबान कर दूँगा।"

अब्दुल-मुत्तलिब की यह तमन्ना पूरी हुई। अल्लाह ने उनको दस बेटे दिए। सब पले-बढ़े, जवान हुए और उनका हाथ बँटाने लगे।

अब मन्नत पूरी करने का समय आ गया! अब्दुल-मुत्तलिब ने बेटों को जमा किया और सारा क़िस्सा सुनाया। बेटे बोले : "अब्बा जान! हम सब दिल और जान से हाज़िर हैं, जिसको चाहें, क़ुरबान कर दें।"

"अच्छा, तो अलग-अलग तीरों पर अपने-अपने नाम लिख लाओ।" बाप ने दिल पर पत्थर रखकर उन सबको निर्देश दिया।

सब नाम लिखकर बाप के पास ले गए।

अब्दुल-मुत्तलिब ने उन तीरों को लिया और काबा में आए। वहाँ फ़ाल (शकुन) निकालनेवाले से मिले और उसको वे तीर दे दिए कि मालूम करे मूर्तियों के सरदार 'हुबल' को कौन पसन्द है?

उस समय मक्का में रिवाज था, जब कोई अहम काम सामने होता तो तीरों से फ़ाल (शकुन) निकलवाते और इस तरह देवताओं की मर्ज़ी मालूम करते। महन्त या पुरोहित तीरों को ले जाता और देवताओं के सामने एक ख़ास तरीक़े से फिराता। जिस तीर का मुँह देवता की ओर हो जाता, समझते, बस यही देवता की पसन्द है और फिर उसी के अनुसार काम करते।

महन्त ने अब्दुल-मुत्तलिब के तीर 'हुबल' के पास फिराए तो छोटे बेटे अब्दुल्लाह का नाम निकला।

अब्दुल्लाह अब्दुल-मुत्तलिब के चहेते बेटे थे। भाइयों में सबसे ज़्यादा प्यारे थे। लेकिन करते क्या? मजबूर थे, उनकी बलि चढ़ाने के अलावा कोई रास्ता न था कि वही हुबल देवता को पसन्द थे!

अब्दुल-मुत्तलिब ने बेटे का हाथ पकड़ा। लेकर ज़मज़म के पास आए। वहीं बलि की वेदी थी। जिसको भी कुछ क़ुरबान करना होता, वहीं लाकर करता। इसाफ़ और नाइला के सामने कि ये उनकी बड़ी देवियाँ थीं।

यह ख़बर लोगों के दिलों पर बिजली बनकर गिरी और जंगल की आग की तरह सारे शहर में फैल गई। जो जिस हाल में था, अब्दुल-मुत्तलिब की तरफ़ दौड़ पड़ा। देखते ही देखते सारे लोग जमा हो गए। जिसे देखिए, उसकी ज़ुबान पर यह यही था :

"नहीं, नहीं अब्दुल-मुत्तलिब! अब्दुल्लाह की बलि हरगिज़ न दीजिए।"

अब्दुल-मुत्तलिब अजीब कश्मकश में पड़ गए।

"मैं तो मन्नत मान चुका हूँ। मन्नत पूरी करना ज़रूरी है। आख़िर मैं करूँ तो क्या करूँ।?" अब्दुल-मुत्तलिब ने अपनी बेबसी ज़ाहिर करते हुए कहा।

"अगर माल प्राण-मूल्य बन सके तो हम राज़ी हैं। ऊँट क़ुरबान करने से काम बन जाए तो उसके लिए भी तैयार हैं।" सबके दिलों की धड़कनें तेज़ हो गईं। सबके होंटों पर एक ही तरह की बात थी।

लोग बहुत देर तक सोचते रहे। आपस में सलाह करते रहे कि क्या करें? फिर तय हुआ, यसरिब के निकट एक ज्योतिषी औरत है। गुत्थियाँ सुलझाने में वह माहिर है, चलकर उससे पूछा जाए। हो सकता है कि उसी के उपाय से यह गुत्थी भी सुलझ जाए।

लोग गए। उस औरत से मिले। उसको सारा हाल बताया। सब कुछ सुन लेने के बाद उसने पूछा :

"किसी क़ैदी को छुड़ाना हो या किसी अपराधी की जान बचानी हो तो तुम लोग कितना प्राण-मूल्य देते हो?"

"दस ऊँट! दस ऊँट" सब लोग एक साथ बोल पड़े। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे आशा की कोई किरण निकल आई हो।

"तो दस ऊँट और अब्दुल्लाह के नाम की पर्ची डालो, अगर ऊँटों के नाम की पर्ची निकल आए तो ठीक है, वरना बीस ऊँट कर दो। अगर फिर भी अब्दुल्लाह का नाम निकले तो दस और बढ़ा दो। इसी तरह दस-दस बढ़ाते जाओ, यहाँ तक कि तुम्हारा रब मान जाए।"

लोगों ने ऐसा ही किया। दस ऊँट और अब्दुल्लाह के नाम की पर्चियाँ डालीं तो अब्दुल्लाह का नाम निकला। दस बढ़ा दिए, फिर अब्दुल्लाह का नाम निकला। दस और बढ़ा दिए, फिर भी अब्दुल्लाह का ही नाम निकला। लोग इसी तरह दस-दस बढ़ाते रहे और अब्दुल्लाह का ही नाम निकलता रहा।

उधर अब्दुल-मुत्तलिब खड़े विनम्रता पूर्वक दुआ में लगे थे। "ऐ खुदा! प्राण-मूल्य क़ुबूल कर ले। ऐ रब! अब्दुल्लाह की जान बचा ले।"

जब बढ़ते-बढ़ते सौ ऊँट हो गए तो पर्ची ऊँटों के नाम की निकल आई। अब क्या था, लोग ख़ुशी से उछल पड़े। अब्दुल-मुत्तलिब को हर तरफ़ से मुबारकबाद दी जाने लगी।

"मुबारक हो, अब्दुल-मुत्तलिब! अल्लाह ने बेटे का फ़िदिया (प्राण-मूल्य) क़बूल कर लिया।"

लेकिन अब्दुल-मुत्तलिब को अभी इत्मीनान न हुआ। दो बार और चिट्ठी डलवाई कि कोई शक न रह जाए। खुदा की मर्ज़ी क्या है, साफ़-साफ़ मालूम हो जाए। जब पूरी तरह इत्मीनान हो गया तो ऊँटों की क़ुरबानी की गई और वहीं छोड़ दिए गए कि जो चाहे, उनसे फ़ायदा उठाए।

(5)

अब्दुल्लाह बड़े सुन्दर थे, उठती हुई जवानी थी, जो सुन्दरता में चार चाँद लगा रही थी। मुखड़ा क्या था, चाँद का टुकड़ा था। हर देखनेवाली आँख उन पर न्योछावर थी और बहुत-सी औरतें उनसे शादी की इच्छुक थीं।

मन्नतवाली घटना की तो घर-घर चर्चा थी। इससे उनकी अहमियत और बढ़ गई और सब उन्हें दिल से चाहने लगीं। बहुत सी औरतों ने शादी की ख़ाहिश ज़ाहिर की और कोशिश भी की। लेकिन यह सौभाग्य सबको कैसे मिलता! वह तो एक ही को मिलना था!

उनके बेटे की माँ कौन होगी? यह भी ख़ुदा के यहाँ तय था। उनकी शादी आमिना से हुई, जो क़ुरैश की सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाली औरत थीं और बनी-ज़ोहरा के सरदार की बेटी थीं।

बाप ने बेटे की ओर से शादी का पैग़ाम दिया। आमिना के घरवालों ने इसे अपने लिए सौभाग्य की बात समझी, ख़ुशी-ख़ुशी तैयार हो गए। चटपट शादी हो गई। रिवाज था कि दूल्हा शादी के बाद तीन दिन ससुराल में रहेगा। अब्दुल्लाह भी तीन दिन ससुराल में रहे। फिर घर चले आए। साथ में दुल्हन भी आई।

शादी को अभी कुछ ही दिन हुए थे, व्यापारियों का एक क़ाफ़िला शाम (सीरिया) जा रहा था। उसके साथ अब्दुल्लाह भी हो लिए। वापसी में मदीना से गुज़रे। यहाँ उनके बाप का ननिहाल था। थके तो थे ही, दम लेने के लिए ठहर गए। इत्तिफ़ाक़ से बीमार पड़ गए। साथियों ने उन्हें वहीं छोड़ दिया और मक्का को चल दिए। वहाँ पहुँचकर बाप को बीमारी की ख़बर दी।

अब्दुल-मुत्तलिब ने बीमारी का हाल सुना तो फ़ौरन बड़े बेटे हारिस को मदीना दौड़ाया कि वहाँ जाकर भाई की ख़िदमत करें और जब अच्छे हो जाएँ तो साथ लेकर आएँ।

लेकिन अफ़सोस......! हारिस ने अपने भाई अब्दुल्लाह को न देखा। वे उन्हें अपने साथ मक्का न लाए कि बाप की आँखें ठंडी होतीं, दुल्हन के दिल को क़रार आता और क़ौम को सुकून हासिल होता! क्या करते! क़िस्मत ही में न था।

कुछ दिन पहले ही अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल हो चुका था और शरीर मिट्टी के हवाले किया जा चुका था। बाप से दूर! दुल्हन से दूर! क़ौम से दूर! दूर, बहुत दूर!! हारिस वापस आए तो अब्दुल्लाह के बजाए अब्दुल्लाह की मौत की ख़बर लाए!

किसे मालूम था कि शाम (सीरिया) का यह सफ़र आख़िरी सफ़र बननेवाला है। और जहाँ अब्दुल्लाह की जान बचाने के उपाय का पता लगा था, वहीं अल्लाह का फ़रिश्ता मौत का पैग़ाम लेकर उतरनेवाला है। मदीना जहाँ से लोग कल अब्दुल्लाह की नई ज़िन्दगी का मुबारक पैग़ाम लेकर आए थे, आज वहीं से अब्दुल्लाह के इन्तिक़ाल की दुखद ख़बर आ रही है।

ख़बर बड़ी दर्दनाक थी। नव-जवान की मौत! वह भी अब्दुल्लाह जैसे नव-जवान की!! जिसने सुना तड़प उठा। अब्दुल्लाह ने नई ज़िन्दगी पाई थी। उनकी जान बचने पर सभी को ग़ैर-मामूली ख़ुशी थी। अचानक मौत की ख़बर सुनकर लोगों को दुख भी ग़ैर-मामूली हुआ। सारी क़ौम ग़म में डूबी हुई थी। हर ओर उदासी छाई हुई थी।

बूढ़े बाप पर तो दुख और ग़म का पहाड़ टूट पड़ा। ग़म से दिल टुकड़े-टुकड़े हो गया। अब्दुल्लाह की मौत पर सब्र आए तो कैसे आए?

और आमिना का तो सुहाग ही उजड़ गया। दिल की दुनिया वीरान हो गई। सारे अरमान हसरतों में बदल गए। कितनी उम्मीदें थीं, जो मिट्टी में मिल गईं। कितने सुन्दर सपने थे जो बेकार साबित हुए। कितनी ख़ाहिशें और तमन्नाएँ थीं जो सीने ही में दबकर रह गईं। कल जिस औरत से क़ुरैश की सुन्दरियाँ ईर्ष्या कर रही थीं, आज उसकी हालत दयनीय थी। जो सिर दूसरे सिरों के बीच इज़्ज़त और सम्मान से ऊँचा हो रहा था, आज वह ग़म की वजह से काँधे पर नापसन्द बोझ सा लग रहा था।

अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल हुआ तो आमिना गर्भवती थीं।

अल्लाह की क़ुदरत! कुछ ही दिन पहले अब्दुल्लाह को हुबल देवता के नाम पर क़ुरबान किया जा रहा था, मगर अल्लाह ने उन्हें भेंट चढ़ने से बचा लिया। उस समय उनके पास अल्लाह की एक महान अमानत थी। मानवता की सबसे क़ीमती चीज़ थी। जब तक वह किसी और के सुपुर्द न हो जाती, असम्भव था कि अब्दुल्लाह इस दुनिया से चले जाते।

अब वह अमानत आमिना को सौंपी जा चुकी थी। अब्दुल्लाह से अल्लाह को जो काम लेना मंज़ूर था, वह पूरा हो गया तो अल्लाह ने उन्हें उठा लिया। अब कोई फ़िदिया (प्राण-मूल्य) काम नहीं आ सकता था। क़िस्मत का फ़ैसला अटल था।

अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल हुआ तो उनकी उम्र 25 साल थी।

(6)

सोमवार का दिन था। रबीउल-अव्वल की बारह तारीख़ थी कि आमिना के यहाँ एक बच्चे ने जन्म लिया।

नवजात शिशु बहुत ही सुन्दर था। चाँद भी उसके सामने फीका था।

आमिना ने अपने ससुर अब्दुल-मुत्तलिब को ख़बर कराई कि आकर पोते को देख लें।

अब्दुल-मुत्तलिब दौड़े हुए आए। देखते ही खिल उठे। एक तो लड़का था और वह भी अब्दुल्लाह का!

वे खुशी से निहाल हो गए। बच्चे को गोद में लिया। सीने से लगाया। माथे को चूमा, फिर लिए हुए काबा पहुँचे। उसका तवाफ़ किया और बच्चे का नाम मुहम्मद *(सल्ल.)* रखा।

मुहम्मद का अर्थ है, हर तरह से प्रशंसनीय। वह जिसे सब पसन्द करें। सब अच्छा कहें।

जन्म के सातवें दिन अब्दुल-मुत्तलिब ने ऊँट क़ुरबान कराया और क़ुरैश की दावत की। लोग खाना खा चुके तो किसी ने पूछा :

"अब्दुल-मुत्तलिब! क्या वजह है, आपने पोते का नाम मुहम्मद रखा? ख़ानदानी नाम क्यों नहीं रखा?"

"मैंने चाहा आकाश पर भी इसकी तारीफ़ हो और धरती पर भी। स्रष्टा को भी प्यारा हो और लोगों को भी।" अब्दुल-मुत्तलिब ने बहुत ही सादे अन्दाज़ में अपने दिल की तमन्ना लोगों के सामने रख दी।

क़ुरैश में ऊँचे घरानों की औरतें अपने बच्चों को दूध खुद नहीं पिलाती थीं। देहातों से दाइयों की टोलियाँ आतीं। वे बच्चों को अपने यहाँ ले जातीं। उनको दूध पिलातीं। लालन-पालन करतीं। जब वे बड़े हो जाते तो वापस कर जातीं और दूसरे बच्चे ले जातीं। इससे बच्चे ख़ूब मोटे-ताज़े और तन्दुरुस्त रहते। अच्छी अरबी भी सीख लेते। दाइयों के

आने के मौसम तय थे। मुहम्मद *(सल्ल.)* का जन्म हुआ तो उस समय कोई दाई न मिली। अब्दुल्लाह का एक भाई था, अबू-लहब। उसकी एक दासी थी, सुवैबा। सात दिन आमिना ने खुद दूध पिलाया फिर बच्चे को सुवैबा के हवाले कर दिया कि जब तक कोई दाई न मिले, उसको दूध पिलाए।

सुवैबा ने बस कुछ ही दिन दूध पिलाया था कि बनी-सअद क़बीले की दाइयाँ आ गईं।

दाइयाँ बच्चे तलाश करने लगीं। वे घरों में जातीं। माँओं को अपनी-अपनी ख़िदमत पेश करतीं। माँएँ जिसको पसन्द करतीं, अपना बच्चा उसके हवाले कर देतीं।

सभी माँओं ने दाइयाँ चुन लीं और सभी दाइयों की गोदें भर गईं, हाँ केवल एक दाई रह गई। उसको किसी ने न पूछा, इसलिए कि वह कुछ कमज़ोर और दुर्बल थी। ग़रीबी का भी शिकार थी। यह थी अबू-ज़ुऐब की बेटी हलीमा!

और बच्चा भी केवल एक ही रह गया। दाइयाँ उससे दूर रहीं। कोई उसे लेने को तैयार न थी। वह बच्चा था, अब्दुल्लाह का बेटा मुहम्मद *(सल्ल.)*!

दाइयों ने सुना, मुहम्मद यतीम है। बाप के साए से महरूम है। उन्होंने उसकी तरफ़ ध्यान न दिया। उसको पालना-पोसना बेकार समझा। उसको दूध पिलाना व्यर्थ जाना। बोलीं, इस यतीम को लेकर क्या करें। इसका दादा हमें क्या दे देगा? माँ से भी क्या मिल जाएगा?

अब वापसी का वक़्त आ गया। दाइयों ने घर लौटने का इरादा किया, हर एक खुश थी कि उसकी गोद में बच्चा था।

हलीमा का शौहर साथ था। हलीमा ने उससे कहा :

"खुदा की क़सम, मुझे शर्म आती है, सारी सहेलियों की गोदें भरी हों, एक मेरी ही गोद ख़ाली रहे। मैं तो जाती हूँ, उसी यतीम को लिए लेती हूँ। ख़ाली हाथ लौटने से तो अच्छा है उस यतीम को ही लेते चलें।"

"जाओ, ले आओ। क्या हरज है? हो सकता है, अल्लाह उसी में बरकत दे!" शौहर ने समर्थन करते हुए कहा।

हलीमा बच्चे को लेने के लिए आमिना के पास पहुँचीं।

आमिना को दुख था कि उनके लाल को किसी ने न पूछा। सहेलियों के बच्चे हाथों-हाथ लिए, परन्तु उनके जिगर के टुकड़े को लेना पसन्द न किया। हलीमा ने बच्चे को लिया तो आमिना का बुझा हुआ चेहरा ख़ुशी से दमक उठा।

हलीमा ने मुहम्मद *(सल्ल.)* को छाती से लगाया और मुँह में सूखा स्तन दे दिया, जिसमें दूध नाम मात्र को ही था।

लेकिन...... हलीमा की हैरानी की हद न रही!! स्तन मुँह में देते ही उन्हें ऐसा लगा जैसे दूध का स्रोत जारी हो गया। यकायक छाती भर गई। बच्चा दूध पी रहा था और दूध उसके मुँह से टपका पड़ रहा था।

मुहम्मद *(सल्ल.)* का पेट भर गया तो हलीमा के बच्चे ने भी जी भर कर पिया, हालाँकि इससे पहले अकेले उसी के लिए दूध नाकाफ़ी होता था। पीता लेकिन कभी तृप्त न हो पाता। छाती चूसता और चूसकर ही रह जाता!

हलीमा की एक ऊँटनी थी। दुबली-पतली, बिलकुल मरियल। भूख लगी तो शौहर उसे दुहने उठे, आँखें फटी की फटी रह गईं। वह थन जो हमेशा सूखा रहता, आज बिलकुल भरा हुआ था और दूध ख़ुद-ब-ख़ुद टपका पड़ रहा था। शौहर ने ख़ुद भी पिया, बीवी को भी पिलाया। दोनों ने जी भर कर पिया।

रात हुई तो दोनों ने बच्चों को पहलू में सुला लिया। फिर ख़ुद सो गए। नींद इतने आराम और चैन की थी कि बिलकुल बेख़बर हो गए।

सुबह हुई तो शौहर ने कहा : "हलीमा! क्या ख़याल है?!! ख़ुदा की क़सम बहुत मुबारक बच्चा पा गईं तुम!"

हलीमा बोलीं : "ख़ुदा की क़सम, मेरा भी यही ख़याल है।"

दाइयों का क़ाफ़िला घरों को लौटा। हलीमा की गधी आगे-आगे थी और मस्ती के साथ आगे बढ़ रही थी। सहेलियों ने देखा तो आवाज़ दी—

"वाह री, अबू-ज़ुऐब की बेटी!! ज़रा ठहरो ना, हमें भी तो आ लेने दो। अरे, यह वही गधी तो है, जिसपर तुम आई थीं। यह तो रास्ते में रुक-रुक जाती थी। बार-बार तुम पीछे हो जाती थीं!!"

हलीमा ने कहा : "हाँ, हाँ अल्लाह की क़सम, यह वही गधी है!"

सहेलियाँ बोलीं : "ऐसी बेकार गधी में यह तेज़ी और चुस्ती कहाँ से आ गई? यह तो बड़ी अजीब बात है।"

(7)

अब हलीमा के यहाँ बरकतों की बारिश होने लगी। हर-हर चीज़ में बरकत नज़र आने लगी। जानवर मोटे हो गए। दूध से थन फूल आए। हर तरफ़ बरकत ही बरकत थी।

धीरे-धीरे दो साल बीत गए। आमिना का लाल हलीमा का दूध पीता। हलीमा की एक बेटी थी शैमा। उसकी गोदियों में हुमकता। फैले हुए मैदान का खुला माहौल होता और गाँव की सादा ज़िन्दगी। शरीर तेज़ी से बढ़ा, हाथ-पैर में ताक़त आ गई और बच्चा ख़ूब तन्दुरुस्त हो गया।

दूध पीने के दिन पूरे हो गए। अब समय आया कि बच्चा फिर माँ की गोद में जाए और उसके घर की शोभा बने।

लेकिन क्या हलीमा इस बच्चे को जुदा कर दें? ऐसे बच्चे को जो उनके लिए बरकत ही बरकत था। दयालुता की मूर्ति था। सुख का साधन और सौभाग्य का लक्षण था। किसी प्रकार भी जी उसे छोड़ने के लिए तैयार न था। तमन्ना थी, कुछ दिनों और साथ रहे कि बरकतों की बारिश देर तक होती रहे!

हलीमा बच्चे को लेकर माँ के घर की ओर चलीं। लेकिन इरादा था कि उनसे गुज़ारिश करेंगी, बच्चे को कुछ दिन और साथ रखने की इजाज़त दे दें।

वे आमिना के पास आईं। बोलीं :

"मुझे डर है, अगर मुहम्मद अभी से मक्का में रह गया तो कहीं यहाँ की आबो-हवा से कोई नुक़सान न पहुँच जाए। क्यों न आप कुछ दिन और हमारे यहाँ रहने दें। तनिक और बड़ा हो जाए तो आ जाएगा।"

हलीमा आमिना से ज़िद करती रहीं। बराबर आग्रह करती रहीं। तरह-तरह से मनाती रहीं। मक्का की आबो-हवा से डराती रहीं, यहाँ तक कि वे तैयार हो गईं।

अब क्या था। हलीमा का दिल ख़ुशी से झूमने लगा। आँखें चमक उठीं। चेहरा दमक उठा और वे मुहम्मद *(सल्ल.)* को लेकर फिर अपने घर आ गईं।

मुहम्मद *(सल्ल.)* फिर उसी खुले मैदान में आ गए। अब फिर वही

खुला माहौल था, रेत के टीले थे। चिकने-चिकने पत्थर थे। वही साथी और हमजोली थे। मुहम्मद *(सल्ल.)* फिर उसी तरह पत्थरों से खेलते। रेत पर उछलते और बच्चों के साथ इधर से उधर दौड़ते-फिरते।

मुहम्मद *(सल्ल.)* अब पाँच साल के हो गए।

हलीमा से जुदाई की घड़ी फिर आन पहुँची!

मुहम्मद *(सल्ल.)* से हलीमा को बेहद प्यार था। वे सचमुच उनकी आँखों की ठंडक थे। उनके दिल का चैन थे। मुहम्मद *(सल्ल.)* को भी हलीमा से बड़ा लगाव था। नबी बनने के बाद भी जब वे आपके पास आईं तो आप "मेरी माँ, मेरी माँ" कहकर लिपट गए। हलीमा के लिए मुहम्मद *(सल्ल.)* की जुदाई दिल दहलानेवाली थी, लेकिन करतीं भी क्या कि अब घर पहुँचाना ज़रूरी था। और ज़्यादा रोकना मुमकिन न था।

एक दूसरी वजह भी थी, जिसकी वजह से हलीमा ने और जल्दी की।

एक दिन वे बैठी हुई थीं। साथ में मुहम्मद *(सल्ल.)* भी थे। इतने में हब्शा के कुछ ईसाइयों का गुज़र हुआ। बच्चे पर नज़र पड़ते ही ठहर गए। क़रीब आए और उसे बड़े ग़ौर से देखने लगे। एक-एक चीज़ की जाँच करने लगे। हलीमा से पूछा भी :

"कैसा बच्चा है यह?"

फिर वे आपस में बातें करने लगे :

"इस बच्चे को ले लें। इसको अपने यहाँ ले चलेंगे। यक़ीनन यह बच्चा एक महान पुरुष होगा। हम ख़ूब जानते हैं, यह क्या बनेगा।"

हलीमा उनका मतलब समझ गईं। उनके इरादों को भाँप गईं। उनकी बातों से घबरा उठीं। डरीं, कहीं सचमुच इसे छीन न लें। मौक़ा पाकर उचक न ले जाएँ या कोई नुक़सान न पहुँचा दें। नज़र बचाकर भाग खड़ी हुईं और बच्चे को लेकर ग़ायब हो गईं। उन्हें उम्मीद न थी कि इस तरह वे भाग सकेंगी और बच्चे को उनसे बचा सकेंगी।

जितनी जल्द हो सका, वे आमिना के पास पहुँचीं। उनकी अमानत उनके हवाले की, तब जाकर कहीं उन्हें सुकून मिला।

(8)

अब माँ की ममता थी और दादा की सरपरस्ती। दोनों मुहम्मद *(सल्ल.)* से बहुत प्यार करते। हमेशा अपनी निगाहों के सामने

रखते। हर तरह से उनका ख़याल रखते। वे छः साल के हो गए तो माँ का जी चाहा कि चलकर शौहर की क़ब्र देखें। अतः मदीना के लिए रवाना हो गईं। मुहम्मद *(सल्ल.)* को भी लेती गईं। शौहर की एक दासी थी, उम्मे-ऐमन, वह भी सफ़र में साथ थी। वहाँ एक मशहूर ख़ानदान था, बनी-नज्जार। मुहम्मद *(सल्ल.)* के दादा का ननिहाल उसी ख़ानदान में था। आमिना जाकर वहीं ठहरीं।

आमिना मदीना पहुँचीं तो प्यारे बेटे को वह घर दिखाया, जहाँ उसके प्यारे बाप का इन्तिक़ाल हुआ था। वह जगह भी दिखाई जहाँ वे हमेशा की नींद सो रहे थे।

आज पहला दिन था कि इस मासूम बालक ने यतीमी का मतलब समझा। आज पहला मौक़ा था कि उसके हृदय-दर्पण पर दुख और ग़म का अक्स पड़ा।

वहाँ एक महीना बिताकर आमिना ने घर लौटने का इरादा किया और मुहम्मद *(सल्ल.)* को लेकर मक्का के लिए रवाना हो गईं।

शौहर की तरह आमिना भी रास्ते में बीमार हो गईं। मक्का और मदीना के बीच में एक गाँव है, अबवा। वहाँ पहुँचीं तो हालत नाज़ुक हो गई और फिर संभल न सकीं। उनके प्राण पखेरु उड़ गए और वहीं उनकी क़ब्र बनी। अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल भी तो परदेस में ही हुआ था! और दफ़न भी इसी तरह हुए थे। क़ौम और वतन से बहुत दूर!

आप यतीम थे। बाप के साए से महरूम थे। अभी इस यतीमी का एहसास हुआ ही था कि माँ भी चल बसीं......! बाप की क़ब्र देखी ही थी कि माँ की भी क़ब्र तैयार हो गई।

अब आप अकेले रह गए। माँ साथ थीं, तब भी आपको यतीमी का दुख था। भला दिल पर क्या बीती होगी, जबकि यह सहारा भी टूट गया......! ग़म पर ग़म......! एक से बढ़कर दूसरा......!

उम्मे-ऐमन आपको अपने साथ घर लाईं। मक्का पहुँचे तो आप दुखी थे। आज आमिना के लाल की हालत देखी नहीं जा रही थी।

इस दुखद घटना का अब्दुल-मुत्तलिब पर बड़ा असर पड़ा। मुहम्मद *(सल्ल.)* के लिए उनके सीने में माँ की ममता और बाप का प्यार उबल पड़ा। अब वे उनपर बेहद मेहरबान हो गए। पहले से अधिक मानने लगे। बड़ा प्रेम प्रकट करते। दया और कृपा की वर्षा करते। हर

क्षण उनका ख़याल रखते। हर तरह से तसल्ली देते। खुद अपने-आपसे और अपनी औलाद से बढ़कर उनकी फ़िक्र रखते।

अब्दुल-मुत्तलिब क़ुरैश के सरदार थे। काबा की छाँव तले अपनी गद्दी पर बैठते तो बेटे आदर-सम्मान में गद्दी से ज़रा दूर बैठते थे। लेकिन मुहम्मद *(सल्ल.)* आ जाते तो उन्हें अपने पास बुलाते। अपनी गद्दी पर बिठाते और प्यार से पीठ सहलाते। लेकिन अफ़सोस! अब्दुल-मुत्तलिब भी ज़्यादा दिन न ठहरे। मुहम्मद *(सल्ल.)* अभी आठ साल के हुए थे कि दादा भी चल बसे। दादा की मौत पर उनको बड़ा दुःख हुआ! वैसा ही दुःख जैसा इससे पहले माँ-बाप की मौत पर हुआ था!

नहीं, दादा का ग़म माँ-बाप से भी बढ़कर था। अब वे कुछ समझदार हो चुके थे। सोचने-समझने की ताक़त पैदा हो रही थी! भावों और भावनाओं में व्यापकता और गहराई आ रही थी। अनुग्रह और प्रेम की हक़ीक़त को समझने लगे थे। एहसान और मेहरबानियों का मूल्य पहचानने लगे थे। स्वभावतः महरूमी का एहसास भी उतना ही अधिक था। छिन जाने का ग़म भी उतना ही गहरा था।

आँखों से आँसू जारी थे। दिल दर्द और ग़म से चूर था। खुद तड़प रहे थे, औरों को तड़पा रहे थे। यहाँ तक कि दादा का शरीर, आह...... प्यारे दादा का शरीर क़ब्र की भयावह कोठरी में छिप गया और फिर हमेशा के लिए ओझल हो गया!!

किरणें फूटती हैं

(1) अब्दुल-मुत्तलिब की मौत, अबू-तालिब की सरपरस्ती

(2) शाम (सीरिया) का पहला सफ़र

(3) हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) की दिलचस्पियाँ

(4) शाम (सीरिया) का दूसरा सफ़र

(5) बीबी ख़दीजा से शादी

(6) पवित्र रूप

(7) ख़दीजा के साथ आप *(सल्ल॰)* का रहन-सहन

(8) काबा का नव-निर्माण

(9) परोक्ष से मदद

(10) क़ुरैश तबाही के दरवाज़े पर!

(11) हज़रत मुहम्मद का आदर्श-चरित्र

(1)

"(मुहम्मद!) क्या ऐसा नहीं कि उस (अल्लाह) ने तुमको यतीम पाया तो ठिकाना प्रदान किया और (सत्य मार्ग से) बेख़बर पाया ते सीधा रास्ता दिखलाया?" (क़ुरआन, 93:6-7)

बेशक! ऐसा ही है!

माँ-बाप की आँखें बन्द हुईं तो मुहम्मद *(सल्ल.)* अल्लाह की रहमतों से महरूम न हुए। यह उसी की बड़ी मेहरबानी थी कि आपको ऐसे दादा मिले जो आप पर माँ-बाप की तरह मेहरबान थे। फिर ऐसे चचा मिले जिन्होंने आपको कभी यतीमी का एहसास तक न होने दिया।

दादा अब्दुल-मुत्तलिब का इन्तिक़ाल हुआ तो अबू-तालिब ने आपको ममता की गोद में ले लिया। ये अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे थे और आपके चचा होते थे। अब्दुल-मुत्तलिब ने अपनी मौत से पहले उनको आपका सरपरस्त बना दिया था और वसीयत कर गए थे कि "मुहम्मद का हर तरह से ख़याल रखना और उनकी ख़बरगीरी और देखभाल में कोई कसर बाक़ी न रखना।"

अब्दुल-मुत्तलिब की कई बीवियाँ थीं। उन बीवियों से दस बेटे थे। अबू-तालिब न तो भाइयों में सबसे बड़े थे और न सबसे अधिक मालदार ही थे। लेकिन सबसे ज़्यादा साहसी थे। सज्जनता और शराफ़त में भी सबसे बढ़कर थे। स्वभाव के भी बड़े सुशील थे। फिर मुहम्मद (सल्ल.) के बाप अब्दुल्लाह और वे सगे भाई थे। अन्य भाई दूसरी बीवियों से थे। इसलिए कोई हैरत की बात नहीं, अगर अब्दुल-मुत्तलिब ने यह ज़िम्मेदारी उनपर डाली और उन्हें यह वसीयत कर गए।

अब्दुल-मुत्तलिब की तरह अबू-तालिब भी मुहम्मद (सल्ल.) को बहुत मानते। हमेशा भतीजे को अपने साथ रखते। सोते तो साथ लेकर सोते। कहीं जाते तो साथ लेकर जाते। आपके आगे न उनको अपनी जान की

परवाह होती न अपने बच्चों की। उनको आपसे इतनी मुहब्बत क्यों थी? आप दिन-रात उनकी निगाहों के सामने रहते। वे देख रहे थे कि आपके अन्दर सच्चाई और ईमानदारी है, शराफ़त और पाकबाज़ी है। बात-बात से सूझ-बूझ और अक़्लमन्दी का सुबूत मिलता है। एक-एक चीज़ क़ाबिलियत का पता देती है।

चचा की सरपरस्ती में चार साल बीत गए। शरीर बढ़ता रहा। बुद्धि में व्यापकता आती रही और नैसर्गिक योग्यताएँ और शक्तियाँ उभरती रहीं।

बारह साल के हुए तो शरीर में काफ़ी मज़बूती और ताक़त आ चुकी थी। सोचने-समझने में ग़ैरमामूली गहराई थी। बुद्धिमत्ता कमाल की थी। रूह में महानता और अत्यधिक उच्चता थी। उसमें बड़ी व्यापकता थी तथा चेतना और संवेदनशीलता से भरपूर थी।

अभी आप *(सल्ल.)* की उम्र ही क्या थी? बालिग़ भी न हुए थे। लेकिन प्रतिभा का सितारा माथे पर चमक रहा था। आपमें ग़ैर-मामूली सलाहियतों की झलक मिल रही थी और अद्भुत चमत्कार नज़र आ रहे थे। अबू-तालिब देख-देखकर सख़्त हैरान और आश्चर्यचकित होते थे। अब उनकी नज़र में आप बच्चे न थे, बल्कि सूझ-बूझ रखनेवाले बड़ों के समान थे। वे बे-झिझक हर तरह के मामलों में आप से राय-मशवरा करते, जैसे कोई व्यक्ति अपने किसी बराबर के साथी से करता है।

उसी ज़माने में जबकि आपकी उम्र लगभग बारह साल थी, अबू-तालिब ने शाम (सीरिया) के कारोबारी सफ़र पर जाने का इरादा किया। सफ़र बड़ा लम्बा था और राह कठिन। इसलिए आपको ले जाने का ख़याल न था। लेकिन जब वे चलने लगे तो आप लिपट गए। अबू-तालिब ने सोचा, सफ़र मुश्किल तो है, परन्तु भतीजा भी समझदार है। यह सोचकर ख़ुशी-ख़ुशी ले जाने पर तैयार हो गए।

क़ाफ़िला रवाना हो गया। क़ाफ़िले में आप *(सल्ल.)* भी थे। रास्ते में जो कुछ देखते उसपर ग़ौर करते। जो कुछ सुनते, उसपर सोच-विचार करते और सब कुछ दिमाग़ में महफ़ूज़ करते जाते।

क़ाफ़िला विभिन्न इलाक़ों से गुज़रा। बहुत से नगरों में ठहरा।

आख़िरकार शाम (सीरिया) की सरज़मीन में पहुँच गया और वहाँ के

एक मशहूर नगर 'बुसरा' में पड़ाव डाल दिया।

'बुसरा' में बहीरा नामी एक ईसाई सन्त था, उसके गिरजाघर के पास ही एक छायादार जगह थी। क़ुरैश व्यापारी जब भी 'बुसरा' पहुँचते वहीं पर ठहरते। ठहरकर कुछ देर आराम करते फिर आढ़तियों और व्यापारियों से मिलते।

यह क़ाफ़िला भी उसी जगह आकर ठहरा और हर आदमी अपने-अपने काम में लग गया। कोई ज़्यादा थका हुआ था तो बैठकर दम लेने लगा। कोई भूख से बेक़रार था तो खाना खाने बैठ गया। कोई अपना कारोबारी सामान ठीक करने लगा कि जल्दी से उसे ठिकाने लगाए और......।

अभी कोई बहुत ज़्यादा देर नहीं हुई थी। लोग इसी तरह अपने-अपने कामों में लगे हुए थे कि एक व्यक्ति बुलाने आया, बोला—

"आप लोग बहीरा के यहाँ तशरीफ़ ले चलें। उन्होंने खाने का इन्तिज़ाम किया है और आप सभी लोगों को दावत दी है।"

लोग हैरत से एक दूसरे का मुँह तकने लगे। निगाहें मानो एक दूसरे से पूछ रही थीं कि वे यहाँ कई बार आए, ठहरे और चले गए। लेकिन बुहैरा ने कभी नहीं पूछा, आज ही वह क्यों इतना मेहरबान हो गया?

बहरहाल दावत क़ुबूल कर ली और सभी लोग उस व्यक्ति की रहनुमाई में रवाना हो गए। हाँ, केवल मुहम्मद *(सल्ल.)* रह गए। आप नहीं गए, इसलिए कि अभी बच्चे थे। बुहैरा ने सबका बहुत ही ज़ोरदार स्वागत किया। बोला—

"भाइयो! मैं चाहता हूँ कि आज तुम सब मेरे साथ खाना खाओ और तुममें से कोई भी रह न जाए।"

क़ाफ़िलेवाले बोले, "हम सब आ गए हैं। हाँ, एक छोटा लड़का भी साथ था। उसको वहीं छोड़ आए हैं।"

बहीरा ने कहा, "नहीं, नहीं, लड़का है तो क्या, उसको भी बुलाओ। वह भी यहीं खाना खाएगा।"

उनकी हैरानी और बढ़ गई कि एक तो अपनी आदत से हटकर दावत की, फिर यह भी ज़िद कि कोई रह न जाए।

"बुहैरा! क्या बात है कि आज आपने हमारी दावत की है। इससे

पहले तो कभी करते न थे?!" उन्होंने बड़े ताज्जुब से पूछा।

बहीरा : "आप लोग मेहमान हैं। हमारे पड़ोस में आकर ठहरे हैं। हम पर आपका हक़ है। हमें इसका ख़याल करना ही चाहिए। मैंने चाहा कि आप लोगों का कुछ सत्कार हो जाए। और क्या बात हो सकती है?"

"ख़ुदा की क़सम, कोई बात है ज़रूर! केवल इतनी बात तो हो नहीं सकती।" क़ाफ़िलेवालों की उलझन बनी रही

बुलानेवाला अबू-तालिब के पड़ाव पर गया। मुहम्मद *(सल्ल.)* को साथ लेकर आया। बुहैरा और सारे मेहमान बैठे आपका इन्तिज़ार कर रहे थे।

बहीरा की नज़रें मुहम्मद *(सल्ल.)* पर पड़ीं तो जमकर रह गईं और वह टकटकी लगाए आपको देखता ही रहा।

सबने खाना खाया और इधर-उधर फैल गए। कोई तो चहल-क़दमी कर रहा था और कोई घूम-घूम कर बुहैरा का गिरजाघर देख रहा था। बुहैरा आप (सल्ल.) के पास आया। बोला—

"बेटा! तुम्हें लात और उज़्ज़ा की क़सम। जो कुछ पूछूँ, ठीक-ठीक बतला देना।"

"लात और उज़्ज़ा की क़सम न दीजिए।" मुहम्मद *(सल्ल.)* ने तुरन्त टोकते हुए कहा।

"अच्छा ख़ुदा की क़सम! जो कुछ पूछूँ सब बतला देना।" बहीरा ने दूसरी बार विनम्रता से कहा।

"पूछिए क्या पूछते हैं?" मुहम्मद (सल्ल.) ने कहा।

बहीरा आपसे आप ही के बारे में तरह-तरह के सवाल करने लगा। कुछ मिज़ाज और तबियत का हाल पूछा...... कुछ आदतों और स्वभाव के बारे में मालूम किया। आप *(सल्ल.)* उसके हर सवाल का जवाब देते रहे। इतने में अबू-तालिब मुहम्मद *(सल्ल.)* को लेने आ गए।

"यह लड़का तुम्हारा कौन होता है?" बहीरा ने अबू-तालिब से पूछा,

"यह मेरा बेटा है।" अबू-तालिब ने यूँ ही चलता-सा जवाब दिया।

"यह कैसे हो सकता है? यह तुम्हारा बेटा नहीं। इस लड़के का बाप ज़िन्दा हो, यह हो ही नहीं सकता।" बहीरा ने अबू-तालिब की बात

का इनकार करते हुए कहा।

आपके बारे में बहीरा की यह मालूमात देखीं तो अबू-तालिब दंग रह गए।

"हाँ, यह मेरा भतीजा है।"

"और इसका बाप?" बहीरा ने फिर सवाल किया।

"अभी यह माँ के पेट ही में था कि बाप का इन्तिक़ाल हो गया।" अबू-तालिब ने बात को स्पष्ट किया।

"तुमने सच कहा। अब अपने भतीजे को घर वापस ले जाओ और देखो, इसे यहूदियों से बचाए रखना। ख़ुदा की क़सम! अगर उन्होंने देख लिया और जिस हद तक मैंने इसे पहचान लिया है, उन्होंने भी पहचान लिया तो इसकी जान के पीछे पड़ जाएँगे। तुम्हारा यह भतीजा कितना महान पुरुष होगा इसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते। बस यह समझ लो कि यह वह हीरा है जिस के जैसा हीरा कोई पैदा नहीं हुआ।" बहीरा एक ही साँस में ये सारी बातें कह गया। बिलकुल ऐसा लग रहा था जैसे वह बाइबल का कोई सबक़ सुना रहा हो यह मुहम्मद *(सल्ल.)* के माथे पर लिखी हुई तक़दीर पढ़ रहा हो!

बहीरा का चेहरा ख़ुशी और इत्मीनान से चमक रहा था और अपने मन में कह रहा था—

"मेरा अन्दाज़ा बिलकुल ठीक निकला!"

(2)

अबू-तालिब मुहम्मद *(सल्ल.)* को लेकर मक्का वापस आ गए। बहीरा ने जो कुछ कहा था, वह सब दिमाग़ में गूँज रहा था। मुहम्मद *(सल्ल.)* के बारे में जो भविष्यवाणी की थी, वह ज़ेहन में घूम रही थी।

मुहम्मद *(सल्ल.)* के लिए अपने देश से बाहर निकलने का यह पहला अवसर था। वापस हुए तो इस लम्बे सफ़र के दौरान आप *(सल्ल.)* ने जो कुछ देखा था, दिमाग़ में ताज़ा करते रहे। लोगों से जो कुछ सुना था, उसपर ग़ौर करते रहे।

आपने बड़े-बड़े रेगिस्तान और ऊँचे-ऊँचे पहाड़ देखे थे। हरे-भरे चमनिस्तान और फूलों से लदे हुए बाग़ देखे थे। तरह-तरह के ऊँचे-नीचे रास्ते तय किए थे। विभिन्न नगरों और बस्तियों से गुज़रे थे। उनके बारे

में लोगों में जो बातें हुई थीं, अतीत और वर्तमान के बारे में जो बातें हुई थीं, सब आपने ध्यान से सुनी थीं।

आपको ऐसे लोग भी देखने को मिले, जो उन्हीं चीज़ों को पूजते थे, जिनको आपकी क़ौम पूजती थी। ऐसे लोग भी नज़र आए, जो आसमानी किताबों की शिक्षाओं पर अमल कर रहे थे। यह भी सुनने में आया कि कुछ लोग हैं जो अग्नि-पूजा में मग्न हैं! ऐसे लोग भी हैं जो पत्थर की किसी मूर्ति के सामने बन्दगी और उपासना की रस्में अदा करते हैं और बन्दगी के आदाब बजा लाते हैं। कुछ लोग हैं जिन्होंने अपनी नकेल यहूदी उलमा के हाथ में दे रखी है, जो ईश-ग्रंथ की मनमानी व्याख्याएँ करते हैं और अपने जी से क़ानून बनाते हैं। कुछ लोग हैं जो ईसाई पादरियों के इशारों पर चलते हैं, जिन्होंने परोक्ष-ज्ञान का ढोंग रचा रखा है।

इस अन्धकार में...... हाँ इस घटाटोप अन्धकार में मुहम्मद *(सल्ल.)* एक-एक चीज़ को जाँचते। ग़ौर-फ़िक्र करते। सोच-विचार का सिलसिला बँध जाता और देर तक इसी हालत में डूबे रहते। रह-रहकर सोचते कि किसकी राह ठीक है और किसकी ग़लत? कौन सत्य पर है और कौन असत्य पर? सत्य कहाँ है? और वह है क्या?

कम उम्र मगर बुद्धिमान और समझदार मुहम्मद *(सल्ल.)* को फ़िक्र थी, किसी तरह हक़ मिल जाए। उसकी हक़ीक़त खुल जाए। अन्धेरे का बादल छँट जाए और रौशनी नज़र आ जाए।

लड़कपन का ज़माना खेलतमाशे का ज़माना होता है। लेकिन मुहम्मद *(सल्ल.)* खेल तमाशों से कोसों दूर रहते। बेकार बातों और बे मक़सद कामों में कोई दिलचस्पी न लेते। हमेशा हक़ की धुन में रहते। इस फ़िक्र में रहते कि कोई ऐसी बात मालूम हो जाए जिसमें कोई रहनुमाई हो। कोई ऐसा निशान मिल जाए, जिससे किसी हक़ीक़त का सुराग़ लगता हो।

घर-घरानेवालों के साथ उकाज़, मजिन्ना और ज़िलमजाज़ भी जाते। ये अरब के मशहूर बाज़ार थे, जो मक्का के आसपास ही लगते थे। फिर लगते भी थे हुरमत के महीनों में, जिनमें जंग और ख़ून-ख़राबा हराम होता, छिड़े हुए युद्ध रुक जाते, प्रतिशोध के भड़कते हुए शोले बुझ

जाते। ये हुरमत के महीने चार थे— ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा, मुहर्रम और रजब।

इन बाज़ारों में हर तरह की चीज़ें बिकतीं। विदेशों से भी सामान आता और बिकता। इसके अलावा उनमें कवि सम्मेलनों का प्रबन्ध होता। भाषणकर्त्ता अपने-अपने भाषण के जौहर दिखाते। हर आदमी अपने ख़यालात को खुले तौर पर ज़ाहिर करता। हर धर्म का आदमी अपने अक़ीदों का प्रचार करता। हर व्यक्ति पूरी आज़ादी से अपने मत और उसूल पर चलता। न वहाँ किसी तरह का ख़तरा होता न किसी से डर। हर कोई बेफ़िक्र और मुत्मइन होता कि ये हुरमत के महीने हैं।

ये बाज़ार लोगों से भरे होते। उनमें तरह-तरह के लोग होते। जगह-जगह के वासी होते। हर तरफ़ एक चहल-पहल होती। घमाघमी होती। ऐसे में आपको लोगों से मिलने-जुलने का, उनके विचारों, अक़ीदों और धारणाओं को समझने का और उनकी कथनी और करनी को परखने का बड़ा अच्छा मौक़ा मिलता और यह फ़ैसला करने में भी आसानी होती कि कौन सत्य-मार्ग पर है और कौन इससे परे।

फिर जब आप एकांत में होते और यकसू होते तो सारी बातों पर ग़ौर करते। जो बात सही मालूम होती, दिमाग़ में बिठा लेते और जो बात ग़लत मालूम होती, उससे दूर रहते। बारह-साल की उम्र से आप बकरियाँ चराने लगे थे। इससे ग़ौर-फ़िक्र में और मदद मिली। यह आपका पसन्दीदा काम था। कुछ घरवालों की बकरियाँ होतीं और कुछ क़बीलेवालों की, उनको लेकर दूर टीलों और मैदानों की ओर निकल जाते, जहाँ बकरियों को आज़ादी से चरने का मौक़ा मिलता और आपकी रूह को शान्तिमय और आनन्दपूर्ण वातावरण उपलब्ध होता, वहाँ सोच-विचार और चिन्तन-मनन के लिए आपके सामने एक विशाल मैदान होता। अल्लाह की बनाई हुई यह दूर तक फैली हुई दुनिया एक खुली हुई किताब की तरह आपके सामने होती। आप उसका अध्ययन करते और उसके इशारों को समझने की कोशिश करते।

इस तरह आपने लड़कपन के दिन और जवानी के साल गुज़ारे! न कि दूसरे लड़कों और जवानों की तरह खेल-कूद में, हँसी-मज़ाक़ में, बेकार बातों और बेमक़सद कामों में! इस नव-उम्री ही में आप *(सल्ल.)*

के अन्दर बड़ों की सी गम्भीरता थी, शरीफ़ों की सी पाकीज़गी थी और बुज़ुर्गों की सी सूझबूझ और दूरदर्शिता थी।

बचपन की बात है, काबे की दीवारें बन रही थीं। बच्चों ने तहबन्द उतार कर काँधों पर रख लिए और फिर पत्थर ढोने लगे, लेकिन आपने तहबन्द और मज़बूती से बाँध लिया। चचा ने कहा, बच्चों को देखो, अपने-अपने तहबन्द काँधों पर रख लिए हैं। अब कैसे मज़े से ढो रहे हैं। तुम भी ऐसा ही कर लो। फिर कंधे नहीं दुखेंगे। चचा के कहने से ऐसा करना चाहा तो मारे शर्म के बेहोश हो गए।!

मक्का में आम रिवाज था कि रात को लोग अपने-अपने कामों से छुट्टी करके जमा होते। रंग-रस की महफ़िले सजतीं। दिलचस्प तफ़रीही प्रोग्राम रहते। दास्तानों का सुनना-सुनाना इस प्रोग्राम का एक प्रमुख अंग होता। कोई व्यक्ति, जो इस कला का माहिर होता, दास्तान सुनानी शुरू करता और लोग रात-रात भर बैठे सुनते रहते। मानो यह उस ज़माने का सांस्कृतिक प्रोग्राम था। एक साथी ने आपको भी उभारा–

"मुहम्मद! एक रात तुम भी इस महफ़िल का आनन्द लो।"

नव-उम्री का ज़माना था, साथी ने ज़्यादा कहा तो तैयार हो गए। वह आपके साथ बकरियाँ चराया करता था। फ़रमाया, "अच्छा, आज रात मेरी बकरियों की रखवाली तुम करना।"

आप *(सल्ल.)* इस मनोरंजन कार्यक्रम में शामिल होने के लिए आबादी की तरफ़ चल पड़े। रास्ते में किसी के घर से गीत की आवाज़ आ रही थी। ठहरकर सुनने लगे। कुछ देर में नींद का ज़ोर हुआ और सो गए। आँख खुली तो दिन चढ़ चुका था। सूरज की गर्मी में तेज़ी आ चुकी थी। आप साथी के पास लौट आए।

दूसरी रात साथी ने फिर उकसाया, "देखो, आज यह मौक़ा न चूके।"

आप फिर चल दिए। रास्ते ही में थे कि कानों में गीत की आवाज़ पड़ी। आप फिर सुनने बैठ गए। कुछ देर में नींद आ गई और सो गए!

अपनी पूरी नवजवानी में सिर्फ़ दो बार इस प्रकार का इरादा किया, परन्तु दोनों बार ख़ुदा ने बचा लिया, क्योंकि ख़ुदा की नज़र में आपकी शान इन बेकार बातों से उच्च थी। फिर कभी स्वप्न में भी ख़याल न

आया, न कभी कोई ऐसी बात हुई जिससे आपकी अमानत और सच्चाई पर कोई धब्बा लगता हो या आपकी पवित्रता और शराफ़त पर कोई आँच आती हो।

आप शर्म और लज्जा की प्रतिमा थे। पवित्रता के प्रतीक थे। सच्चाई के लिए पूरी क़ौम में मशहूर थे। ईमानदारी और अमानतदारी में तो आप अपनी मिसाल आप थे।

मक्कावालों ने अगर आपको 'अमीन' (अमानतदार) का लक़ब दिया तो कोई हैरत की बात नहीं। हाँ तनिक भी नहीं। आपको यही लक़ब शोभा देता था और केवल आप ही को शोभा देता था।

आपने नव जवानी में तीर चलाना सीखा। जवान हुए तो फ़ौजी कामों में महारत हासिल की और 'फ़ुज्जार का युद्ध' हुआ तो चचाओं के साथ आप *(सल्ल.)* भी इसमें शरीक रहे। यह जंग क़ुरैश और हवाज़िन के बीच हुई थी और ऐतिहासिक जंग थी। बड़ी ही भयानक और तबाहकुन! शरीक होने को तो आप भी हुए, पर किसी पर हाथ न उठाया। बस चचाओं को तीर उठा-उठाकर देते और दुश्मन की तरफ़ से जो तीर आते उन्हें रोकते।

इस जंग में घराने के घराने तबाह हो गए। इससे कुछ लोगों को बहुत दुख हुआ। उन्होंने समझौते की आवाज़ उठाई। आख़िरकार दोनों पक्षों में समझौता हो गया। यही समझौता 'हिल्फ़ुलफ़ुज़ूल' के नाम से मशहूर हुआ। इस समझौते में आप भी शरीक थे। आपकी उम्र उस समय बीस साल की थी।

युद्ध से छुट्टी मिली तो मक्कावासी फिर अपनी पुरानी हालत पर आ गए। अब फिर वही खेलकूद था। वही सरमस्तियाँ थीं। हर तरफ़ रंग-रलियाँ मनाई जाने लगीं। आवारगी और बेशर्मी का बाज़ार गर्म हो गया। जुए और शराब की महफ़िलें आबाद हो गईं और लोग भोग-विलास और मौज-मस्ती में पड़ गए।

और आप? आप भेड़ बकरियाँ लेकर पहले की तरह मैदानों में निकल जाते। वहाँ खुला वातावरण होता और प्राणवर्द्धक दृश्य होता। आँखें बकरियों की देखभाल करतीं और आत्मा विशाल जगत में अपने पंख फैलाती।

यह थी आपकी ज़िन्दगी। यही आपके रात-दिन थे, यही आपके काम और दिलचस्पियाँ थीं। इसी में आपके लिए सुख-शान्ति का सामान था। एकांत में रहना और जगत-व्यवस्था का अध्ययन करना, हंगामों से दूर रहना और जगत की सुव्यवस्था और अनुशासन पर ग़ौर करना! आपको बस बकरियाँ चराने से काम रहता। मैदान के खुले माहौल में मज़ा आता! एकान्त और एकाग्रता में आपका विवेक और चिन्तन विकसित होता रहता, दिल और रूह पर ज्ञान आलोकित होता और सृष्टि के रहस्य प्रकट होते।

और अबू-तालिब? वे रोज़ी की फ़िक्र रखते। आर्थिक दौड़-धूप में लगे रहते कि उनका और भतीजे का पेट पल सके और आसानी से औलाद की गुज़र-बसर हो सके, जो अल्लाह की मेहरबानी से तादाद में कुछ कम न थी।

एक दिन अबू-तालिब आपके पास आए। बोले—

"भतीजे! तुम जानते हो, अपनी माली हालत क्या है? हमारी परेशानियाँ बहुत बढ़ गई हैं। ख़दीजा दूसरों को अपना माल देकर कारोबार कराती हैं। कहो तो तुम्हारे लिए बात करूँ?" उस वक़्त आपकी उम्र तेईस या चौबीस साल थी।

फ़रमाया, "चचा! आप जो फ़रमाएँ, सिर-आँखों पर!"

ख़दीजा बहुत ऊँचे घराने की औरत थीं। उनकी वंशावली पाँचवीं पुश्त में क़ुसई तक पहुँच कर आप *(सल्ल.)* से जा मिलती थी। ये एक के बाद एक बनी-मख़ज़ूम के दो रईसों से ब्याहीं थीं। वे दोनों काफ़ी दौलत छोड़कर दुनिया से विदा हो गए। फिर क़ुरैश के बहुत से रईसों ने शादी का पैग़ाम भेजा, लेकिन हर एक को ठुकरा दिया। अब वे अकेली रहतीं। अपना माल कारोबार में लगातीं, ख़ूब लाभ उठातीं और बड़ी ख़ुशहाली की ज़िन्दगी बसर करतीं। अबू-तालिब पहुँचे तो वे इस फ़िक्र में थीं कि उन्हें कारोबार के लिए आदमी मिल सके। पूछा—

"ख़दीजा! मुहम्मद से कारोबार कराना पसन्द करोगी?"

ख़दीजा : "आप किसी ग़ैर आदमी के लिए कहते, जब भी मुझे इनकार न होता। ये तो अपने आदमी हैं, वह भी अमीन!"

अबू-तालिब लौटकर आप *(सल्ल.)* के पास आए। बोले, "मुहम्मद!

लो अल्लाह ने रोज़गार का इन्तिज़ाम कर दिया।"

शाम (सीरिया) जाने के लिए क़ाफ़िला तैयार हो गया। उसमें आप *(सल्ल.)* भी थे। आपके साथ ख़दीजा का ग़ुलाम मैसरा भी था। आपके सभी चचा आपको विदा करने आए। अबू-तालिब आगे-आगे थे। इन लोगों ने जुदा होते समय बड़े प्यार से कहा, "ख़ुदा करे यह सफ़र मुबारक हो, कारोबार में ख़ूब बरकत हो और अल्लाह ख़ैरियत के साथ वापस लाए।" मैसरा को भी नसीहत की, "देखो, मैसरा! मुहम्मद का ख़याल रखना, किसी तरह की कोई तकलीफ़ न होने देना।"

क़ाफ़िला चल दिया। रास्ते में वे सारी चीज़ें फिर सामने आती रहीं, जो आप पहले सफ़र में देख चुके थे। चलते-चलते क़ाफ़िला सीरिया पहुँच गया और फिर उसी नगर बुसरा में ठहरा। क़ाफ़िले में जितने लोग थे सब की शुभ कामनाएँ और हमदर्दियाँ आपको हासिल थीं। आप भी उनके लिए सफ़र के एक अच्छे साथी और भलाई और बरकत की मूर्ति थे। रहा ख़दीजा का ग़ुलाम मैसरा तो न पूछिए उसका क्या हाल था? ऐसा लगता मानो वह आप ही का ग़ुलाम हो! बेहद प्रेम करता, हर समय ख़याल रखता, आप की किसी बात को न टालता।

जो कुछ सामान साथ था, उसका आपने बड़ी कामियाबी से कारोबार किया। एक होशियार तजरिबेकार और अभ्यस्त व्यापारी की तरह। फिर किसी के हाथ कुछ बेचा तो बड़ी शिष्टता और नर्मी से, किसी से कोई मामला किया तो बड़ी ईमानदारी से। किसी से कुछ लिया-दिया तो बड़ी सफ़ाई से। वापस हुए तो ख़दीजा ने जो फ़रमाइशें की थीं, जो-जो सामान मँगाए थे, सब साथ लाए।

क्या कारोबार की इन व्यस्तताओं और मशग़ूलियतों में आपके नित्यकार्य छूट गए? नहीं, आप उसी तरह एकान्त में बैठकर सोच-विचार करते। लोगों के हालात अलग-अलग थे। उनके धर्म विभिन्न थे। उनके अक़ीदों और धारणाओं में अन्तर था। आप हर एक को अक़्ल की कसौटी पर परखते, उनमें कौन सही है? किस हद तक सही है? घण्टों बैठे इसी चिन्तन में डूबे रहते।

जहाँ क़ाफ़िले का पड़ाव था, उससे क़रीब ही एक बहुत भारी पेड़ था। एक रोज़ आदत के मुताबिक़ आप उसी के नीचे बैठे हुए थे।

मैसरा इधर-उधर कुछ काम-धाम में लगा था। पास ही एक गिरजाघर था। उसमें से एक ईसाई सन्त निकला और मैसरा के पास आया। यह था सन्त नस्तूर। मैसरा यहाँ व्यापार के लिए हर साल आता था, इसलिए नस्तूर उसे अच्छी तरह जानता था। बोला—

"मैसरा! तुम्हारे साथ यह कौन है?"

मैसरा : "क़ुरैश का एक जवान, जिसके परिवार के पास काबा की चाबी है।"

नस्तूर : "तुमने इसमें क्या-क्या ख़ूबियाँ देखीं?"

मैसरा : "सच्चाई और ईमानदारी, पाकीज़गी और सुथराई, नर्म मिज़ाजी और खुश अख़्लाक़ी, ख़्यालों और विचारों के समुद्र में इसी प्रकार डूबे रहना, बुद्धि और खुली आँखों से सृष्टि का अध्ययन करना।"

नस्तूर ने बड़ी बेताबी से पूछा : "और आँखें कैसी हैं।"

मैसरा पर कुछ घबराहट सी छाई। बोला—

"आँखें काली और चौड़ी हैं। सफ़ेद हिस्से में लाल डोरे हैं। पलकें काली और बारीक हैं। कुछ बड़ी-बड़ी भी हैं, जो आँखों की ख़ूबसूरती को बढ़ा रही हैं।"

नस्तूर जो अब आप *(सल्ल.)* के पास आने के लिए पर तौल रहा था, बोला— "मैसरा! जो इस पेड़ के नीचे ठहरे और उसमें ये ख़ूबियाँ हों, वह नबी ही हो सकता है।"

फिर वह आप *(सल्ल.)* के पास आया। उसकी क़ौम में जो-जो धर्म राइज थे, उनके बारे में सवाल करने लगा। वह चाहता था कि इस सिलसिले में आपके विचार मालूम हों और पता चले कि आपके दिल में इन धर्मों का क्या स्थान और कितना आदर है। आपने उन धर्मों का खण्डन किया और सबसे अपनी बेज़ारी ज़ाहिर की। ख़ुद नस्तूर ईसाई धर्म का अनुयायी था। अब उसने अपने धर्म के बारे में सवाल किया। उसमें जो अच्छाइयाँ या बुराइयाँ थीं, सब आपने बयान कर दीं।

(3)

क़ाफ़िला कुछ दिनों बाद मक्का वापस हुआ। मक्का से कुछ ही मील के फ़ासले पर 'मर्रुज़्ज़हरान' (आज यह फ़ातिमा की घाटी के नाम से प्रसिद्ध है) नामक स्थान पर जब यह क़ाफ़िला पहुँचा तो मैसरा ने

कहा, "मुहम्मद! लपक कर ख़दीजा के पास जाओ। उन्हें कामियाबी की खुशख़बरी दो।"

आप *(सल्ल.)* ने ऊँटनी की रफ़्तार तेज़ कर दी। दोपहर होते-होते मक्का पहुँच गए। ख़दीजा उस समय बालाख़ाने में थीं। ठण्डी-ठण्डी हवाओं के मज़े ले रही थीं। अचानक क्या देखती हैं कि एक ऊँटनी पर कोई सवार है और ऊँटनी रेगिस्तान की तपती हुई रेत पर भागी चली आ रही है। बिलकुल हवा से बातें कर रही है।

ख़दीजा ने सवार पर नज़रें जमाईं कि पहचानें कौन है? वह सवार कुछ और क़रीब हुआ। कुछ और क़रीब हुआ। देखा तो मुहम्मद हैं। उनके घर की तरफ़ बहुत तेज़ी से बढ़ रहे हैं!

दरवाज़े पर पहुँचे तो ख़दीजा आप *(सल्ल.)* के स्वागत के लिए वहाँ पहले से मौजूद थीं। वे आपसे बड़ी मुहब्बत से मिलीं। ख़ैरियत से वापस आने पर मुबारकबाद दी। फिर आपने बड़े अच्छे और दिलचस्प अन्दाज़ में सफ़र का पूरा हाल सुनाया। कारोबार की भी रिपोर्ट दी, क्या बेचा? क्या ख़रीदा? कितना फ़ायदा हुआ?

ख़दीजा पूरे शौक़ और दिलचस्पी से सारा क़िस्सा सुनती रहीं और दिल ही दिल में वाह-वाह करती रहीं। आपकी बातों से उन्हें बड़ी ख़ुशी हो रही थी। आपकी मीठी बातें उनके दिल को भा रही थीं और आपकी ईमानदारी और सच्चाई उनके मन को मोह रही थी। फिर इस बार कारोबार में बहुत ज़्यादा नफ़ा हुआ, इतना कि और कभी न हुआ था। इससे भी वे बहुत प्रभावित थीं।

फिर मैसरा आया। उसकी ज़ुबानी आपके हालात सुने तो दिल ख़ुशी से भर गया और फिर इतनी हैरत और ख़ुशी हुई, इतनी हुई, कि जिसका कोई ठिकाना न था।

मैसरा ने बताया, आप *(सल्ल.)* ने किस प्रकार कारोबार किया। लेन-देन में कितनी सच्चाई और ईमानदारी दिखाई और फिर कितनी उनके कारोबारी माल की फ़िक्र की और जान और दिल से उसकी हिफ़ाज़त की।

फिर राहिब नस्तूर का क़िस्सा सुनाया। आपके बारे में उसने जो ख़ुशख़बरी दी थी, वह भी सुनाई। फिर बोला—

"एक वाक़िआ और हुआ, जिसपर मैं हैरान रह गया। सफ़र से हम लोग वापस हो रहे थे। मेरे साथ दो ऊँट थे। दोनों थक कर जवाब दे चुके थे। था मैं बहुत पीछे। डर हुआ कहीं क़ाफ़िला आगे न बढ़ जाए और मैं अकेला रह जाऊँ। मैं जल्दी से मुहम्मद के पास गया और उनको सारा हाल बताया।

पहले तो उन्होंने दोनों ऊँटों के पैर सहलाए। फिर नकेल हाथ में ली और उनको हँकाया। अब वे इस तरह दौड़ने लगे जैसे कुछ हुआ ही न था।"

ख़दीजा को बड़ी हैरत हुई। बोलीं "भई इनमें तो बड़ी अद्‌भुत विशेषताएँ हैं!" अब नामुमकिन था, ख़दीजा किसी समय आपको भूल जाएँ या आप उनके ज़ेहन से उतर जाएँ। जब देखिए आप ही की बात करती रहतीं। जिससे मिलतीं आप ही के गुण गातीं। अब उनको आपसे बेहद प्रेम था और तमन्ना थी, किस तरह इस अमानतदार और नेक जवान के दामन से बँध जाएँ। किसी तरह उसे अपना जीवन साथी बना लें!

ख़दीजा को इसकी फ़िक्र हुई। तमन्ना हुई और फिर एक तड़प बन गई! यही ख़दीजा थीं। हाँ यही ख़दीजा, जिनको क़ुरैश के बड़े-बड़े रईसों ने शादी का पैग़ाम भेजा था। उन्होंने हरेक को ठुकरा दिया था। हाँ ठुकरा दिया था और लापरवाही से मुँह फेर लिया था!

यह ख़्वाहिश इतनी बढ़ी कि ख़दीजा इसको छिपा न सकीं। क़रीबी औरतों ने इस ख़्वाहिश को भाँप लिया। उनमें एक नफ़ीसा बिन्ते-उमैया थीं। बोलीं :

"ख़दीजा! क्या हरज है? अमीन से शादी क्यों नहीं कर लेती?"

ख़दीजा : "आख़िर कैसे? इसकी सूरत क्या होगी?"

नफ़ीसा : "तुम बस 'हाँ' करो। यह काम कराना तो मेरा काम है"

फिर वे आप *(सल्ल.)* के पास आईं। बोलीं—

"मुहम्मद! यह तन्हाई की ज़िन्दगी कब तक रहेगी? अब तो तुम्हें अपना घर बसा लेना चाहिए!"

फ़रमाया, "मेरे पास है क्या जो घर बसाऊँ"

बोलीं : "अच्छा बताओ, अगर इसका इन्तिज़ाम हो जाए और एक

बहुत ही ख़ूबसूरत और मालदार औरत से शादी करने को कहा जाए तो तैयार हो जाओगे? इनकार तो नहीं करोगे?''

फ़रमाया : ''वह कौन है? किसकी तरफ़ आपका इशारा है?''

बोलीं : ''ख़दीजा से अच्छा जोड़ा तुम्हें नहीं मिलेगा। नेक काम में देर क्या। यह काम जितनी जल्दी हो जाए अच्छा है।''

ख़दीजा के अख़्लाक़ और उनकी सूझ-बूझ से आप बहुत प्रभावित थे। आपने जैसा सुना था, उनको वैसा ही पाया था। लोग उनको ''ताहिरा'' (पाकदामन) कहते थे। आपने उनको ''ताहिरा'' ही पाया था। लेकिन उनसे शादी? यह तो स्वप्न में भी न सोचा था, क्योंकि आपको मालूम था, इसके लिए बड़े-बड़ों ने ज़ोर लगाया, लेकिन तरस कर रह गए।

फ़रमाया, ''लेकिन क्या यह मुमकिन भी है? क्या वह धनवान औरत मुझ ग़रीब के साथ शादी करने को तैयार हो जाएगी?''

नफ़ीसा ने आपको भी वही जवाब दिया, ''तुम इसकी फ़िक्र न करो। उसे इस पर आमादा करना मेरा काम है।''

आप *(सल्ल.)* अबू-तालिब के पास पहुँचे और सारा क़िस्सा कह सुनाया। अबू-तालिब ने सुना तो बड़े हैरान हुए। आपके मुख से कभी झूठ या ग़लत बात तो सुनी न थी। इसलिए इनकार भी नहीं कर सकते थे। बोले–

''हैरत है बेटे! ख़दीजा क़ुरैश की बाइज़्ज़त औरत, माल, दौलत और शानो-शौकतवालों और पदासीन व्यक्तियों को तो ठुकरा दे और तुमको अपना जीवन-साथी बनाना पसन्द कर ले।''

फिर बोले–

''लेकिन बेटे ऐसा हो भी सकता है। यह कोई हैरत की बात नहीं। हालाँकि तुम्हारे पास सोने-चाँदी की दौलत न सही लेकिन तुम ख़ुद एक ऐसा अनमोल हीरा हो जिसके सामने ये सारी दौलत कुछ भी नहीं।''

फ़रमाया, ''चचा! न मुझे माल का लालच है, न उसकी कोई ज़रूरत।''

अबू-तालिब ने भाइयों को साथ लिया। ख़ादीजा के चचा अम्र-बिन-असद के पास गए। उनके भाई अम्र-बिन-ख़ुवैलिद से भी मिले

और आप *(सल्ल.)* की ओर से शादी का पैग़ाम दिया (भाई और चचा को पैग़ाम देने का कारण यह था कि उनके बाप पहले ही इन्तिक़ाल कर चुके थे) वे दोनों उसी दम तैयार हो गए। बल्कि मानो वे पहले ही से तैयार बैठे थे।

चट-पट शादी का दिन तय हो गया। वह दिन आया तो ख़ानदान के सभी बाइज़्ज़त लोग ख़दीजा के मकान पर जमा हुए। अबू-तालिब ने निकाह का ख़ुत्बा दिया। ख़ुत्बा बहुत शानदार था। इससे अन्दाज़ा होता है कि आपके बड़े-बूढ़े आपके अख़लाक़ और आपकी ख़ूबियों से कितने ज़्यादा प्रभावित थे। अल्लाह की तारीफ़ और शुक्र के बाद बोले—

"यह मेरे भाई अब्दुल्लाह का बेटा मुहम्मद है। यह वह नव-जवान है कि क़ुरैश में इस जैसा कोई नहीं। हाँ, माल इसके पास कम है, लेकिन माल तो चलती-फिरती छाँव है। मुहम्मद मेरा सम्बन्धी है, यह तुम सब जानते हो। वह ख़ुवैलिद की बेटी ख़दीजा से निकाह करना चाहता है और मेरे माल से बीस ऊँट महर तय करता है। ख़ुदा की क़सम इसका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल है।"

इस तरह यह मुबारक काम पूरा हुआ और क़ुरैश की सबसे बाइज़्ज़त औरत क़ुरैश के अमीन के घर आ गई!

उस समय आपकी उम्र पचीस साल दो महीने दस दिन की थी और बीबी ख़दीजा चालीस साल की थीं।

(4)

उस समय मुहम्मद *(सल्ल.)* की उठती हुई जवानी थी। हुस्न और दिलकशी बला की थी। गोरा-गोरा रंग, नमकीनी लिए हुए, मुस्कराता हुआ हल्का गोलाकार नूरानी चेहरा। औसत क़द, न तो ठिगना और न बहुत ज़्यादा लम्बा। बड़ा सिर, जिसपर काले-काले घने बाल हल्के घुंघराले। चौड़ा माथा, जिससे असाधारण महानता का आभास मिलता। बारीक-बारीक भौंहें, एक-दूसरे से अलग, कुछ ख़मदार और भरी हुईं, अत्यन्त सुन्दर! लम्बी पलकें, बड़ी काली आँखें मानो सुर्मा लगा हो, सफ़ेदी में हल्की-हल्की लाली, जो आँखों की कशिश में चार चाँद लगा

रही थी। फिर निगाहों में लज्जा और शर्म घुली हुई! और देखने का मासूमाना और दिलकश अन्दाज़! नाक कुछ ऊँची और सुतवाँ। सामने के दाँतों में हल्की-हल्की रेखाएँ। बोलते तो मोती की तरह चमकते। ऐसा लगता मानो उनसे रौशनी फूट रही है। चेहरे पर भरी हुई घनी दाढ़ी। ख़ूबसूरत सी ऊँची गर्दन। सीना चौड़ा। मोंढ़ों के बीच की दूरी सामान्य से कुछ अधिक। चौड़ी-चौड़ी कलाइयाँ, हथेलियाँ चौड़ी और नर्म-मुलायम। उँगलियाँ उचित हद तक लम्बी। हल्की-हल्की सुती हुई पिंडलियाँ। एड़ियों पर नाम मात्र का गोश्त, तल्वे ज़रा गहरे। चलते तो ताक़त के साथ ज़रा आगे को झुककर। क़दम जमा कर रखते। रफ़्तार बहुत तेज़ होती। मालूम होता नीचे को उतर रहे हैं, चेहरा चिन्तन-मनन और सोच-विचार में डूबा रहता और निगाहों से पवित्र विचार और उच्च भावनाओं की झलक मिलती। देखनेवाला पहली नज़र में रोब खा जाता।

ख़दीजा के साथ आपकी ज़िन्दगी अत्यन्त आनन्दपूर्ण ज़िन्दगी थी। उनका साथ आपके लिए सुख ही सुख था। वे एक बहुत होशियार, तजरिबेकार और समझदार औरत थीं। उन्होंने आपकी तबीअत और मिज़ाज को, आपकी पसन्द-नापसन्द और को ख़ूब पहचान लिया और हमेशा उसका पूरा-पूरा ख़याल रखा। आपकी भावनाओं ओर रुचियों को, आपकी उमंगों और दिलचस्पियों को अच्छी तरह समझ लिया और उनके सम्बन्ध में आपको अपना पूरा सहयोग दिया और हर तरह से आसानियाँ पहुँचाने के लिए तैयार रहीं।

आपकी प्रवृत्ति क्या थी? सदैव सत्य बोलना, हर काम ईमानदारी से करना, हंगामों से बचना, शोर-गुल की महफ़िलों से दूर रहना और एकांत में बैठ/कर सोच-विचार करना। ख़दीजा ने इन सारी बातों का ख़याल रखा। अतएव आपके नित्य कार्यों में कोई बाधा नहीं पैदा हुई। आप अब भी उसी तरह खुले हुए और प्राणवर्द्धक माहौल में निकल जाते। अब बकरियों की रखवाली भी न करनी होती, इसलिए और ज़्यादा यकसूई और इत्मीनान रहता। जब तक चाहते, सोच-विचार करते। प्राकृतिक दृश्यों का निरीक्षण करते। अल्लाह की निशानियों का अध्ययन करते और सच को पहचानने की कोशिश करते। इस तरह मानो आप फ़ितरत की रहनुमाई में अपने दादा इबराहीम *(अलैहि॰)* के पदचिन्हों पर

चल रहे थे और ज्ञान और आंतरिक अनुभव, ईमान और यक़ीन की मंज़िलें तय कर रहे थे।

> "और इसी तरह हम इबराहीम *(अलैहि.)* को आसमानों और ज़मीन की शासन-व्यवस्था दिखाते थे कि वह यक़ीन रखनेवालों में से हो जाए।" (क़ुरआन, 6:75)

तो क्या आप ख़दीजा के प्रति अपनी ज़िम्मेदारियों से ग़ाफ़िल रहे? नहीं, नहीं ऐसा नहीं था। अगर ख़दीजा एक वफ़ादार, निष्ठावान और अपनी ज़िम्मेदारियों को पहचाननेवाली बीवी थीं तो आप भी एक मिसाली शौहर थे। इबादत के साथ-साथ आप *(सल्ल.)* ख़दीजा का भी पूरा ख़याल रखते। उनके सारे हक़ अदा करते। उनके दिल बहलाव का सामान जुटाते। उनकी पसन्द और स्वभाव का पूरा ख़याल रखते। उनके माल की हर तरह रक्षा करते। उनके कारोबार को तरक़्क़ी देते। जिसपर पूरा इत्मीनान होता जो सच्चा और ईमानदार होता, छल-कपट से दूर होता, उसी को उसमें शरीक करते।

तात्पर्य यह है कि आप बहुत ही महबूब और अपनी ज़िम्मेदारियों और हक़्क़ों को अच्छी तरह पहचाननेवाले शौहर थे। ख़दीजा के लिए आपके रहन-सहन में बड़ी दिलकशी और मनमोहकता थी। आपका साथ उनके लिए बड़ा ही सुखदायक और आनन्दपूर्ण था। ख़दीजा ने आपको बड़े-बड़े मालदारों और इज़्ज़तवाले व्यक्तियों पर प्राथमिकता दी थी। वैभवशाली और पदाधिकारियों के मुक़ाबले में आपको अपना शौहर बनाना पसन्द किया था। उन्हें आपके प्रति बड़ी सदाशा थी। आपसे उन्हें बड़ी उम्मीदें थीं। फिर भी उनको पहले से क्या अन्दाज़ा रहा होगा कि वे कितनी ख़ुशनसीब हैं!

थे तो आप तन्हाई पसन्द, लेकिन लोगों से मेल-जोल भी रखते। उनके मामलों में दिलचस्पी भी लेते। उनकी बातों को बहुत ही ध्यान से सुनते। प्रायः चुप रहते। बिना ज़रूरत कभी न बोलते। न किसी बात में लोगों से उलझते। जो बात भी कहते, बहुत ही संक्षिप्त और काम की कहते। उसमें विनोद का पहलू भी शामिल होता, विनोद में सूक्ष्मभाव व्यक्त होता। चेहरे पर मुस्कान होती। देखने में बहुत दिलकश और भला लगता। बात करनेवाला मोहित हो जाता। यही मुस्कान कभी-कभी हँसी

में बदल जाती। इन्हीं ख़ूबियों की वजह से लोग आपकी हर बात को वज़न देते। आपकी राय का आदर करते। आपके मशवरों पर अमल करते।

(5)

मक्का के चारों ओर पहाड़ों का सिलसिला है। बीच में काबा है। ज़ोर की बारिश होती तो पानी शहर में भर जाता। काबा की दीवार ऊँची न थी। दीवारों पर छतें भी न थीं, जैसे हमारे यहाँ की ईदगाह होती हैं। एक बार की बात है, बहुत ज़ोर की बाढ़ आई। बहुत-सी इमारतें ढह गईं। पानी काबा के भीतर पहुँच गया। दीवारें फट गईं, बुनियादें कमज़ोर हो गईं। यह चीज़ मक्कावालों के लिए एक समस्या बन गई। उन्हें उसकी मरम्मत की फ़िक्र हुई, औरों की तरह आपको भी हुई।

काबा उनके लिए सब कुछ था। यह उसका इबादत घर था। उनकी मूर्तियों का गढ़ था। फिर दूर-दूर से लोग उनकी परिक्रमा करने आते थे। इससे उनके कारोबार को बढ़ावा मिलता। कारोबार में तरक़्क़ी होती। इतना ही नहीं, इसी वजह से उन्हें लोगों की नज़रों में एक ऊँचा स्थान प्राप्त था। आनेवाले उनकी इज़्ज़त करते। अपने से ऊँचा और बड़ा समझते, क्योंकि ये काबा के पड़ोसी थे। सेवक और रक्षक थे। उससे सम्बन्धित विभिन्न पदों पर आसीन थे। ये लोग एक जगह जमा हुए। आपस में सलाह करने लगे, क्या किया जाए?

क्या पुरानी इमारत गिरा दी जाए? और फिर से नई इमारत बनाई जाए? अगर यह राय हो तो इसका बीड़ा कौन उठाए? कौन उसे गिराए? फिर कौन उसका निर्माण करे?!

काबा अल्लाह का सबसे पाक घर है। वे डरते थे, कहीं उसे ढाने से अल्लाह नाराज़ न हो जाए। कहीं कोई अज़ाब न आ जाए। अक़्ल हैरान थी, करें तो क्या करें?!

लेकिन इमारत बिलकुल बेजान हो चुकी थी। बुनियादें कमज़ोर पड़ चुकी थीं। किसी भी समय ढह जाने का ख़तरा था। गिराने के सिवाय कोई उपाय न था। मजबूर होकर डरते-डरते बहुत ही हिचकिचाहट के बाद उन्होंने उसे ढाने का फ़ैसला कर लिया। लेकिन अभी एक समस्या और थी। नई इमारत मज़बूत और पायदार होनी चाहिए। इसके लिए

बढ़िया सामान कैसे हासिल किया जाए? माहिर कारीगर कहाँ से आएँ, जो अच्छे ढंग से पत्थर जोड़ सकें और एक ख़ूबसूरत और मज़बूत इमारत तैयार कर सकें?

खुदा का करना, उन्ही दिनों एक रूमी आदमी मिस्र से जहाज़ लेकर चला। वह हब्शा जा रहा था। जहाज़ जिद्दा की बन्दरगाह पर पहुँचा तो समुद्र के तट से टकराकर टूट गया। उस जहाज़ पर अच्छे क़िस्म की लकड़ियाँ थीं। बेहतरीन क़िस्म का इमारती सामान था। उस आदमी ने सारा सामान बन्दरगाह पर उतार दिया और इन्तिज़ार करने लगा, कोई जहाज़ हब्शा जानेवाला मिले तो सामान लादकर ले जाए। क़ुरैश को ख़बर मिली। तुरन्त कुछ आदमी दौड़ाए। जहाज़वाले का नाम बाक़ूम था। ये लोग जाकर उससे मिले। उसे अपनी ज़रूरत बताई। वह खुशी से सारा सामान बेचने पर तैयार हो गया। उसने उन्हें बताया कि मैं एक माहिर राजगीर भी हूँ। अब क्या था। उनको तो कारीगर की तलाश थी ही। बैठे बिठाए एक अच्छा कारीगर मिल रहा था। उन्होंने कहा, अच्छा तो आप भी साथ चलिए। इस बड़े काम में हमारा हाथ बटाइए।

बाक़ूम ने जाकर काबा को देखा तो बोला, "इसकी तामीर तो बहुत आसान है। परन्तु आँगन में कुछ खम्बे खड़े किए जाएँगे, ताकि छत पड़ सके। इस तरह इमारत मज़बूत रहेगी। आँधी के झोंके आएँ या बाढ़ के थपेड़े सबसे सुरक्षित रहेगी।" स्वयं उनकी भी यही ख़ाहिश थी। इसलिए न मानने का कोई सवाल ही न था। मक्का में मिस्र का एक आदमी रहता था वह क़िबती नस्ल का था। सुलैह उसका नाम था। लकड़ी के काम में माहिर था। बाक़ूम की मदद के लिए उसे भी बुला लिया गया।

क़ुरैश ने काबा के अलग-अलग हिस्से किए और आपस में बाँट लिए ताकि उसको ढाने में हर क़बीला शरीक हो और तामीर के श्रेय से भी कोई महरूम न रहे।

ढाने का समय आ गया। लोग फिर काँप उठे। शरीर के रोंगटे खड़े हो गए। वे फिर हिचकिचाहट में पड़ गए, ढाएँ? न ढाएँ? क्या करें? अबरहा की दुर्दशा ये लोग अपनी आँखों से देख चुके थे, जो काबा को ढाने के इरादे से निकला था। फ़ौज और हथियारों के साथ आया था। लेकिन न काबा तक पहुँच सका और न वापस जा सका। पूरे दल के साथ तहस-नहस हो गया। इस घटना को अभी अधिक समय नहीं हुआ

था। उसकी हलाकत और बरबादी का भयानक दृश्य लोगों की निगाहों के सामने आ जाता और वे भयभीत हो जाते। लेकिन उनका मक़सद ढाना नहीं, नए सिरे से बनाना था। अतएव नमाज़ें पढ़ी गईं, क़ुरबानियाँ की गईं, दुआएँ माँगी गईं, विनती और प्रार्थनाएँ की गईं। फिर एक आदमी आगे बढ़ा। भय से उसका शरीर काँप रहा था। वह था वलीद-बिन मुग़ीरा। लरज़ते हाथों से उसने कुदाल पकड़ी और एक खम्बा ढा दिया।

हर ओर सन्नाटा छाया हुआ था और लोग चुप-चाप खड़े देख रहे थे, वे इन्तिज़ार में थे कि देखें वलीद की क्या गत होती है? वह किस बला में घिरता है? रात बीत गई। नई सुबह भी उदय हो गई, लेकिन वलीद को कुछ भी न हुआ। उसपर कोई भी मुसीबत न आई! अब क़ुरैश की हिम्मत बढ़ी। दिल को इत्मीनान हुआ और काबा की इमारत ढानी शुरू कर दी।

ढाने में सबने हिस्सा लिया। पत्थरों को हटाने में भी सब शरीक रहे। ढाते-ढाते एक हरी चट्टान पर पहुँचे। उसपर भी कुदालें मारीं। कुदालें छटक-छटक गईं और चट्टान टस से मस न हुई। फिर वही नई इमारत की बुनियाद बनी।

क़रीब ही पहाड़ियों का सिलसिला था। वहाँ से पत्थर ढो-ढो कर लाए और नई इमारत बनाने लगे। आप *(सल्ल.)* और आपके सभी चचा इस काम में आगे-आगे थे। देखते-देखते मज़बूत दीवारें खड़ी हो गईं।

काबा की पुरानी दीवार में पूरब की ओर एक काला पत्थर था और अब भी है, उसको 'हजरे-असवद' यानी काला पत्थर ही कहते हैं। अरब उसे बहुत बरकतवाला समझते थे। इस्लाम में भी उसका ख़ास मक़ाम है। काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करते हैं तो हर तवाफ़ उसी पत्थर से शुरू करते हैं। उसे चुम्बन भी देते हैं।

क़ुरैश ने दीवार कुछ ऊँची कर ली। अब 'हजरे-असवद' रखने का समय आया तो सवाल पैदा हुआ कि यह सौभाग्य किसे प्राप्त हो? कौन उसे उसकी जगह पर रखे? कोई क़बीला भी इस सौभाग्य से वंचित रहने को तैयार न था। हर एक यह सौभाग्य ख़ुद हासिल करना चाहता था और दूसरों के मुक़ाबले में अपने को ज़्यादा हक़दार समझता था।

एक हंगामा उठ खड़ा हुआ। लोगों में नोक-झोंक होती रही। मतभेद

बढ़ता गया। हालात बिगड़ते चले गए। वे दिल जो अब तक जुड़े हुए थे, अल्लाह के घर के नाम पर आपस में घुल-मिल गए थे, फटना शुरू हो गए और उनमें नफ़रत और बैर की आग सुलगने लगी।

पाँच रातें बीत गईं। हंगामा ख़त्म न हुआ। न कोई बात तय हुई। न किसी नतीजे पर वे सहमत हो सके। हालात बड़े ही संगीन हो गए। लोग लड़ने-मरने के लिए तैयार हो गए। बनी-अब्दुद्दार और बनी-अदी दो मशहूर क़बीले थे। उन्होंने आपस में गठ-जोड़ कर लिया। दोनों ने अहद किया कि यह श्रेय किसी हाल में हाथ से न जाने देंगे। किसी और क़बीले को इसके निकट भी नहीं फटकने देंगे। अरब में रिवाज था, जान देने का अहद करते तो प्याले में ख़ून भरकर रखते और अहद करनेवाले उसमें अपना हाथ डुबोते। इन्होंने इस अवसर पर यह रस्म भी अदा की। तलवारें म्यान से बाहर आ गईं और बात यहाँ तक पहुँची कि अब इस झगड़े का फ़ैसला तलवार ही करेगी। उसी समय अबू-उमय्या-बिन-मुग़ीरा खड़ा हुआ। यह क़ुरैश का सबसे बूढ़ा और तजरिबेकार आदमी था। हर एक उसकी इज़्ज़त करता और उसकी बात के आगे सिर झुका देता था। उसने बड़े ही नर्म अन्दाज़ में कहा—

"मेरे भाइयो! इज़्ज़त और सरदारी में तुम सबका पद समान है। बिला वजह आपस में लड़ो-झगड़ो नहीं। नफ़रत और बैर की आग न भड़काओ। अक़्ल और होश से काम लो और मेरी बात मानो। पहला क़ुरैशी जो बाबुस्सफ़ा से दाख़िल होकर आए, इसका फ़ैसला उसी पर छोड़ दो।"

यह बात सबने मान ली। काबा के चारों ओर हरम शरीफ़ की चारदीवारी है। उसके दरवाज़ों में से एक का नाम बाबुस्सफ़ा है। क्योंकि यह सफ़ा पहाड़ की तरफ़ पड़ता है। सबने निगाहें बाबुस्सफ़ा पर गड़ा दीं और इन्तिज़ार करने लगे, देखें उनकी क़िस्मत का फ़ैसला किसके हाथ में जाता है और वह किस तरह इस गुत्थी को सुलझाता है। मालिक का करिश्मा देखो, थोड़ी देर बाद एक ख़ूबसूरत नौजवान बाबुस्सफ़ा से आता दिखाई देता है। वह तेज़ी से चला आ रहा है। देखते ही सब चीख़ पड़ते हैं—

"अमीन! अमीन! मुहम्मद अमीन का फ़ैसला तस्लीम।"

कितना भरोसा था क़ौम को इस जवान पर! पूरी क़ौम में कोई

नहीं, जिसे इसकी सच्चाई पर शक हो। कोई नहीं जिसे उसका फ़ैसला मानने में झिझक हो। देखना है, आज इस नाज़ुक मौक़े पर वह क्या रोल अदा करता है।

लोग बेताबी से आगे बढ़े और आपसे फ़ैसला करने की गुज़ारिश की। आपने फ़रमाया—

"एक कपड़ा लाओ।" कपड़ा आया। आप (सल्ल०) ने उसे फैला दिया। फिर 'हजरे-असवद' को उठाया और उसपर रख दिया। फिर फ़रमाया—

"हर क़बीले का सरदार एक-एक कोना पकड़ ले और सब मिलकर उठाएँ।"

क़बीलों के सरदार आगे बढ़े। उन्होंने कपड़े के कोने पकड़े और जिस जगह पत्थर को लगाना था वहाँ तक ले आए। फिर आपने उसे ख़ुद उठाया और उसकी जगह रख दिया। लोग ख़ुशी से उछल पड़े? हर तरफ़ ख़ुशी की लहर दौड़ गई। कितनी पेचीदा थी यह समस्या! और कितनी आसानी से हल हो गई। हर एक की बात रह गई। कोई भी इस सौभाग्य से वंचित न हुआ। आपकी सूझ-बूझ और अक़्लमन्दी से एक बड़ा फ़ितना दब गया। क़ौम अत्यन्त विनाशकारी गृहयुद्ध से बाल-बाल बच गई। दुश्मनी और बैर की आग बुझ गई और सब पहले की तरह आपस में घुल-मिल गए।

फिर क़ुरैश ने काबा का निर्माण पूरा किया। खम्बों पर छत डाल दी और अन्दर जाने के लिए एक दरवाज़ा खोल दिया, जहाँ मूर्तियों का महाराजा हुबल विराजमान था।

उस वक़्त तक आपकी मुबारक ज़िन्दगी की पैंतीस बहारें बीत चुकी थीं।

देखा आपने, मुहम्मद *(सल्ल.)* कितने सच्चे थे। क़ौम में कितने प्रिय थे। बेदाग़ किरदार। पवित्र स्वभाव। हर एक आपकी इज़्ज़त करता। जो कुछ फ़रमाते उसे मानता।

"और बेशक तुम महान चरित्र के अधिकारी हो।" (क़ुरआन)

ख़ुदा की आवाज़

(1) अन्धेरे में चार जुगनू
(2) अन्धकार प्रेमियों का शर्मनाक बर्ताव
(3) हिरा की गुफा में सत्य की खोज
(4) ग़म पर ग़म
(5) ग़ुलाम की क़िस्मत जाग उठी
(6) हज़रत अली आप *(सल्ल.)* की सरपरस्ती में
(7) नुबूवत की निशानियों का ज़ाहिर होना
(8) हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* का आना और आप *(सल्ल.)* की बेचैनी
(9) बीबी ख़दीजा *(रज़ि.)* की दिलजोई और ईमान में पहल
(10) वरक़ा-बिन-नौफ़ल से मुलाक़ात
(11) वह्य का रुक जाना
(12) वह्य का आना और फिर रुक जाना
(13) तसल्ली का प्यारा अन्दाज़
(14) अली *(रज़ि.)* और ज़ैद *(रज़ि.)* ईमान की गोद में
(15) अबू-बक्र *(रज़ि.)* सत्यवादियों के साथ
(16) मुसलमान और इस्लाम का प्रचार
(17) अबू-तालिब आप *(सल्ल.)* के हामियों में
(18) क़ुरैश की शरारतें

(1)

अरब के लोग हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के दीन को छोड़ चुके थे, उनका सन्देश भूल चुके थे। मूर्तियों की पूजा में लग गए थे। लेकिन क़ुरैश के कुछ लोगों को इस गुमराही का एहसास हुआ। उन्होंने शिर्क और मूर्तिपूजा के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई और लोगों को हज़रत इबराहीम *(अलैहि॰)* की दी हुई शिक्षा याद दिलाई। मक्कावालों से उन्होंने कहा–

"क़ुरैश के लोगो! इबराहीम के बेटो! अल्लाह का घर पाक करो। काबा में तुमने जो मूर्तियाँ रख छोड़ी हैं, उन्हें हटा दो। वे तो बिलकुल बेजान हैं, न सुन सकें न देख सकें। उनको पूजने से फ़ायदा क्या? तुम उनकी परिक्रमा करते हो। उनपर चढ़ावे चढ़ाते हो। उनके नाम की क़ुरबानियाँ करते हो।

भाइयो! इस दीन के बदले कोई और दीन तलाश करो जो समझ में भी आता हो।

भाइयो! तौरात और इंजील में एक नबी का उल्लेख हुआ है। वह नबी तुम्हारे यहाँ ही होगा। वह बस आने ही वाला है। यहूदी आलिम, ईसाई पादरी, काहिन सब यही कहते हैं। इसलिए तुम शिर्क और बुत-परस्ती से तौबा कर लो और अभी से उसका इन्तिज़ार करो। दुनिया में भी कामियाब होगे, आख़िरत में भी निहाल रहोगे।"

उस समय यह बिलकुल एक नई आवाज़ थी। क़ुरैश के कान खड़े हो गए कि कौन लोग हैं? देखते हैं तो उमर-बिन-नुफ़ैल के बेटे ज़ैद हैं। नौफ़ल के बेटे वर्क़ा हैं। हारिस के बेटे उस्मान और जहश के बेटे उबैदा हैं।

ये सब अपनी क़ौम के बुज़ुर्ग और बड़े लोग थे। लोग इनकी इज़्ज़त करते थे। हर व्यक्ति जानता था, ये चारों आदमी इबराहीम

(अलैहि.) के दीन के अनुयायी हैं। उन्होंने शराब और जुए को अपने ऊपर हराम कर रखा है। मूर्ति-पूजा से उन्हें सख़्त नफ़रत है। बेसहारा लड़कियों के लिए दया ही दया है। अगर सुन लेते हैं कि कोई आदमी अपनी ज़िन्दा मासूम बच्ची को ज़मीन में गाड़ने जा रहा है, केवल दरिद्रता और निर्धनता के डर से या उसे अपने लिए कलंक समझ कर, तो ये फ़ौरन जाकर उसे किसी तरह हासिल कर लेते हैं और खुद उसकी परवरिश करते हैं। जवान होने पर उसके बाप अगर चाहें तो फिर वापस भी कर देते हैं।

यह सब कुछ सही, लेकिन क़ुरैश को भला यह कब सहन हो सकता था कि ये लोग ऐसी नई और अजनबी आवाज़ बुलन्द करें! यह किस तरह बर्दाश्त कर सकते थे कि उनके दीन की खुल्लम-खुल्ला आलोचना की जाए और उसे ग़लत बतलाया जाए। उनकी मूर्तियों का खण्डन किया जाए और उन मूर्तियों की बेबसी की चर्चा करके दिलों को उनसे फेरा जाए।

इसी तरह की पूजा-पाठ और भेंट-चढ़ावों में उनकी उम्रें बीत गई थीं। ये ही उनके उपास्य और माबूद थे, जिनको वे बाप-दादा के ज़माने से पूजते आए थे। क्या वे उन्हें छोड़ दें? यह तो कभी सोच भी नहीं सकते थे। उन्होंने नफ़रत से मुँह फेर लिए। सत्य की इस आवाज़ को तुच्छ समझते हुए कान बन्द कर लिए। फिर इसी पर बस न था। बहुतों ने गालियाँ भी दीं, तानों के तीर भी चलाए। हँसी भी उड़ाई और जितना हो सका उनपर हमले किए।

इसी तरह एक ज़माना बीत गया। कोई तो घर-बार छोड़कर बाहर चला गया और कोई ईसाई हो गया। इबराहीम *(अलैहि.)* के दीन पर केवल ज़ैद रह गए। वे काबा की दीवार से लिपटकर रोते और कहते—

"ऐ खुदा! अगर मैं जानता, तुझे कौन सा तरीक़ा पसन्द है तो उसी को अपनाता। मगर ...... मुझे नहीं मालूम।" फिर बेइख़्तियार सजदे में गिर पड़ते।

(2)

चारों बुज़ुर्गों ने अपने अक़ीदे का ऐलान कर दिया। उन्होंने जो समझा, साफ़-साफ़ बयान कर दिया। इसपर क़ुरैश ने ख़ूब मज़ाक़

उड़ाया। वही लोग जो अब तक ख़ूबियों में बे-मिसाल थे, शराफ़त और इनसानियत के आदर्श रूप थे उन्हीं में अब कीड़े ही कीड़े दिखाई देने लगे। ऐब ही ऐब नज़र आने लगे। उन्हें क्या पता था, एक जवान और है, जो उनकी आँखों का तारा और दिल का सहारा है। जो उनको जान से भी प्यारा है। वह भी उन्हीं का हम-ख़याल है। उन्हीं के दीन का ध्वजावाहक है। हाँ, उसने अभी ऐलान नहीं किया है। अभी वह खुद ही तन्हाई में पड़ा सोच रहा है और सच की खोज में गुम है।

मक्का से छः मील पर हिरा नामक एक पहाड़ है। उसमें एक गुफा है; जो 'ग़ारे-हिरा' के नाम से मशहूर है। मुहम्मद *(सल्ल.)* उसी गुफा में चले जाते। कई-कई दिन और कई-कई रातें वहीं रहते। जिस सत्य के लिए आप बेक़रार थे, उसको खोजते, उसको पाने की कोशिश करते। जिस ज्ञान की अभिलाषा थी उसकी तलाश करते।

रमज़ान का महीना आता तो बिलकुल यकसू हो जाते। वहाँ न इनसानों का शोर-गुल होता न दुनिया के हंगामे। बिलकुल तन्हाई और ख़ामोशी का माहौल होता। वहीं सोच-विचार में लगे रहते। जो कुछ रूखा-सूखा पास होता, उसी पर बस करते। कभी घर आकर खुद ही ले जाते और कभी घरवाले पहुँचा देते।

ये थे आप *(सल्ल.)* के दिन! और ये थीं आपकी रातें!! विचारों के समुद्र में ग़ोते लगाते। मन की गहराइयों से पूछते। जो सत्य मालूम होता शौक़ के हाथों से पकड़ लेते, जो असत्य मालूम होता, उसे दिल-दिमाग़ से निकाल देते।

यह दुनिया जिसमें हम रह रहे हैं, इसकी हक़ीक़त क्या है? यह एक सवाल था, जिसका जवाब पाने के लिए आप बड़े बेचैन थे।

साल पर साल बीतते रहे और आपका यही हाल रहा। रोज़ गुफा में जाते। जब रमज़ान आता तो बिलकुल यकसू हो जाते और दिन-रात वहीं रहते! फिर जब मक्का लौटते तो सबसे पहले काबा जाते और उसका तवाफ़ करते।

फिर बाल-बच्चों में आते। बीबी ख़दीजा बहुत ही प्यार और मुहब्बत से पूछतीं, "कहिए मेरे प्रिय! क्या हाल-चाल हैं? कैसे मिज़ाज हैं? आप ख़ैरियत से तो हैं?"

फ़रमाते, "हाँ, खुदा का शुक्र है। उसकी बड़ी मेहरबानी है, सब ठीक है।"

बच्चे आपको घेर लेते। जो बहुत छोटे होते वे लिपट जाते। जो बड़े होते, वे बातें करते। बड़े भोलेपन से पूछते—

"आप कहाँ थे अब्बाजान? हम भी आप के साथ चलेंगे।"

आप उनको गोद में उठा लेते। प्यार करते। मुहब्बत से सिर पर हाथ फेरते। उनके साथ मीठी-मीठी बातें करते और फ़रमाते—

"अच्छा कभी तुम भी मेरे साथ चलना।"

आप कुछ समय बाल-बच्चों में गुज़ारते। उनकी प्यारी-प्यारी बातों से खुश होते। उनसे हँस-बोलकर सुकून महसूस करते, उनकी मासूम अदाओं से खुश होते फिर हिरा की गुफा में लौट जाते।

लेकिन ये मुबारक घड़ियाँ और खुशी के दिन जल्द ही ख़त्म हो गए। आपके सब बेटे एक-एक करके अल्लाह को प्यारे हो गए। क़ासिम, तय्यिब और ताहिर सब अल्लाह से जा मिले। ज़ख़्म पर ज़ख़्म लगते रहे, लेकिन आप सब्र करते रहे। बचपन में तो यतीमी का दुःख उठाया। बड़े हुए तो अपने जिगर के टुकड़ों का ग़म सहन करना पड़ा।

आपकी बेटियाँ ही रह गईं, जो चार थीं। ज़ैनब, रुक़य्या, उम्मे-कुलसूम और फ़ातिमा।

ज़ैनब बड़ी हुईं तो उनकी शादी अबुल-आस से कर दी। यह बीबी ख़दीजा के भांजे और रबी के बेटे थे। फिर रुक़य्या और उम्मे-कुलसूम की शादी उत्बा और उतैबा से कर दी, ये दोनों अबू-लहब के बेटे थे।

आपके साथ केवल फ़ातिमा रह गईं। प्यारी और नन्ही फ़ातिमा। आप बेटों से तो महरूम हो गए, परन्तु क़िस्मत से दो बच्चे मिल गए। अब वे दोनों आपके बेटे थे और आप उनके बाप।

बीबी ख़दीजा के एक भतीजे थे, हुकैम-बिन-हिज़ाम। एक रोज़ बीबी ख़दीजा उनसे मिलने गईं तो एक ग़ुलाम भी साथ लाईं। वह बहुत ख़ूबसूरत था। लाड-प्यार में पला था। आपने फ़रमाया—

"यह कैसा लड़का है ख़दीजा?"

ख़दीजा : "हुकैम जो मेरे भतीजे हैं, शाम (सीरिया) से कुछ ग़ुलाम लाए थे, एक मुझको दे दिया।"

मुहम्मद *(सल्ल.)* : "खुदा की क़सम, इसके चेहरे पर शराफ़त की चमक है। अक़्लमन्दी और सूझ-बूझ की अलामतें भी हैं।"

ख़दीजा : "कहा जाता है कि यह बहुत ही लाड-प्यार में पला हुआ है इत्तिफ़ाक़ से बनी-क़ैन के हाथ लग गया। उन्होंने हिबाशा[1] के बाज़ार में बेच दिया।"

आप *(सल्ल.)* ने ग़ुलाम को बहुत प्यार और मुहब्बत से देखा। फिर पूछा, "बेटे तुम्हारा नाम क्या है?"

ग़ुलाम : मेरा नाम ज़ैद है।

मुहम्मद *(सल्ल.)* : किस वंश से ताल्लुक़ रखते हो।

ग़ुलाम : "मेरे बाप का नाम हारिसा है। दादा का नाम शुरहबील है और परदादा का नाम कअब है। और मेरी माँ का नाम सौदा है, वे सालिबा की बेटी हैं और तय क़बीले से आई हैं।"

आपने बीबी ख़दीजा से फ़रमाया : क्या अब यह ग़ुलाम मेरा नहीं है?

ख़दीजा : हाँ, हाँ, क्यों नहीं, यह आप ही का है।

आप *(सल्ल.)* ने उसी समय ग़ुलाम को आज़ाद कर दिया और अपना बेटा बना लिया। फिर ग़ुलाम के माँ-बाप के पास एक आदमी भेजा कि उनको इत्मीनान हो जाए कि उनका बेटा ख़ैरियत से है।

ख़बर मिलते ही ज़ैद के बाप और चचा मक्का आए। उन्होंने आपसे दरख़ास्त की :

"हम से मुँह माँगे दाम ले लीजिए, परन्तु बेटे को छोड़ दीजिए।"

आपने कहा : "एक सूरत है।"

वे बोले : "वह क्या है?"

आपने कहा : "मैं उसे बुलाता हूँ और उसकी ख़ुशी पर छोड़ता हूँ, अगर वह साथ जाना पसन्द करे तो आप लोग उसे ले जाएँ। मुझे दाम देने की ज़रूरत नहीं और अगर उसने मेरे साथ रहना पसन्द किया तो फिर मैं भी उसको नहीं छोड़ता, जो मुझे नहीं छोड़ता।"

वे बोले : "यह तो आपकी बड़ी मेहरबानी है।"

---

1. हिबाशा, अरब का एक मशहूर बाज़ार था। जिस समय ज़ैद *(रज़ि.)* इस बाज़ार में बेचे गए, उनकी उम्र 8 साल थी।

आपने ज़ैद को बुलाया और फ़रमाया : "देखो ये दो मेहमान आए हैं। क्या इन्हें पहचानते हो?"

ज़ैद ने कहा : "हाँ, हाँ, ये तो मेरे बाप और चचा हैं।"

फ़रमाया : "तुम्हारी इच्छा है। चाहो तो इनके साथ घर चले जाओ और दिल चाहे तो मेरे साथ रह जाओ।"

वह फ़ौरन आपसे लिपट गया। बोला : "नहीं, नहीं मैं तो आप ही के साथ रहूँगा।"

ज़ैद का बाप हारिसा ग़ुस्से से लाल हो गया, कड़क कर बोला—

"ज़ैद! माँ-बाप और क़ौम व वतन को छोड़कर तू ग़ुलामी पर राज़ी है?"

ज़ैद ने कहा : "इन्होंने मुझे ग़ुलाम नहीं बनाया है। इनमें ऐसी ख़ूबियाँ हैं कि मैं इन्हें कभी नहीं छोड़ सकता।"

आप *(सल्ल.)* ने ज़ैद का हाथ पकड़ा। लेकर क़ुरैश के पास आए। और फ़रमाया : "आप लोग गवाह रहें, यह मेरा बेटा है। यह मेरा वारिस होगा और मैं इसका वारिस।"

हारिसा ने यह मंज़र देखा तो ख़ुशी से उछल पड़ा और बेटे को आप ही के पास छोड़कर चला गया।

थोड़े ही समय बाद चचेरे भाई अली भी आपकी सरपरस्ती में आ गए। हाँ, वही अली जो अबू-तालिब के बेटे हैं। इस तरह ज़ैद और अली दोनों साथ रहने लगे और आपके लाड-प्यार में ज़िन्दगी की सारी कड़ुवाहट भूल गए।

अली आप *(सल्ल.)* की सरपरस्ती में क्यों आए? बात यह थी कि अबू-तालिब के यहाँ बाल-बच्चे बहुत थे, परन्तु माल की कमी थी। बड़ी मुसीबतों से गुज़ारा करते। न जाने, किन-किन परेशानियों से दिन काटते। इसपर ग़ज़ब यह हुआ कि अरब में सख़्त अकाल पड़ा। ऐसा अकाल जो अपनी मिसाल आप था। अबू-तालिब की तो बात ही क्या? बड़े-बड़े रईसों की कमर टूट गई और बड़े-बड़े मालदार कंगाल हो गए।

आप *(सल्ल.)* के एक-दूसरे चचा अब्बास थे। ये बनी-हाशिम के रईसों में थे। आपने उनसे कहा,

"हम दोनों चचा अबू-तालिब के दो लड़कों को अपनी परवरिश में

ले लें। इससे उनका कुछ बोझ हल्का होगा और परेशानियाँ कम हो जाएँगी।'' अब्बास ने यह राय पसन्द की। दोनों अबू-तालिब के पास गए। उनके सामने अपनी बात रखी। अबू-तालिब ने कहा—

''अल्लाह तुम दोनों का भला करे! मुझे कोई आपत्ति नहीं। इनमें से जिन दो को चाहो, ले लो।''

अब्बास ने जाफ़र को ले लिया और आप *(सल्ल.)* ने अली को। उस वक़्त से आप अली के प्यारे बाप बन गए और अली आपके चहेते बेटे।

(3)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की उम्र की चालीसवीं बहार शुरू हो गई।

अब आप पर वह हक़ीक़त खुलनी शुरू हो गई, जिसकी आरज़ू में आप जी रहे थे। जिसकी सालों से तलाश थी और जिसके लिए आप बेहद बेक़रार थे। सालों की इबादत और तपस्या से रूह में रौशनी फूट पड़ी। दिल दर्पण की तरह चमक उठा। अन्तर दमक उठा और आप पर अल्लाह की तरफ़ से हिदायत उतरने लगी।

आप *(सल्ल.)* को सच्चे स्वप्न दीखने शुरू हुए, उनसे आपपर हक़ीक़त खुल गई। अन्धकार के बादल छँट गए, जिन्हें हटाने के लिए आप बराबर कोशिश कर रहे थे। आपके सामने सत्य-मार्ग स्पष्ट हो गया। आप *(सल्ल.)* ने स्वप्न में देखा, दुनिया की रंगीनी चार दिन की चाँदनी है और यहाँ के सुख और लज़्ज़तें सिर्फ़ वक़्ती और एक दिन ख़त्म हो जानेवाली हैं।

आप *(सल्ल.)* को पूरा अन्दाज़ा हो गया कि लोग कितनी ग़लत बातों में गिरफ़्तार हैं। उनके विचारों और धारणाओं में कितना बिगाड़ है और वे सीधी राह से कितने दूर हैं।

आप *(सल्ल.)* यह जान गए कि सिर्फ़ अल्लाह ही सबका उपास्य और माबूद है। उसका कोई शरीक और साझी नहीं। सारे इनसान उसी के बन्दे हैं। धरती और आसमान भी उसी के अधीन हैं। वह सबको उसके किए का बदला देगा। कण भर नेकी होगी, वह भी सामने आएगी, बुराई होगी, वह भी सामने आएगी।

आप *(सल्ल.)* को बराबर सच्चे ख़ाब दिखाई देते रहे। जो बातें जानने के लिए आप बेचैन थे, जिनकी हक़ीक़त मालूम करने के लिए आप

तड़प रहे थे, अब वे सूरज और चाँद की तरह सामने आ गईं। सत्य बिलकुल खुलकर आँखों के सामने आ गया। असत्य की सारी वास्तविकता आप पर स्पष्ट हो गई। इससे आपको बेहद ख़ुशी हुई। दिल गुलाब की तरह खिल उठा। सीना ईमान के नूर से दमक उठा, लेकिन साथ ही घबराहट भी हुई।

आप *(सल्ल.)* को एक मुद्दत से हक़ीक़त की तलाश थी। इस हक़ीक़त को पाकर आपको बेहद ख़ुशी हुई। लेकिन इसका ऐलान करने पर लोगों की क्या प्रतिक्रिया और क्या रवय्या होगा? यह सोचकर आप घबरा उठे और भय से दिल काँपने लगा।

अल्लाह ने आप *(सल्ल.)* को हिदायत दी। आपको वह राह दिखाई जो उसके नेक बन्दों की राह है। लेकिन लोग तो गुमराही की दलदल में फँसे हैं। उन्हें हिदायत के रास्ते पर कौन लाएगा? असत्य से उन्हें बेज़ार कौन करेगा? सत्य को उनके दिल में कौन उतारेगा!!

जब ख़ाब सुबह की तरह रौशन हो जाता और सत्य सिद्ध होता और इस प्रकार अज्ञात बातें मालूम हो जातीं तो आप *(सल्ल.)* बहुत फ़िक्रमन्द होते। मन में तरह-तरह के विचार गूँजने लगते। आपको अपने बारे में शक होने लगता, कहीं मैं मानसिक रोगी तो नहीं? कहीं मुझ पर भूत-प्रेतों का कोई असर तो नहीं? आपने अपनी बीवी ख़दीजा को सारा हाल सुनाया, दिल पर जो बीत रही थी वह भी बताया। ख़दीजा ने सारी बातें ध्यान से सुनीं। फिर आपको ढारस बँधाई। बोलीं—

"मेरे जीवन साथी! आप फ़िक्र न करें। आप जैसे सज्जन पर शैतान कैसे क़ाबू पा सकता है?"

फिर जब रमज़ान आया तो आप *(सल्ल.)* पहले की तरह फिर गुफा में चले गए। हर चीज़ से कटकर चिन्तन-मनन और इबादत में लग गए। किसी समय घरवाले भी आ जाते। वे आपको देखकर अपनी आँखें ठण्डी करते और कुछ खाना-पानी रख जाते। ग़रीब और ज़रूरतमन्द भी आते रहते। आप उनकी भी मदद करते।

इसी तरह रमज़ान के कुछ दिन बीत गए। एक दिन आप *(सल्ल.)* गुफा में आराम कर रहे थे। सुबह का सुहाना समय था। अचानक एक फ़रिश्ता दिखाई दिया। बहुत ही ख़ूबसूरत और हसीन फ़रिश्ता। हाथ में

हसीन रेशम का एक टुकड़ा भी था। बोला : "पढ़ो।"

आप *(सल्ल.)* घबरा गए। फ़रमाया : "मुझे पढ़ना नहीं आता।"

आप *(सल्ल.)* को ऐसा महसूस हुआ, जैसे वह शरीर को भींच रहा हो। फिर छोड़ दिया और कहा : "पढ़ो।"

फ़रमाया : "मुझे पढ़ना नहीं आता।"

फिर आप *(सल्ल.)* को महसूस हुआ जैसे वह शरीर को भींच रहा है। फिर छोड़ दिया और कहा : "पढ़ो।"

आप *(सल्ल.)* को अन्देशा हुआ कि वह फिर शरीर और भींचेगा और इस बार और ज़ोर से भींचेगा

"क्या पढ़ूँ?"

बोला : "पढ़ो अपने रब के नाम से जिसने पैदा किया। पैदा किया इनसान को ख़ून की फुटकी से। पढ़ो तुम्हारा मेहरबान रब ही है जिसने क़लम से सिखाया। इनसान को वह कुछ सिखाया, जो उसे मालूम न था।" (क़ुरआन)

फ़रिश्ते के बताने पर आप *(सल्ल.)* ने पढ़ा। पढ़ते ही याद हो गया। चित्त पर अंकित हो गया। फिर फ़रिश्ता चला गया। आप *(सल्ल.)* उठ खड़े हुए। भय से दिल बैठा जा रहा था। घबराहट से चेहरा उतरा हुआ था। आप सहमी-सहमी निगाहों से गुफा में हर तरफ़ देखने लगे। हैरानी और घबराहट की हालत थी। दिल ही दिल में सोचने लगे :

'अभी मुझसे किसने बातें की हैं? कौन मुझे पढ़ा कर गया है?'

फिर तेज़ी से गुफा से बाहर आए। अब आप *(सल्ल.)* पहाड़ की घाटियों से गुज़रने लगे। पूरा शरीर, थर-थर काँप रहा था। दिल में बार-बार ख़याल आता कि शुरू में जो स्वप्न दिखाई दिए, वे तो बिलकुल सच्चे निकले, उनसे बहुत सी नई बातें मालूम हो गईं। जिस चीज़ की तलाश थी, वह खुलकर सामने आ गई, लेकिन वह कौन था, जो अभी यहाँ खड़ा था? वह कौन था जो पढ़ने के लिए कह रहा था?

अचानक एक आवाज़ आई : "मुहम्मद!"

आप *(सल्ल.)* चौंक पड़े। घबरा कर सिर ऊपर उठाया, देखा तो वही फ़रिश्ता आदमी की सूरत में खड़ा था। वह पुकार कर कह रहा था—

"मुहम्मद! तुम अल्लाह के रसूल हो और मैं जिबरील हूँ।"

आप *(सल्ल.)* की घबराहट और बढ़ी। डर के मारे रोंगटे खड़े हो गए। भय से क़दम रुक गए। कभी दाईं तरफ़ देखते, कभी बाईं तरफ़ कि यह सूरत आँखों से ओझल हो। लेकिन जिधर देखते, वही दिखाई देता। जिधर मुँह करते,- वही मौजूद होता। आगे बढ़ें या पीछे हटें। नज़रें नीची करें या ऊपर उठाएँ, हर तरफ़ और हर जगह वही फ़रिश्ता दिखाई देता।

देर......बहुत देर हो गई, आप *(सल्ल.)* इसी प्रकार थर-थर काँपते रहे और न जाने क्या-क्या सोचते रहे। उधर बीबी ख़दीजा ने गुफ़ा में आप *(सल्ल.)* के पास आदमी भेजा। आप *(सल्ल.)* वहाँ न मिले। रिश्तेदारों के यहाँ दिखवाया, वहाँ भी न थे। यहाँ-वहाँ आदमी दौड़ाया लेकिन न मिलना था न मिले।

फ़रिश्ता चला गया! आप *(सल्ल.)* ख़दीजा के पास आए, भय से काँपते हुए और पसीने में नहाए हुए। आते ही फ़रमाया—

"मुझे कुछ उढ़ा दो! कुछ उढ़ा दो!"

तुरन्त बीबी ख़दीजा ने चादर उढ़ा दी। आप *(सल्ल.)* की यह हालत देखकर वे बहुत घबराईं। दिल में तरह-तरह के अन्देशे उभड़ने लगे। क्या आपकी तबीअत ख़राब हो गई? क्या आपको जाड़ा बुख़ार आ गया है? क्या कोई मुसीबत आ पड़ी?

जब मन कुछ शान्त हुआ, भय कुछ दूर हुआ, शरीर की कपकपी में कमी हुई तो बीबी ख़दीजा ने पूछा, "आप थे कहाँ? और आपको हुआ क्या?"

आप *(सल्ल.)* ने उनकी तरफ़ देखा, ऐसा महसूस हो रहा था जैसे आप बेबस होकर रह गए हैं। मानो मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा हो। फ़रमाया :

"ख़दीजा! मैं तुम्हें क्या बताऊँ कि मुझे क्या हुआ?!"

फिर जो कुछ देखा था, वह बयान किया बीबी ख़दीजा थीं बहुत समझदार, ये बातें सुनकर ज़रा भी न घबराईं, उन्होंने आप *(सल्ल.)* को बहुत ही इज़्ज़त की नज़र से देखा। उनके चेहरे पर यक़ीन और इत्मीनान की मुस्कराहट थी। फिर आप *(सल्ल.)* को इत्मीनान दिलाया। बोलीं :

"चचा के लाडले ख़ुश हो जाइए और जो कर रहे हैं, करते रहिए।

उस ज़ात की क़सम जिसके हाथ में ख़दीजा की जान है जो कुछ आपने देखा है उसमें घबराने की कोई बात नहीं। अगर आप इस उम्मत के नबी न होंगे तो और कौन होगा? आप तो सच बोलते हैं, रिश्तों को जोड़ते हैं, अमानतों में ख़ियानत नहीं करते। मजबूरों और बेसहारा लोगों को सहारा देते हैं। निर्धनों और मोहताजों की ख़ातिर करते हैं, भलाई के कामों में मदद करते हैं। भला अल्लाह आपको बर्बाद कैसे कर सकता है।''

ख़दीजा की इन बातों से आप *(सल्ल.)* को बड़ी तसल्ली हुई, बेचैनी दूर हुई और मुखड़ा ख़ुशी से चमक उठा। आप *(सल्ल.)* ने इस तसल्ली पर उनका शुक्रिया अदा किया, फिर सो गए।

बीबी ख़दीजा ने आप *(सल्ल.)* की बातों पर विचार किया तो बड़ी ख़ुश हुईं, किन्तु साथ ही कुछ डरीं भी। आपसे उनको बेहद प्रेम और निष्ठा थी इसलिए कुछ अन्देशों और डर का होना स्वाभाविक था। उन्होंने सोचा, चलें चचेरे भाई वरक़ा के पास, कुछ उनसे पूछे। शायद वे कुछ बताएँ।

वरक़ा नौफ़ल के बेटे थे। बड़े समझदार और आलिम थे। विभिन्न धर्मों का उन्होंने अध्ययन किया था। बड़ी बारीकी के साथ हरेक की छान-बीन की थी। पहले उनकी दिलचस्पी यहूदी धर्म की तरफ़ हुई, फिर वे ईसाई हो गए। इंजील पर उनकी गहरी नज़र थी। अरबी भाषा में उसका अनुवाद भी करते थे। ख़दीजा ने जाकर उनको सारा क़िस्सा सुनाया। आप *(सल्ल.)* पर जो कुछ बीती थी, सब कह सुनाया। सब कुछ सुनकर आख़िर में वरक़ा बोले—

''पाक है, पाक है......क़सम है उस ज़ात की जिसकी मुट्ठी में वरक़ा की जान है। ख़दीजा! अगर तुम्हारी बात सही है तो यह वही फ़रिश्ता है, जो मूसा *(अलैहि.)* के पास आता था। अल्लाह की क़सम, मुहम्मद इस उम्मत के नबी होंगे। उनसे कहो, डरें नहीं, जो कुछ कर रहे हैं, करते रहें।''

बीबी ख़दीजा लौटकर आईं। आप *(सल्ल.)* को ख़ुशख़बरी सुनाई, बोलीं—

''मुबारक हो, मेरे सरताज! मुबारक हो! आपके रब ने आपको

सम्मान दिया है और आपका दर्जा बुलन्द किया है।"

फिर चचेरे भाई वरक़ा से जो बातें हुई थीं, सब बयान कीं और आख़िर में बतलाया कि वे आपसे मिलना चाहते हैं। फिर उसी वक़्त ख़दीजा आप पर ईमान भी ले आईं।

आप काबा का तवाफ़ करने चले। रास्ते में वरक़ा मिल गए। देखते ही आपसे बोले : "भतीजे! ज़रा मुझे भी सुनाओ, तुमने क्या देखा?"

आप *(सल्ल.)* ने सारी बात बता दी। वरक़ा ने कहा : "उस ज़ात की क़सम, जिसके हाथ में मेरी जान है, तुम इस उम्मत के नबी होगे। यह वही फ़रिश्ता है जो मूसा *(अलैहि.)* के पास आता था। भतीजे! नबी होने का ऐलान करोगे तो लोग झुठलाएँगे, हर तरह सताएँगे, घर से बेघर कर देंगे। जंग करने से भी न चूकेंगे। काश! उस समय तक मैं ज़िन्दा रहता।"

मुहम्मद *(सल्ल.)* : "तो क्या लोग मुझे बेघर कर देंगे?"

वरक़ा : "हां, जब भी कोई नबी आया, क़ौम ने यही सुलूक किया। अगर वे दिन देखने को मिले तो ऐसी मदद करूँगा कि अल्लाह ही जानता है।"

फिर उन्होंने आप *(सल्ल.)* के माथे को बड़े प्रेम-भाव से चूमा।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* लौट आए, मगर आप बहुत फ़िक्रमन्द और उदास थे। बार-बार सोचते कि अगर मेरे कमज़ोर कन्धों पर नुबूवत का भार आ पड़ा है तो इसका अंजाम क्या होगा?

मैं लोगों को कैसे बुलाऊँ? सीधी राह कैसे सुझाऊँ? ये तो भटक रहे हैं और हक़ से बिदक रहे हैं। ख़ुदा से विमुख हैं और बुतों के पुजारी हैं, बुराई के प्रचारक हैं और भलाई से इन्हें बैर है। फिर इतना ही नहीं सितम तो यह है कि इसपर इन्हें गर्व भी है।

ग़रज़ यह कि आप *(सल्ल.)* के दिल में विचारों का एक तूफ़ान उठा और आप वह्य का इन्तिज़ार करने लगे!

(4)

अब फ़रिश्ते का इन्तिज़ार था।

वह फ़रिश्ता जिसको आप *(सल्ल.)* ने देखा था।

जिसे वरक़ा ने मूसा *(अलैहि.)* का राज़दार कहा था। और जिसे

ख़दीजा *(रज़ि.)* ने पूरे यक़ीन के साथ फ़रिश्ता बतलया था।

इन्तिज़ार करते रहे, करते रहे, करते रहे। लेकिन जिबरील न आए। आप *(सल्ल.)* पर कोई वह्य नहीं उतरी।

दिल में फिर बेचैनी पैदा हुई, "अब क्या करूँ? लोगों को किस प्रकार समझाऊँ? यह बताने के लिए जिबरील क्यों न आए? जिबरील ने मिलना क्यों छोड़ दिया, जिबरील कोई पैग़ाम क्यों न लाए?" आप *(सल्ल.)* बहुत फ़िक्रमन्द हुए, दमकता हुआ चेहरा उदास हो गया, हँसता हुआ दिल रोने लगा।

बीबी ख़दीजा *(रज़ि.)* का भी कुछ यही हाल था। वे भी आपकी तरह बहुत फ़िक्रमन्द हुईं और रात-दिन ग़म में घुलने लगीं, लेकिन सब्र से काम लिया। दिल का ग़म चेहरे पर न आने दिया। जहाँ तक हो सकता था तसल्ली दी। जिस तरह हो सका आपका दिल बहलाया।

आप *(सल्ल.)* फिर हिरा की गुफा में जाने लगे। दिन रात वहीं रहते, इबादत करते और अपने रब से कहते–

"ऐ मेरे रब! तूने तो मुझे नबी बनाया था, फिर यह क्या हो गया? तूने मुझे छोड़ क्यों दिया?"

आप *(सल्ल.)* के दिल में एक ग़म था। जहाँ जाते उस ग़म को लिए जाते। परेशानी में कभी यह ख़याल भी होता, किसी पहाड़ पर से गिर कर ख़ुद को हलाक कर लें, इस तरह ग़म से छुटकारा मिल जाए। इससे अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि आपका दिल कितना बेचैन और ग़म से परेशान रहा होगा।

आप *(सल्ल.)* के दिल पर कैसी चोट थी! मन में कितनी चुभन थी! दिमाग़ पर कितना बोझ था! वह्य का रुक जाना आपके लिए कितना असहनीय था! शायद रब ने मुझे छोड़ दिया? यह विचार एक चुभता हुआ तीर था!

एक दिन आप *(सल्ल.)* कहीं से गुज़र रहे थे। अचानक आकाश से आवाज़ आई। सिर उठा कर देखा तो वही फ़रिश्ता जो कभी हिरा की गुफा में आया था, आकाश में एक कुर्सी पर बैठा था।

फ़रिश्ते को देखते ही आप *(सल्ल.)* हिलने लगे, काँपने और लरज़ने लगे। पहली बार भी आपका शरीर काँप रहा था। जैसे हवा के ज़ोर से

पत्ते हिल जाते हैं। क्या यह काँपना पहले जैसा था? क्या यह हिलना वैसा ही था, भय और घबराहट का, रौब और डर का? नहीं, इसमें ख़ुशी की मिठास थी। प्रसन्नता और इत्मीनान की ठण्डक थी। आप इसी हालत में घर आए। फ़रमाया–

"मुझे कुछ उढ़ा दो, मुझे उढ़ा दो" आप *(सल्ल.)* को एक कपड़ा उढ़ा दिया गया कि इतने में वही फ़रिश्ता यह वह्य लेकर आ गया–

"ऐ कपड़े में लिपटनेवाले! उठो, लोगों को डराओ और अपने रब की बड़ाई बयान करो और अपना दिल पाक रखो और शिर्क की नापाकी से दूर रहो।" (क़ुरआन, 74:1-5)

अब कलेजे को ठण्डक मिल गई। मन को शान्ति प्राप्त हो गई। तबीअत को इत्मीनान हो गया। सब अन्देशे दूर हो गए। सारे ख़तरे टल गए। रहीं ख़दीजा *(रज़ि.)*, तो न पूछो उनका क्या हाल था। दिल गुलाब था तो चेहरा चमकता हुआ चाँद, क्योंकि उनकी तमन्ना और आरज़ू पूरी हो गई। वह्य का इन्तिज़ार था। वह्य फिर आ गई।

इसके बाद कई बार वह्य आई। हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* आते रहे। रब का पैग़ाम सुनाते रहे। लेकिन ख़ुदा की मर्ज़ी, कुछ दिनों बाद फिर वह्य रुक गई। लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाने का काम शुरू हो चुका था। अधर्मियों की ओर से विरोध भी हो रहा था। विरोध के लिए तिनके का सहारा काफ़ी था। वह्य का रुक जाना एक बड़ी बात थी। उन्होंने इस मौक़े से पूरा फ़ायदा उठाया, बोले–

"ये तो ख़ूब नबी हैं। दोचार दिन ऊपरी दुनिया के बातचीत रही। जिबरील का आना-जाना रहा और फिर ग़ायब! बात चीत और सन्देश सब बन्द। तो भाई मुहम्मद! मालूम होता है, तुम्हारा रब तुम से रूठ गया है। इसी लिए उसने इतने दिनों से मुँह नहीं लगाया।"

वह्य का रुक जाना तो यों भी आप *(सल्ल.)* के लिए असहनीय था और फिर अधर्मियों का ताना कोमल स्वभाव पर तीर का काम करता। आप *(सल्ल.)* बड़े बेचैन हुए, लेकिन ज़्यादा दिन नहीं बीते कि हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* फिर वह्य लेकर आ गए :

"गवाह है सूरज की रौशनी और रात का अँधेरा जब वह छा जाए। तुम्हारे रब ने न तुमको छोड़ा है और न तुमसे नाख़ुश

है। और तुम्हारे लिए बाद में आनेवाली पहलेवाली से बेहतर है। जल्दी ही तुम्हारा रब तुमको देगा और तुम ख़ुश हो जाओगे। क्या ऐसा नहीं कि उसने तुमको यतीम पाया तो ठिकाना दिया और बेराह पाया तो सीधी राह सुझाई और तुमको निर्धन पाया तो धनवान बना दिया? तो तुम किसी यतीम के साथ सख़्ती न करो और किसी माँगनेवाले को झिड़को मत और अपने रब की नेमत की चर्चा करते रहो।"

(क़ुरआन, 93:1-11)

अल्लाह! अल्लाह! ख़ुदा आपसे नाराज़ नहीं हुआ, नाख़ुश होकर छोड़ नहीं दिया, बल्कि अपनी मेहरबानियों से ढाँप लिया। नेमतों से निहाल कर दिया।

अब वह्य बराबर आने लगी। आप *(सल्ल.)* के पास हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* आते। आपको अल्लाह की आयतें सुनाते और बताते कि क्या करें? किस तरह करें?

हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* ने बताया, किस तरह वुज़ू करें। किस तरह नमाज़ पढ़ें। एक दिन आप *(सल्ल.)* मक्का के ऊपरी इलाक़े में थे। हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* आए और आप *(सल्ल.)* के सामने वुज़ू किया और बताया कि जब नमाज़ पढ़ना हो तो इस तरह पाक-साफ़ हों। फिर आप *(सल्ल.)* ने भी उसी तरह वुज़ू किया। फिर हज़रत जिबरील खड़े हुए। आपको नमाज़ पढ़कर दिखाई। आपने भी उन्हीं की तरह नमाज़ पढ़ी। इसके बाद हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* चले गए।

आप *(सल्ल.)* ख़दीजा *(रज़ि.)* के पास आए। उनके सामने वुज़ू किया। फिर फ़रमाया, "नमाज़ पढ़ने के लिए पाक-साफ़ होने का यही तरीक़ा है।" बीबी ख़दीजा ने भी इसी तरह वुज़ू किया। फिर आप नमाज़ के लिए खड़े हो गए। बीबी ख़दीजा ने भी आपके साथ नमाज़ पढ़ी।

(5)

अली *(रज़ि.)* की परवरिश हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* ही ने की। वे आप *(सल्ल.)* ही के साथ रहते थे। उन्होंने आपको नमाज़ पढ़ते देखा। बीबी ख़दीजा को भी देखा। उन्होंने देखा कि आप दोनों रुकू और सजदे कर

रहे हैं। प्यारी-प्यारी आयतें पढ़ रहे हैं। इन आयतों में अच्छी-अच्छी प्यारी-प्यारी बातें हैं।

अली *(रज़ि.)* ताज्जुब से यह सब देखते रहे। उनको प्यारे नबी *(सल्ल.)* से बहुत प्रेम था। आपकी हर अदा प्रिय थी। आपकी हर बात दिल-जान से प्यारी थी। वे आप ही को देखकर हर काम करते। आप (सल्ल॰) जो कहते बिना झिझक मान लेते।

'लेकिन आज तो मैं पहली बार देख रहा हूँ। कभी इससे पहले तो आप इस तरह सजदे न करते थे। इतनी प्यारी-प्यारी आयतें भी मैंने आज ही सुनीं।' अली गहरी सोच में पड़ गए। आप *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ चुके तो पूछा, "भाई जान, यह क्या है?!"

मुहम्मद *(सल्ल.)* ने कहा : "यह अल्लाह का दीन है। इसी दीन पर चलने का अल्लाह ने हुक्म दिया है। अल्लाह के जितने रसूल आए सब यही दीन लेकर आए।"

अली *(रज़ि.)* को बहुत ताज्जुब हुआ। उन्होंने पूछा : "अच्छा, ये रुकू और सजदे कैसे हैं?"

मुहम्मद *(सल्ल.)* : "अल्लाह ने मुझे नबी बनाया है। मुझपर अपनी हिदायत उतारी है, ताकि मैं लोगों को अच्छी-अच्छी बातें बताऊँ। लोग भटक रहे हैं, उनको सीधी राह दिखाऊँ, उनको अल्लाह की इबादत पर उभारूँ। ये रुकू और सजदे हम उसी अल्लाह को करते हैं।"

अली *(रज़ि.)* : "यह तो बड़ी अच्छी चीज़ है। तो क्या जिसपर आप ईमान लाए हैं, मैं भी ला सकता हूँ? क्या आपकी तरह मैं भी इबादत कर सकता हूँ? क्या मैं भी आपके साथ नमाज़ पढ़ सकता हूँ?!"

मुहम्मद *(सल्ल.)* : "हाँ, प्यारे भाई! अल्लाह एक है, उसका कोई शरीक नहीं। वही इबादत के लायक़ है। तुम भी उसी की इबादत करो। लात और उज़्ज़ा को छोड़ दो। जितने बुत हैं, सबको छोड़ दो।"

अली *(रज़ि.)* : "अच्छा ज़रा मैं अब्बा जान से भी पूछ लूँ।"

रात भर अली *(रज़ि.)* को नींद न आई। वे जागते रहे। आप *(सल्ल.)* से जो कुछ सुना था, जो कुछ करते देखा था, सब पर विचार करते रहे। सुबह हुई तो बोले—

"मैं आप पर ईमान लाता हूँ। आपकी पैरवी का अहद करता हूँ।

मुझे अब्बा जान से पूछने की कोई ज़रूरत नहीं। बताइए, किस तरह रुकू करूँ? किस तरह सजदा करूँ? और किस तरह अल्लाह का कलाम पढ़ूँ?''

आप *(सल्ल.)* ने उन्हें नमाज़ सिखा दी। जो आयतें उतर चुकी थीं, वे भी याद करा दीं। अब जब भी आप *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ते, अली *(रज़ि.)* भी ज़रूर साथ होते।

अली *(रज़ि.)* और ज़ैद *(रज़ि.)* एक साथ ही रहते थे। भला वे अली *(रज़ि.)* से पीछे रहनेवाले कब थे। वे भी ईमान ले आए और चाव से दीन की बातें सीखने लगे।

इस तरह सबसे पहले बीबी ख़दीजा ने इस्लाम क़बूल किया। फिर अली और ज़ैद *(रज़ि.)* इस्लाम में दाख़िल हुए और मरते दम तक आप *(सल्ल.)* से चिमटे रहे।

उन लोगों का और आप *(सल्ल.)* का जब से साथ हुआ, उन्होंने आप *(सल्ल.)* को बहुत बड़ा इनसान पाया। आपको अत्यंत सज्जन और नेक दिल पाया और न जाने कितने अच्छे-अच्छे गुण और विशेषताएं आप *(सल्ल.)* के अन्दर देखीं। यही वजह है उनको आप *(सल्ल.)* से बे-पनाह प्रेम हो गया। आप *(सल्ल.)* का साथ उनके मन की शान्ति और चैन साबित हुआ।

इसके बाद अबू-बक्र *(रज़ि.)* ईमान लाए। ये अबू-क़ु-हाफ़ा तैमी के बेटे थे और आप *(सल्ल.)* के गहरे दोस्त थे। आप *(सल्ल.)* की सच्चाई और पवित्रता से बहुत प्रभावित थे। इसी लिए आप *(सल्ल.)* से बड़ा प्रेम रखते थे। बहुत इज़्ज़त करते और आपके साथ को ग़ैर-मामूली नेमत समझते। दिल को दिल से राह होती है। आप *(सल्ल.)* भी उनसे बड़ी मुहब्बत करते और बहुत ही प्यार और निष्ठा से मिलते। आप *(सल्ल.)* ने अबू-बक्र को ज्यों ही इस्लाम की दावत दी, क़ुरआन की कुछ आयतें सुनाईं, उन्होंने बाप-दादा के धर्म को त्यागकर कलिमा पढ़ा और इस्लाम स्वीकार कर लिया।

आप *(सल्ल.)* ने इस्लाम की दावत दी और दीन की ख़ूबियाँ बयान कीं तो ज़बान से ख़ुद-ब-ख़ुद ये शब्द निकले, जो अत्यन्त निष्ठा और आस्था का नमूना थे—

"मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान, आपने सच फ़रमाया और सच बोलना आपका काम। मैं गवाही देता हूँ, अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं और आप उसके रसूल हैं।"

बीबी ख़दीजा ने ये बातें सुनीं तो मारे ख़ुशी के उछल पड़ीं। उनसे रहा न गया। फ़ौरन चादर ओढ़ी और जाकर मुबारकबाद दी—

"अबू-क़ु-हाफ़ा के बेटे! आप वास्तव में बड़े ख़ुश-नसीब हैं! दोनों जहान लोक-परलोक की दौलत आपने समेट ली। इसपर मुझे कितनी ख़ुशी है उसे मैं बयान नहीं कर सकती।"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* इस्लाम लाए तो आप *(सल्ल.)* को बड़ा सहारा मिला। बड़ा साहस बढ़ा और काम के लिए मैदान भी कुछ आसान हो गया।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बड़े रहमदिल और नर्म मिज़ाज के थे। सारी क़ौम उनकी इज़्ज़त करती। छोटे-बड़े सभी आदर करते। वे क़ुरैश के सबसे ऊँचे घराने से थे। ख़ानदान के भले-बुरे लोग सब उनकी निगाह में थे। वे व्यापार करते थे। उसमें उन्हें बड़ा लाभ हुआ। अल्लाह ने ख़ूब दौलत दी। दौलत के साथ दिल भी दिया। माल आता रहता, दिल खोलकर ख़र्च करते रहते। उनकी सूझ-बूझ और समझ भी तेज़ थी। मुश्किल से मुश्किल मसला चुटकी में हल कर देते थे। हर मामले में लोग उनसे मशवरा करते। यों भी उनके पास आकर बैठा करते। उनमें कुछ ऐसी ख़ूबियाँ थीं जो दिलों को मोह लेतीं।

अब अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी इस्लाम फैलाने लगे। जो लोग उनकी सूझ-बूझ और ईमानदारी से प्रभावित थे, उनको दीन की बातें बताते और इस्लाम लाने की दावत देते। बहुत सों ने उनकी बात मान ली और इस्लाम क़बूल कर लिया। जो लोग पहले मुसलमान हुए वे ये हैं :

उस्मान इब्ने-अफ़्फ़ान, ज़ुबैर इब्ने-अव्वाम, अब्दुर्रहमान-इब्ने-औफ़, सअद इब्ने-अबी-वक़्क़ास और तलहा इब्ने-उबैदुल्लाह। ये सब लोग हज़रत अबू-बक्र (रज़ि.) से प्रभावित होकर मुसलमान हुए।

फिर जर्राह के बेटे अबू-उबैदा और अबू-अरक़म के बेटे अरक़म मुसलमान हुए। फिर बहुत से लोग मुसलमान हुए। मर्द भी, औरतें भी। जो औरतें इस्लाम लाईं, उनमें प्यारे नबी *(सल्ल.)* और हज़रत

अबू-बक्र *(रज़ि.)* की बेटियाँ भी थीं।

अल्लाह इन सबसे ख़ुश हो और इनपर अपनी रहमतों की बारिश करे!

(6)

इस्लाम धीरे-धीरे फैलता रहा। लोग मुसलमान होते, लेकिन खुल्लम-खुल्ला इस्लाम का ऐलान न करते। अभी आप *(सल्ल.)* ने भी खुलकर काम शुरू न किया था। अभी खुलकर लोगों को इस्लाम की दावत न दी थी। जो मुसलमान थे वे भी अपने इस्लाम को छुपाते और अन्दर ही अन्दर दीन का प्रचार करते थे। जिन लोगों में ईमानदारी की महक पाते और कुछ हक़ की प्यास महसूस करते, उन्हें दीन की दावत देते। क़ुरैश के सरदारों की निगाहों से बहुत बच-बचकर रहते। क़ुरआन पढ़ना होता या आयतें याद करनी-करानी होतीं तो बस्ती के बाहर निकल जाते। नमाज़ का समय होता तो छुप-छुपाकर गुफाओं में चले जाते। वहाँ इत्मीनान से नमाज़ अदा करते और पुराने मुसलमान नए मुसलमानों को सूरतें याद कराते। दीन की बातें बताते।

किसी तरह अधर्मियों को भी कुछ सुन-गुन मिल गई। अब उन्हें सारा भेद जानने की फ़िक्र हुई। वे मुसलमानों की टोह में लग गए। बहुत जल्द उन्हें सारी बातें मालूम हो गईं। वे जान गए कि मुसलमान गुफाओं में जा-जाकर नमाज़ें पढ़ते हैं और आपस में कोई नया दीन सीखते-सिखाते हैं।

उन्हें मालूम हो गया कि मुहम्मद *(सल्ल.)* एकेश्वरवाद की दावत देते हैं। बहुदेववाद और मूर्ति-पूजा से रोकते हैं। मूर्तियों के माहौल में एकेश्वरवाद की आवाज़ कितनी अजीब आवाज़ थी!

क्या मुहम्मद– अबू-तालिब का यतीम भतीजा– नबी होने का दावा करता है? क्या वह सबको दीन से फिर जाने पर उभारता है? क्या वह देवताओं से बे-वफ़ाई पर उकसाता है?

क़ौमी दीन से बग़ावत! बाप-दादा के दीन से दुश्मनी! क्या मुहम्मद का यह साहस हो गया!

हर ओर एक हलचल मच गई। हर तरफ़ एक हंगामा खड़ा हो गया। जिसे देखिए ग़ुस्से में लाल था।

किसी ने तो कहा, "मुहम्मद पर तो जिन्न-भूत का असर है और कोई बात नहीं।" किसी ने कहा, "उसे नाम और शोहरत का लालच है और यह तो एक नशा है, जिसे ज़माना ख़ुद ही उतार देगा। हमें कुछ करने की ज़रूरत नहीं।" यह सब सोचकर आप *(सल्ल.)* को इस लायक़ ही नहीं समझा कि आपकी बात पर कोई ध्यान दिया जाए।

कुछ ऐसे भी थे, जो इस नए दीन की तरफ़ बढ़े। उनको ख़याल हुआ कि चलें इस दीन को भी जाँचे, परखें और देखें कि इसमें क्या है? हो सकता है कोई काम की चीज़ मिल जाए। नुक़सान तो होगा नहीं। होगा तो फ़ायदा ही होगा। यह सोचकर वे उसे परखते। उसमें उनको अच्छाइयाँ ही अच्छाइयाँ नज़र आतीं। आख़िरकार वे मुसलमान हो जाते।

अबू-तालिब के भी जी में आया कि चलें, भतीजे से मिलें। देखें कि उसने कैसा दीन निकाला है?

एक दिन अबू-तालिब इसी इरादे से घर से निकले। साथ में अली *(रज़ि.)* के भाई जाफ़र भी थे। पहुँचे तो देखा कि आप *(सल्ल.)* एक घाटी में नमाज़ पढ़ रहे हैं। साथ में उनके प्रिय बेटे अली भी हैं। दोनों आबादी से बहुत दूर आकर नमाज़ पढ़ रहे हैं। क्यों? उनके और उनके साथियों के डर से। आप *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ चुके तो अबू-तालिब बोले—

"भतीजे! तुमने यह कैसा दीन अपनाया है?"

मुहम्मद *(सल्ल.)* : "चचा! यह अल्लाह का दीन है। उसके फ़रिश्तों का दीन है। यही सारे नबियों और रसूलों का दीन है। दादा इबराहीम *(अलैहि.)* का दीन भी यही है। अल्लाह ने यह दीन देकर मुझे दुनियावालों की हिदायत और मार्गदर्शन के लिए भेजा है।

मेरे प्यारे चचा! आपका मुझपर सबसे ज़्यादा हक़ और अधिकार है। मेरी ख़ैरख़ाही के आप सब से ज़्यादा हक़दार हैं। आपका सबसे बड़ा हित मेरी नज़र में यह है कि मैं आपको इस दीन की दावत दूँ। आपको भी चाहिए कि मेरी इस तमन्ना को ठुकराएँ नहीं।"

अबू-तालिब : "भतीजे! बाप-दादा का दीन छोड़ना तो नामुमकिन है। परन्तु मेरी हमदर्दियाँ तुम्हारे साथ हैं, जब तक जान में जान है, तुम्हारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता।"

फिर अली *(रज़ि.)* से कहा—

"बेटे! इस दीन में आ तो गए, लेकिन इसे समझते भी हो?"

अली *(रज़ि.)* : "प्यारे अब्बू! मैं ख़ुदा और उसके रसूल पर ईमान लाया हूँ। वे जो कुछ कहते हैं, उसे मानता हूँ। रब को ख़ुश करने के लिए नमाज़ें भी पढ़ता हूँ।"

अबू-तालिब : "बेटे, मुहम्मद भली बातें ही बताते हैं। वे जैसा कहें वैसा ही करना।"

फिर जाफ़र से कहा : "बेटे! तुम भी भाई के साथ नमाज़ पढ़ा" करो।

अबू-तालिब ख़ुद तो मुसलमान न हुए। मगर बेटों के लिए इस्लाम ही को पसन्द किया।

क़ुरैश के साथ उनका क्या अन्दाज़ रहा? प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ क्या बर्ताव रहा? ये बातें सामने आ जाएँ, तभी इसका कारण समझा जा सकेगा।

मुसलमान जब नमाज़ पढ़ते तो क़ुरैश उनकी हँसी उड़ाते। वे रुकूअ करते तो ये क़हक़हा लगाते और वे सजदा करते तो ये फब्तियाँ कसते और कराक्ष करते। दिन-प्रतिदिन यह चीज़ बढ़ती ही गई। दुश्मनों ने इसे एक हँसी-दिल्लगी का सामान बना लिया। मुसलमान मक्का की घाटियों में अस्र और चाश्त की नमाज़ें पढ़ा करते। ये भी वहीं पहुँच जाते। कुछ आँखें मारते, कुछ इशारे बाज़ियाँ करते और फिर ज़ोर के क़हक़हे लगाते,

इत्तिफ़ाक़ से एक दिन मुसलमानों को ग़ुस्सा आ गया। जोश से बेक़ाबू हो गए। फिर दोनों तरफ़ के लोगों की आस्तीनें चढ़ गईं और लड़ाई शुरू हो गई। हज़रत सअद बिन-अबी-वक़्क़ास ने एक अधर्मी को ऐसा मारा कि खोपड़ी फट गई और ख़ून के फ़व्वारे जारी हो गए।

जितना हो सकता, प्यारे नबी *(सल्ल.)* मुशरिकों से दूर रहते ताकि मुसलमान उनकी शरारतों से बचे रहें। कभी क़ुरआन सुनाना होता या कोई नई वह्य होती तो सबको 'दारे-अरक़म' में ले कर चले जाते। 'दारे-अरक़म' हज़रत अरक़म *(रज़ि.)* का घर था, जो 'सफ़ा' नामक पहाड़ी पर था।

आप *(सल्ल.)* को नबी हुए तीन साल हो गए। हर एक जान गया, आप एक नए दीन की दावत देते हैं। सबको मालूम हो गया कि

आपकी स्थिति काफ़ी मज़बूत हो गई है। आपके अनुयायी काफ़ी बढ़ रहे हैं। अब अल्लाह का हुक्म हुआ कि आप *(सल्ल.)* खुल्लम-खुल्ला दावत दें। जो काम छुपकर करते थे, खुलकर करें।

> "आपको जो हुक्म दिया जाए उसका बेखटके एलान करें और मुशरिकों की परवाह न करें।" (क़ुरआन)

पहली पुकार

(1) विश्व-नेता *(सल्ल.)* अपने घर में

(2) ख़ानदानवालों की दावत

(3) अबू-लहब की शरारतें

(4) दोबारा दावत

(5) मानवता-प्रेमी की दर्द भरी तक़रीर

(6) श्रोताओं की उपेक्षा-नीति

(7) हज़रत अली *(रज़ि.)* की बेख़ौफ़ हक़पसन्दी

(8) सफ़ा पहाड़ी की पुरसोज़ पुकार

(9) अबू-लहब की शर्मनाक नीति

(10) लोगों की गुमराही पर आप *(सल्ल.)* की बेक़रारी

(11) क़ुरैश का प्रकोप

(12) अबू-तालिब के यहाँ क़ुरैश के नुमाइन्दे

(13) क़ुरैश का दूसरा प्रतिनिधिमण्डल

(14) मुशरिकों की कज बहसियाँ

(15) अबू-तालिब को फुसलाने का असफल प्रयास

(16) अबू-तालिब को क़ुरैश की चुनौती

(17) अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* का हैरतनाक जमाव

(18) अबू-तालिब का प्रोत्साहन

(19) अबू-तालिब हिमायत और मदद में तल्लीन

(1)

हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* को नबी हुए तीन साल हो गए। इतने दिनों प्यारे नबी *(सल्ल.)* व्यक्तिगत रूप में इस्लाम की दावत देते रहे। फिर अल्लाह का हुक्म हुआ कि आप *(सल्ल.)* किसी से न डरें। खुल्लम-खुल्ला दीन का प्रचार करें और निडर होकर रब का सन्देश सुनाएँ। यह काम पहले क़रीबी रिश्तेदारों से शुरू करें। अगर कुछ नादान न मानें तो इसकी परवाह न करें।

आप *(सल्ल.)* को इसकी फ़िक्र हुई कि क्या करें? ख़ानदानवालों को कैसे समझाएँ? इसी फ़िक्र में घर से बाहर निकलना भी छोड़ दिया और कहीं आना जाना भी बन्द कर दिया।

यह बात ऐसी न थी कि छुपी रहती। कुछ ही दिनों में सारे रिश्तेदारों और सम्बन्धियों में फैल गई। हर ओर चर्चा होने लगी। फूफियों ने सुना तो डरीं! घबराईं! कहीं मुहम्मद बीमार तो नहीं पड़ गए। कहीं किसी परेशानी में तो नहीं घिर गए। वे सब आपके पास आईं। बोलीं—

"प्यारे मुहम्मद! क्या हाल है? घर से निकलना क्यों छोड़ दिया?"

फ़रमाया—

"देखो प्यारी फूफी! एक तरफ़ तो हमारे भाई-बन्धु ख़ुदा को मानते हैं, दूसरी तरफ़ बुतों को भी पूजते हैं। क्या इस तरह वे ख़ुदा को ख़ुश कर लेंगे? नहीं, हरगिज़ नहीं ये तो तबाही के लक्षण हैं। अल्लाह का हुक्म है कि मैं उन्हें होशियार करूँ। उनसे कहूँ कि अपनी हरकतें छोड़ें। सोचता रहता हूँ कि क्या करूँ? दिल में आता है कि सबको खाने पर बुलाऊँ। फिर उन्हें अल्लाह की नाफ़रमानी से डराऊँ।"

"क्या हर्ज है? कर डालो दावत। लेकिन देखो, अपने चचा

अबू-लहब को मत बुलाना। वह मरते दम तक तुम्हारी बातें नहीं सुनेगा।'' फूफियाँ ने नसीहत की।

आप *(सल्ल.)* ने झट-पट खाने का इन्तिज़ाम किया। सभी रिश्तेदारों को खाने पर बुलाया। औरों के साथ अबू-लहब को भी बुलाया, हालाँकि फूफियों ने मना किया था और आप *(सल्ल.)* खुद भी जानते थे कि वह आपका सख़्त दुश्मन है और विरोध के लिए हर वक़्त तैयार रहता है।

दावत में बहुत से लोग आए। सब खाने-पीने में शामिल हुए। उनमें आप *(सल्ल.)* के चचा भी थे। चचेरे भाई थे और सभी रिश्तेदार थे। आप वहीं बैठ गए कि लोग खा पी चुकें तो अपनी बात कहें और सबको दीन की दावत दें।

अबू-लहब ने सोचा, यह तो बड़ा अच्छा मौक़ा है। लाओ मुहम्मद को घेरें। उसने जो बाप-दादा का दीन छोड़ दिया है और एक नया दीन गढ़ लिया है, उस पर कुछ डराएँ, धमकाएँ। इत्तिफ़ाक़ से नाते-रिश्ते वाले सभी लोग यहाँ मौजूद हैं, ख़ूब बात बनेगी। यह सोचकर वह तुरन्त खड़ा हो गया, बोला—

''मुहम्मद! ये तुम्हारे चचा हैं और ये चचेरे भाई। देखो, तुम वही राग अलापो जो इनको भला लगे। यह जो कुछ दिनों से तुम्हारा सिर फिर गया है, कहते हो बाप-दादा का दीन ग़लत है और उससे हटकर एक नया दीन निकाला है, तो देखो इन हरकतों से बाज़ आओ। इस तरह की बातें अच्छी नहीं। तुमने तो अपने भाइयों पर ऐसी मुसीबत खड़ी कर दी है कि ख़ुदा की पनाह!

हाँ, यह भी याद रहे कि सारे अरब के मुक़ाबले में तुम्हारी क़ौम कुछ भी नहीं। अब अगर अपनी हरकतें तुम नहीं छोड़ते तो फिर भाइयों के लिए यह ग़लत न होगा कि पकड़ कर तुम्हें क़ैद में डाल दें। यह तो वे कर सकते हैं, लेकिन वे यह नहीं होने देंगे कि क़ुरैश तुम पर पिल पड़ें और फिर सारा अरब भी उन्ही का साथ दे।''

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने चाहा कि कुछ बोलें, लोगों को रब का सन्देश सुनाएँ, उनको अल्लाह की नाफ़रमानी से डराएँ और बताएँ कि उनमें क्या-क्या बुराइयाँ हैं, लेकिन अबू-लहब ने इसका मौक़ा ही नहीं दिया।

लोगों को भड़काते हुए फिर बोला—

"यह तो सचमुच बहुत बुरी बात है। तुम लोग अभी से इसका हाथ पकड़ लो। इसका इन्तिज़ार क्यों करते हो कि दूसरे पकड़ें? उस समय तुम बड़ी परेशानी में पड़ जाओगे। अगर उनके हवाले कर दिया तो बेइज़्ज़त होगे। हमेशा के लिए बदनाम हो जाओगे और अगर इसकी हिमायत करोगे तो मारे जाओगे!"

आप *(सल्ल.)* की एक फूफी सफ़िय्या थीं। वे भी वहाँ मौजूद थीं। यह सुनकर बेचैन हो गईं, बोलीं—

"मेरे भाई! तुझे शर्म नहीं आती, भतीजे की मुख़ालफ़त में इतना अन्धा हो रहा है! ख़ुदा की क़सम जानकार लोग तो एक ज़माने से कहते आ रहे हैं कि मुत्तलिब की सन्तान में एक नबी होगा। सुन ले, वह नबी यही है।"

अबू-लहब बहुत ज़ोर का क़हक़हा लगाते हुए बोला—

"तुम्हारा क्या बड़ी बी! हाथों में चूड़ियाँ पहन लीं और घर में बैठ रहीं। अगर क़ुरैश दुश्मन हो गए और हमसे युद्ध की ठान ली और फिर दूसरे क़बीलों ने भी उन्ही का साथ दिया तो ...... फिर क्या बनेगा? वे तो हमें चींटी की तरह मसल कर रख देंगे।"

अबू-तालिब : "ये कैसी बुज़दिली की बातें हैं! जब तक जान में जान है, हम इसका साथ देंगे।"

अबू-लहब : "भाइयो! चलो, यहाँ से निकल चलो। अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं।"

सब उठकर चल दिए और आप *(सल्ल.)* दिल की बात दिल ही में लिए रह गए।

आप *(सल्ल.)* ने एक बार फिर दावत का इन्तिज़ाम किया और कुटुम्ब के लोगों को दोबारा बुलाया। जब लोग खा-पी चुके तो रब का सन्देश सुनाया। फ़रमाया—

"अपनों के लिए ख़तरों की निगरानी करनेवाला अपनों से झूठ नहीं बोलता। ख़ुदा की क़सम, मैं ग़ैरों से झूठ बोल भी लूँ, (यद्यपि यह मेरे लिए असम्भव है।) पर तुमसे नहीं बोल सकता। औरों को धोखा दे भी

दूँ। (यद्यपि यह मेरे लिए असम्भव है।) पर तुमको नहीं दे सकता। अल्लाह जानता है, मैं उसका रसूल हूँ। उसने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। अल्लाह की क़सम! तुम मर जाओगे जिस तरह तुम सो जाते हो और फिर उठा दिए जाओगे जिस तरह नींद से उठ जाते हो। और जो कुछ तुम करते हो उसका तुम्हें हिसाब देना होगा। अच्छे काम करोगे तो अच्छा बदला पाओगे, बुरे काम करोगे तो बुरा बदला पाओगे। फिर या तो हमेशा की जन्नत होगी या हमेशा की दोज़ख़। सुन लो, अरब में कोई अपनी क़ौम के लिए मुझसे बेहतर चीज़ नहीं लाया। मैं तुम्हारे पास दोनों लोकों की भलाई लेकर आया हूँ। रब का हुक्म है कि मैं तुमको उसकी तरफ़ बुलाऊँ। है कोई जो इस काम में मेरा साथ दे और मेरे बाद भी इसे बाक़ी रखे?''

फिर आप *(सल्ल.)* ख़ामोश हो गए और लोगों के चेहरों को ताकने लगे कि :

किसका दिल ईमान की तरफ़ झुका?

किसका सीना इस्लाम के लिए खुला? और कौन उसकी मदद के लिए तैयार हुआ?

किसने आप *(सल्ल.)* की पुकार पर कान धरा? और किसने हक़ की हिमायत का फ़ैसला किया?

लेकिन ...... किसी तरफ़ से कोई आवाज़ न आई। हर एक को जैसे साँप सूँघ गया हो।

कुछ लोगों ने तो इसको पागल की बड़ जाना और हैरत से आप *(सल्ल.)* का मुँह ताकने लगे। कुछ लोगों ने नफ़रत से मुँह फेर लिया और वहाँ से चल देने की सोची।

ठीक उसी समय एक लड़का उठा। यही कोई बारह-तेरह साल का। बदन भी कुछ यों ही सा। छोटा सा क़द, दुबला-पतला शरीर और आँखें दुखी हुईं। मगर था बड़ा बहादुर, बड़ी हिम्मतवाला। उठकर बोला;

''अल्लाह के रसूल! मैं आपका साथ दूँगा। मैं आपकी मदद करूँगा।''

कितना अदभुत दृश्य था। लड़के की ये बातें सुनकर ज़्यादातर लोग

बेक़ाबू हो गए। ख़ामोश वातावरण क़हक़हों से गूँज उठा। लोग चोट करते हुए बोले–

"क्यों अबू-तालिब! अब क्या करोगे! ख़रबूज़े ने ख़रबूजे का रंग पकड़ लिया! अभी तक तो भतीजे का ही मसला था, अब बेटे को भी वही जुनून हो गया।"

दूसरी सभा भी ख़त्म हो गई। लेकिन इन कोशिशों का नतीजा...... कुछ भी नहीं। किन्तु अब भी आप *(सल्ल.)* निराश न हुए। पूरे जोश से काम करते रहे। एक दिन की बात है। आप *(सल्ल.)* सफ़ा की पहाड़ी पर चढ़ गए और दर्द भरी आवाज़ से पुकारा–

"ख़तरा......! ख़तरा......! होशियार......! होशियार......!"

"अरे भाई! यह कौन पुकार रहा है!" "किसकी आवाज़ है यह?" "मुहम्मद हैं! सफ़ा की पहाड़ी से पुकार रहे हैं।" कई आवाज़ें एक साथ गूँजीं।

कुछ ही देर में सब लोग जमा हो गए। बेताबी से पूछने लगे –

"क्या बात है भाई? क्या बात है?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कहा, "ज़रा आप लोग यह बताएँ कि अगर मैं कहूँ कि इस पहाड़ के पीछे से दुश्मनों की एक फ़ौज आ रही है तो क्या आप यक़ीन करेंगे?"

"क्यों नहीं! क्यों नहीं! यक़ीन न करने की तो कोई वजह नहीं। हमने तो आपकी ज़बान से कभी झूठी बात सुनी ही नहीं।" सब ने एक आवाज़ में कहा।

प्यारे नबी बोले, "मेरे प्यारे भाइयो! मैं तुम्हें एक भयानक अज़ाब से डराता हूँ, जो तुम्हारे सामने खड़ा है। मैं उसे इसी प्रकार देख रहा हूँ जैसे इस समय पहाड़ के दूसरी तरफ़।

क़ुरैशी भाइयो! ख़ुदा की नाराज़ी से बचो, अपने आपको आग से बचाओ। अगर कहीं अल्लाह नाराज़ हो गया और उसने तुम्हें आग में झोंकना चाहा तो मैं बचा नहीं सकूँगा। आग से बचने का तो बस एक ही उपाय है कि अल्लाह को एक मानो और मेरे रसूल होने का इक़रार कर लो।"

अबू-लहब का चेहरा ग़ुस्से से लाल हो गया, जैसे अँगारा। तन कर उठा और कड़क कर बोला—

"नाश हो तेरा! तूने इसी लिए बुलाया था?"

आप *(सल्ल.)* सन्नाटे में आ गए। बड़ी हसरत के साथ चचा की ओर देखा कि काश! कुछ देर वह चुप रहे और आप लोगों से बात कह सकें। उनको सत्य-धर्म की दावत दे सकें और रब का सन्देश सुना सकें। लेकिन उसको ज़रा भी तरस नहीं आया। उसका अन्दाज़ और सख़्त होता गया और वह आप *(सल्ल.)* को जली-कटी सुनाता रहा।

आख़िर लोग वहाँ से चल दिए। लेकिन अब भी उनमें वही बातें थीं। कोई कहता—

"भई! अब्दुल-मुत्तलिब का नव-जवान तो आकाश से बातें करता है।"

कोई कहता : "वह तो उसकी इबादत करने को कहता है, जिसको न हम देख सकें न सुन सकें।"

कोई कहता : "जिससे वह बातें करता है, उससे हमारी भी क्यों नहीं करा देता?"

इस्लाम की आवाज़ उठाए हुए एक ज़माना हो गया। प्यारे नबी *(सल्ल.)* अनुयायियों को लेकर अपने घर आ जाते या अरक़म के यहाँ चले जाते। वहाँ उनको क़ुरआन की आयतें सुनाते। जो अनपढ़ होते, उनसे कई-कई बार सुनते कि ख़ूब याद हो जाए और जो पढ़े-लिखे होते वे आयतों को लिख लेते। फिर ख़ुद याद करते, बाल-बच्चों को याद कराते और दूसरे नव-मुस्लिमों को याद कराते।

धीरे-धीरे इस्लाम फैलता गया। मुसलमान बढ़ते रहे। मगर अनेकेश्वरवादी यों ही हँसी-मज़ाक़ में टालते रहे। उनके लिए यह एक गम्भीर ख़तरा है, यह मानने के लिए भी वे तैयार न थे। वे समझते रहे, ये तो दीवाने हैं, इनसे कौन उलझे?

वे समझ रहे थे कि ये लोग तो मुहम्मद *(सल्ल.)* के पीछे दीवाने हैं। इसी चक्कर में अपना धर्म भी छोड़ बैठे हैं। मगर यह साथ निभनेवाला नहीं। केवल दो दिन की बात है। उसके बाद ये सब धूल के समान उड़

जाएँगे। देर-सवेर उन्हें अपने धर्म की छाँव में आना ही पड़ेगा।

उन्हीं दिनों की बात है। कुछ मुशरिक काबा में थे। वे मूर्तियों को सजदे कर रहे थे। इत्तिफ़ाक़ से प्यारे नबी *(सल्ल.)* का गुज़र हुआ। आप *(सल्ल.)* से यह हालत देखी न गई। उन लोगों पर बड़ा तरस आया। आपके मन में विचार आया कि इस काम से उन्हें रोका जाए और इस अपमान से बचाया जाए। फ़रमाया—

"ऐ क़ुरैशवालो! तुम तो दादा इबराहीम के दीन से बिलकुल ही हट गए। तुम इन तुच्छ मूर्तियों को पूजते हो और उन्हें अल्लाह का साथी बनाते हो; बताओ तो सही अल्लाह तुमसे कितना नाखुश होगा।"

मुशरिक यह बात सहन न कर सके। वे बहस करने लगे। बोले—

"हम मूर्तियों को थोड़े ही पूजते हैं। अस्ल में तो हमें अल्लाह से प्रेम है। हमें तो सिर्फ़ उसी का सामीप्य प्राप्त करने की तमन्ना है। ये तो बस बीच में वास्ता हैं।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "अगर अल्लाह को चाहते हो तो मेरी बात मानो, अल्लाह भी तुम्हें चाहने लगेगा।"

यह सुनना था कि वे आग बगूला हो गए। आपस में बोले—

"इसकी बातें सुनते-सुनते तो कान पक गए। आख़िर कब तक सहन किया जाए।"

"हम चुप क्या रहे कि यह बिलकुल ही ढीठ हो गया। इतना ढीठ कि हमारी अक़्लों पर चोटें करने लगा। हमारे बाप-दादा को गुमराह कहने लगा। और तो और हमारे देवताओं को भी नहीं छोड़ता। अच्छा अब तो हम बिलकुल नहीं सह सकते एकदम नहीं।"

सब उठकर चल दिए, मगर आँखें बिलकुल लाल थीं और सीने खौल रहे थे। जहाँ देखिए, आप *(सल्ल.)* ही की चर्चा थी। कोई सताने की स्कीमें बना रहा था तो कोई डराने और धमकाने में लगा था।

(2)

सारे मुशरिक सरदार सिर जोड़कर बैठे और आपस में सलाह करने लगे—

"मुहम्मद देवताओं पर ज़्यादती कर रहा है। उसका क्या इलाज

किया जाए? वह हमारे दीन को मिटाना चाहता है, उससे कैसे पीछा छुड़ाया जाए?"

"मुहम्मद देवताओं का अपमान करता है! वही जो हमारे उपास्य हैं। हमसे पहले लोगों के भी उपास्य हैं।"

"क्या मुहम्मद हमको मूर्ख समझता है, जो मूर्तियों को छोड़ देने को कहता है? उन मूर्तियों को—जिनके लिए अरब के कोने-कोने से लोग आते हैं। आकर उनको सजदे करते हैं और काबा की तरह उनका तवाफ़ करते हैं।"

"क्या मुहम्मद चाहता है कि सारा अरब हम पर हल्ला बोल दे या यह चाहता है कि हमारा बायकाट कर दे और हमारे यहाँ आना जाना छोड़ दे कि सारा व्यापार ठप हो जाए और हम दाने-दाने को तरसने लगें?"

बहुत देर तक बातें होती रहीं। अन्त में तय हुआ कि कुछ लोग अबू-तालिब के पास जाएँ। उनसे भतीजे की शिकायत करें और कहें कि आप मुहम्मद को रोक दें। वह न हमको कुछ कहे न हमारे देवताओं को। न उसको हमारे धर्म से कोई वास्ता न हमको उसके धर्म से।

क़ुरैश के कुछ सरदार अबू-तालिब के पास गए— वे ये थे। हर्ब का बेटा अबू-सुफ़ियान, रबीआ का बेटा उत्बा, मुग़ीरा का बेटा वलीद, वाइल का बेटा आस और हिशाम का बेटा अम्र। हाँ वही अम्र जिसका उपनाम अबुल-हकम था और जो अबू-जहल के नाम से मशहूर है। ये सब लोग मिलकर अबू-तालिब के पास गए और अपनी बात रखी। अबू-तालिब ने उन्हें तसल्ली दी। बड़ी नर्मी से बातचीत की और समझा बुझा कर वापस कर दिया।

दिन गुज़रते रहे और प्यारे नबी *(सल्ल.)* शिर्क और मूर्ति पूजा से रोकते रहे और केवल एक अल्लाह की इबादत पर उभारते रहे। धीरे-धीरे इस्लाम क़बूल करनेवालों का एक जत्था तैयार हो गया।

अब तो मुशरिक बहुत घबराए। अगर मुहम्मद सफल हो गया, उसका धर्म फैल गया और हर ओर इस्लाम का बोलबाला हो गया तो फिर क्या बनेगा? तब तो हमारी शामत आ जाएगी। प्यारा वतन उजड़

जाएगा और हमारा सारा कारोबार ठप हो जाएगा।

यह गोलमोल बात ठीक नहीं अब कोई फ़ैसला हो जाना चाहिए। यह सोच कर वे फिर अबू-तालिब के पास आए। बोले—

"अबू-तालिब! आप हमारे बड़े हैं। दिल-जान से प्रिय हैं। ज़रा भतीजे के बारे में इनसाफ़ कीजिए ना। उससे कहिए, हमारे देवताओं को बुरा न कहे। हमारे दीन में ऐब न निकाले। हमारी अक़्ल और सूझ-बूझ पर चोटें न करे और हमारे बाप-दादा को गुमराह न कहे। हाँ, तो आप उसे समझा दीजिए, वरना बीच से हट जाइए। हम ख़ुद उससे निबट लेंगे। आख़िर आप भी तो उसकी बातों से बेज़ार हैं। आपको भी चैन मिल जाएगा।"

अबू-तालिब से कुछ बन न पड़ा। मजबूर होकर मुहम्मद *(सल्ल.)* को बुलवाया। आप *(सल्ल.)* आए तो अबू-तालिब बोले—

"भतीजे, ये क़ौम के सरदार आए हैं। इन्हें तुमसे कुछ शिकायत है। ये चाहते हैं कि न तुम इनके देवताओं को कुछ कहो और न ये तुमको और तुम्हारे रब को कुछ कहें।"

आप *(सल्ल.)* ने कहा : "चचा। जो चीज़ इनके लिए अधिक भली है, क्या मैं उसकी ओर बुलाना छोड़ दूँ?"

अबू-तालिब : "वह क्या चीज़?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "मैं कहता हूँ, ज़बान से केवल एक वाक्य कह दें। अगर ये तैयार हो जाएँ तो पूरा अरब इनके अधीन हो जाए और सारी दुनिया इनके पैर चूमे।"

अबू-जहल ज़ोर से चिल्लाया : "तेरे बाप की क़सम, वह वाक्य कौन सा है? उस जैसे दस वाक्य हम से सुन ले।"

फ़रमाया : "केवल 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं) कह दीजिए। खुदा के लिए केवल 'ला इला-ह इल्लल्लाह' कह दीजिए। इज़्ज़त और कामियाबी आपके क़दमों में होगी। रब की रहमतों की बारिश आप पर होगी। दुनिया में भी खुश रहेंगे आख़िरत में भी निहाल होंगे।"

यह सुनते ही सब तिलमिला उठे। ग़ुस्से से चेहरे लाल हो गए।

नफ़रत से गर्दनें फिर गईं और वे यह कहते हुए चल दिए—

"तेरे मुँह में ख़ाक! देख, तेरी कैसी मिट्टी ख़राब करते हैं हम।"

(3)

हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* का सन्देश तेज़ी से फैल रहा था। समाज के भले लोग आप *(सल्ल.)* के गिर्द जमा हो रहे थे। यह देखकर मुशरिक लोग बड़े तिलमिलाए। उनके सीनों पर साँप लोटने लगे। एक अल्लाह की इबादत सरासर बुतों का अपमान था। इस्लाम की इज़्ज़त कुफ़्र के लिए ज़िल्लत थी और मुसलमानों की सरबुलन्दी अधर्मियों के लिए ख़तरे की घण्टी थी। अधर्मी ग़ुस्से से बेक़ाबू हो गए। उन्होंने क़समें खाईं :

"अब हम मुहम्मद के लिए नंगी तलवार हैं। जहाँ पाएँगे सताएँगे और जिस तरह हो सकेगा दिल दुखाएँगे। जिस्म को भी ज़ख़्मी करेंगे, रूह को भी छलनी करेंगे...... और उसके दीन को मिटाकर छोड़ेंगे।"

उन्होंने अपने शाइरों और बदमाशों को आप *(सल्ल.)* के ख़िलाफ़ भड़का दिया। वे आपको गालियाँ देते, आप पर तोहमतें लगाते। अपनी शाइरी में आपकी हँसी उड़ाते। लोगों में बदगुमानियाँ फैलाते। आपकी अक़्ल और इरादों पर हमले करते। कोई कहता यह तो जादूगर है, कोई कहता, इसपर तो जादू का असर है, कोई कहता इसको शोहरत की लालसा है।

एक दिन कुछ मुशरिक सरदार काबा में जमा हुए और आप *(सल्ल.)* के बारे में बातचीत करने लगे—

"अरे मुहम्मद तो कहता है, हम लोग मर जाएँगे तो फिर ज़िन्दा किए जाएँगे और अपने किए का हिसाब देंगे। अच्छे कामों का अच्छा बदला पाएँगे और बुरे का बुरा। अच्छे काम करेंगे तो जन्नत में जाएँगे, बुरे काम करेंगे तो जहन्नम में जलेंगे।"

फिर उन्होंने सोचा, ज़रा मुहम्मद को बुलाएँ और उससे कुछ बहस करें। अगर वह अपनी बातों में सच्चा होगा तो दलील देगा और अगर झूठा होगा और सिर्फ़ दावा ही दावा करता होगा तो हमें हक़ होगा कि जितना चाहें सताएँ और इसमें हम बिलकुल बेक़ुसूर ठहरेंगे। न किसी को हमें मलामत करने का हक़ होगा और न पूछगछ का।

उन्होंने तुरन्त एक आदमी आप *(सल्ल.)* के पास दौड़ाया। आदमी पहुँचा तो आपको कुछ उम्मीद हुई। आपने सोचा कि शायद उनपर हक़ खुल गया है। शायद अब वे ईमान ले आएँ। यह सोचकर आप बड़ी बेताबी से उनकी ओर बढ़े। लेकिन...... वहाँ तो मामला ही कुछ और था। वहाँ तो वही दिल दुखानेवाली बातें थीं, वही ज़िद और नफ़रत की अदाएँ थीं।

उन्होंने आप *(सल्ल.)* को देखते ही कहा कि हम तो जानते नहीं, अरब में कोई ऐसा आदमी हुआ हो, जिसने तुम्हारी तरह अपनी क़ौम को तंग किया हो। तुमने हमारे धर्म में दोष निकाला। हमारे देवताओं को बुरा-भला कहा। हमारे बाप-दादा को पथभ्रष्ट कहा। यही क्या? पूरी क़ौम को तितर-बितर कर दिया। अब तुम ख़ुद ही बताओ कि क्या बात रह गई जो तुमने नहीं की। लेकिन सुनो, अब भी हम तुमको सीने से लगाने के लिए तैयार हैं और दौलत, इज़्ज़त, शोहरत सब देने को तैयार हैं।

दौलत की तमन्ना हो तो बताओ, तुम्हारे क़दमों पर दौलत के ढेर लगा दें।

शोहरत की तमन्ना हो तो बताओ, हम तुमको अपना सरदार बना लें।

और अगर कहीं दिमाग़ी मर्ज़ है या भूत-प्रेत का असर है तो हम अच्छे से अच्छे इलाज का इन्तिज़ाम करें। इलाज तुम्हारा होगा, पैसा हमारा होगा।

आप *(सल्ल.)* की अक़्ल और नीयत पर यह कितना ज़बरदस्त हमला था! आपको बड़ा शोक हुआ। फ़रमाया : "मुझमें इस प्रकार की कोई बात नहीं। मुझको माल और दौलत की भी तमन्ना नहीं। शोहरत या बादशाहत की भी लालसा नहीं। मैं तो अल्लाह का रसूल हूँ। उसी ने मुझे भेजा है कि तुम्हें होशियार कर दूँ। बुराई का बुरा अंजाम बता दूँ और भलाई का भला अंजाम भी सुना दूँ और चाहो तो रब से मिला दूँ।"

आप *(सल्ल.)* की बातों का क्या असर हुआ? जहालत और अज्ञानता की रग और फड़क उठी। उनमें एक शोर मच गया और जो कुछ मुँह में आया बकने लगे। उलटी-सीधी माँगें भी करने लगे। बोले--

"अगर सचमुच तुम अल्लाह के रसूल हो और उसने तुम्हें हमारी रहनुमाई के लिए भेजा है तो इन माँगों को पूरा करो, फिर हमें यक़ीन आएगा और हम तुम्हारी बातें मानेंगे।"

किसी ने कहा : "अपने रब से कहो कि हमारे लिए पानी का एक स्रोत जारी कर दे। स्रोत भी ऐसा जो ज़मज़म से भी मीठा हो और जैसे शाम (सीरिया) और इराक़ में नहरें बहती हैं, हमारे यहाँ भी बहने लगें।"

किसी ने कहा : "अगर नबी हो तो अपने रब से कहो कि तुमको बाग़ों और महलों में रखे। सोने-चाँदी के बहुत से ख़ज़ाने दे दे, ताकि ऐश की ज़िन्दगी गुज़रे। यह क्या कि हमारी तरह बाज़ारों में मारे-मारे फिरते हो और रोज़ी के पीछे ख़ून पसीना बहाते हो।"

किसी ने कहा : "यमामा में एक आदमी है। नाम उसका रहमान है। वही तुमको यह सब चीज़ें सिखाता है। सुन लो, हम रहमान पर तो ईमान लाने से रहे। हमारे सामने आसमान पर चढ़ो और वहाँ से एक लेख लाओ। जिसको हम पढ़ भी लें।"

किसी ने कहा : "फ़रिश्ते अल्लाह की बेटियाँ हैं। उन्ही को हम पूजते हैं। अब अगर अल्लाह और फ़रिश्तों को सामने ला खड़ा करो या आसमान को टुकड़े-टुकड़े करके हमपर गिरा दो तो हम तुमपर ईमान ले आएँ। ज़रा हम भी तो देखें कैसी सज़ा और कैसा अज़ाब है, जिसकी ये धमकियाँ हैं।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया : "पाक है मेरा रब! क्या मैं एक पैग़म्बर के सिवा और भी कुछ हूँ?"

अल्लाह ने फ़रमाया : "बरकतवाली है वह ज़ात जो अगर चाहे तो आपको उससे भी अच्छी चीज़ें दे दे। चाहे तो ऐसे बाग़ दे दे, जिनके नीचे से नहरें जारी हों और चाहे तो बहुत से महल दे दे।"

उन लोगों ने कहा : "मुहम्मद! हमने तुम्हारे सामने कितनी ही बातें रखीं, लेकिन तुमने एक न सुनी। तुमसे कितनी ही ख़्वाहिशें कीं, लेकिन

तुमने सब ठुकरा दीं। सुन लो, अब हम मजबूर हैं। अब हमें अधिकार है, तुम्हारे साथ जैसा चाहें, सुलूक करें। याद रखो, हम तुम्हारी जान ही लेकर छोड़ेंगे। अब या तो तुम रहोगे या हम।"

अब उन्होंने आप *(सल्ल.)* के क़त्ल का फ़ैसला कर लिया। बिलकुल आख़िरी और पक्का फ़ैसला।

"लेकिन अगर मुहम्मद को क़त्ल किया गया तो...... अबू-तालिब का क्या होगा? उनके तो कलेजे में आग लग जाएगी और जहाँ वे बिगड़े सारे आले-मुत्तलिब बिगड़ जाएँगे। यही लोग क़ुरैश के सरदार और सरकार हैं। इनके बाद क्या बनेगा?"

यह विचार आते ही उनका साहस जवाब देने लगा और उनके सारे हौसले ठण्डे हो गए।

"मगर हाँ, एक शक्ल है, कोई तरकीब की जाए कि मुहम्मद अबू-तालिब की नज़र से गिर जाए या कम से कम उनका दिल फीका हो जाए कि उसको क़त्ल करें तो वे चुपचाप रहें।"

बहुत सोचा, बहुत सोचा, कई दिन तक सोचा, आख़िर उन नादानों की अक़्ल ने मशवरा दिया—

"अबू-तालिब के पास अपना एक जवान लेकर जाओ। जवान भी ऐसा कि ताक़त और बहादुरी में मशहूर हो और सौन्दर्य-जगत का भी सम्राट हो। उनसे कहो कि अपने भतीजे को दे दें और उसकी जगह इस जवान को रख लें!"

(4)

अपनी इस बोदी तदबीर पर क़ुरैश बड़े मग्न थे। वे अबू-तालिब के पास आए। साथ में एक जवान को भी लाए बोले —

"अबू-तालिब! यह उमारा का बेटा वलीद है, क़ुरैश का सबसे बहादुर और ताक़तवर जवान और फिर सौन्दर्य-जगत का भी सम्राट। आज से यह आपका बेटा है। हर मामले में सही सलाह देगा और हर काम में आपका हाथ बटाएगा। हाँ तो इसको अब आप रखिए और इसके बदले भतीजे को हमें दे दीजिए। इसका क़िस्सा ही पाक कर दें। बिला वजह एक फ़ितना उठा रखा है और सारी क़ौम को तितर-बितर

करके रख दिया है और फिर आपको उससे भी अच्छा आदमी मिल रहा है।"

क़ौम के समझदारों के मुख से ऐसी सतही बातें! इस क़द्र अजीबो-ग़रीब और अक़्ल से हटी हुई बातें!

अबू-तालिब हक्का-बक्का रह गए। कुछ देर तक वे हैरत से उनका मुँह तकते रहे। फिर बोले—

"ऐ अक़्ल के मारे दीवानो! कितना बुरा सौदा कर रहे हो तुम! तुम्हारा बेटा तो मैं अपने पास रखकर उसका पालन-पोषण करूँ और अपने कलेजे को तुम्हें दे दूँ कि तुम उसकी तिक्का-बोटी कर दो! खुदा की क़सम, यह तो क़ियामत तक न होगा!"

अदी का बेटा मुतइम, यह भी क़ुरैश के सरदारों में था, बोला—

"खुदा की क़सम, अबू-तालिब! क़ौम ने बहुत इनसाफ़ किया। लाख कोशिश की, कोई अप्रिय घटना न हो। लेकिन मैं देख रहा हूँ कि आप इनकी कोई बात भी मानने को तैयार नहीं!"

अबू-तालिब : "खुदा की क़सम, मेरे साथ ज़रा भी इनसाफ़ नहीं किया गया। असल बात यह है कि तुमने मुझे बेइज़्ज़त करने का फ़ैसला कर लिया है। तय कर लिया है कि लोगों को मेरे ख़िलाफ़ भड़काते ही रहोगे। तो जाओ, जो जी में आए कर देखो।"

क़ुरैश : "हमने ज़रा भी नाइनसाफ़ी नहीं की। न आपके साथ न भतीजे के साथ। हमने आपसे कितनी ही बार कहा कि भतीजे को समझाइए। उसको इन हरकतों से रोकिए, लेकिन आपने कभी नहीं रोका। सुन लीजिए, अब अगर उसने देवताओं का नाम लिया या बुज़ुर्गों को कुछ कहा या हमारी अक़्ल और समझ पर कोई हमला किया, तो बताए देते हैं कि हम सहन नहीं करेंगे। अब केवल दो ही सूरतें हैं। या तो आप समझा बुझाकर उसका मुँह बन्द कर दें, वरना हम लोग जंग करेंगे। उससे भी करेंगे और आपसे भी करेंगे और हर उस व्यक्ति से करेंगे जो आप दोनों का साथ देगा। अब पानी सिर से ऊँचा हो चुका है और मामला बर्दाश्त से बाहर हो चुका है।

यह कहकर लोग चले गए। मामला बहुत सख़्त था। हालत बड़ी

नाज़ुक थी। अबू-तालिब बड़े ग़मगीन थे। उनका दिल बहुत दुखी था। क़ौम और ख़ानदान की इस खुली चुनौती ने उनका जिगर चीर दिया।

क़ौम की दुश्मनी मोल लेने की ताक़त नहीं। भतीजे को बेसहारा छोड़ देना भी गवारा नहीं। एक अजीबो ग़रीब कशमकश थी। बड़ी ही सख़्त आज़माइश थी। अबू-तालिब ने सिर झुका लिया और सोचने लगे कि :

मैं क्या करूँ?......! आह......! मैं क्या करूँ?

अबू-तालिब! अब तुम क्या करोगे? बोलो, तुम्हारा क्या फ़ैसला है? क्या भतीजे को ज़ालिमों के लिए छोड़ दोगे? या उसकी हिमायत में जान लड़ाओगे?

एक फ़ैसलाकुन घड़ी थी, दुनिया को इन्तिज़ार था कि देखें, क्या होता है?

अबू-तालिब ने तय किया कि भतीजे को बुलाएँ और उन्हें इस्लाम के प्रचार से रोक दें। वह प्रचार जो क़ौम की दुश्मनी का सबब था। जिसने क़ुरैश की एकता को खण्डित कर दिया था और उसकी शान-शौकत का महल ढाकर रख दिया था।

मुहम्मद *(सल्ल.)* चचा के पास गए। चचा ने सारा क़िस्सा सुनाया। क़ुरैश की चुनौती भी बताई। फिर बोले—

"प्यारे बेटे! ख़ुदा के लिए मुझपर और अपनी जान पर रहम करो। मुझपर इतना भार न डालो कि मैं उठा न सकूँ।"

यह एक फ़ैसलाकुन घड़ी थी। दुनिया फिर इन्तिज़ार में थी कि देखें अब क्या होता है!

क्या मुहम्मद *(सल्ल.)* रब की पुकार से मुँह फेर लेते हैं और चचा की पुकार पर ध्यान देते हैं?

क्या मुहम्मद *(सल्ल.)* सत्य का दामन छोड़ देते हैं और इस्लाम धर्म से मुँह मोड़ लेते हैं?

क्या अब दुनिया ईमान के नूर से जगमगाती है या कुफ़्र का अँधेरा ही छाया रहता है?!

मुहम्मद! अपने हितैषी चचा की बातें सुन लीं। अब तुम्हारा क्या

फ़ैसला है? बोलो, अब क्या इरादा है?

मुहम्मद *(सल्ल.)* ने वही फ़ैसला किया, जो फ़ैसला आपके रब का था। आप *(सल्ल.)* ने वही बात पसन्द की, जिसमें ख़ुदा की पसन्द थी। पूरे साहस और पक्के इरादे से फ़रमाया, "चचा! ख़ुदा की क़सम, अगर ये लोग मेरे दाएँ हाथ पर सूरज रख दें और बाएँ हाथ पर चाँद और कहें, मैं यह काम छोड़ दूँ, तो यह नामुमकिन है। या तो यह काम पूरा होगा या मेरी जान भी इसी राह में काम आएगी।"

अल्लाह, अल्लाह!— यह हक़ की ताक़त और ईमान की अज़मत, यह अन्तः करण की शक्ति और रूह की बुलन्दी!

मुहम्मद *(सल्ल.)* हक़ के साथ थे। हक़ ही के लिए आपका जीना था, हक़ ही के लिए आपका मरना था।

चचा ने भतीजे को बहुत ही हैरत और ताज्जुब से देखा। आप*(सल्ल.)* के साहस और इरादे का उनपर बड़ा असर पड़ा। वह एक गहरी सोच में डूब गए। मक़सद की यह धुन! काम की यह लगन!! इस राह में क्या मुसीबतें आएँगी? इसकी कोई परवाह नहीं। क़ौम का क्या सुलूक होगा? इसकी कोई फ़िक्र नहीं।

मुहम्मद *(सल्ल.)* चचा के पास से उठे और चल दिए। रोकना बहुत चाहा, मगर आँखों से आँसू फूट पड़े। आप *(सल्ल.)* के दिल में एक हलचल मच गई। 'अब क्या होगा? अब तो चचा की आँखें भी बदल गईं। उनकी हिम्मत भी टूट गई। उन्होंने अब मुझको बेसहारा छोड़ देना गवारा कर लिया। आह...... जिस चचा ने सदा कलेजे से लगाए रखा, आज मुसीबतों के तूफ़ान में अकेला छोड़ दिया।'

लेकिन अभी कुछ ही दूर गए थे कि चचा ने आवाज़ दी—

"भतीजे! ज़रा सुनना।"

मुहम्मद *(सल्ल.)* फिर चचा के पास गए। चचा ने कहा—

"भतीजे! जाओ, जो दिल चाहे, कहो और जो जी में आए करो। जब तक जान में जान है, मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

चचा की ज़बान से ये बातें सुनीं तो आप *(सल्ल.)* का मुखड़ा हीरे की तरह दमकने लगा और सीने में एक नया जोश उमड़ने लगा।

मुशरिकों के माथे पर बल आता है तो आया करे। उनकी त्योरी चढ़ती है तो चढ़ा करे, हम तो इस राह में जान लड़ाते रहेंगे। अँधेरी दुनिया में इस्लाम का प्रकाश फैला कर रहेंगे। यह था आप *(सल्ल.)* का इरादा और अज़्म। और यह था आप (सल्ल.) का हौसला!

आप *(सल्ल.)* के प्यारे चचा ने आपकी भरपूर मदद के लिए कमर कस ली और इस सिलसिले में ख़ानदानवालों को भी तैयार करने का फ़ैसला कर लिया।

उन्होंने चट-पट सबको जमा किया और कहा—

"भाइयो! यह कितने दुख की बात है कि सब मुहम्मद के पीछे पड़े हैं। बिलकुल जान लेने पर तुल गए हैं— मेरी ख़ाहिश है कि लोगों की यह तमन्ना कभी पूरी न हो। आओ हम सब मिल कर उसका साथ दें।"

अबू-तालिब का भाषण सुनकर सबने उनकी हिम्मत बढ़ाई और मदद का वादा किया। एक अबू-लहब था, जिसको भतीजे पर तनिक भी तरस न आया। उसने जीते जी आप *(सल्ल.)* की दुश्मनी का बीड़ा उठाया। उसने साफ़ कह दिया, मैं क़ुरैश के साथ हूँ, उन ही में मिलकर काम करूँगा।

अब क़ुरैश पूरे ज़ोर-शोर से आप *(सल्ल.)* के विरोध पर तुल गए और आपके आन्दोलन को नाकाम बनाने के लिए रोज़ नई चालें चलने लगे। आप पर ऐसे-ऐसे ज़ुल्म ढाए कि ख़ुदा की पनाह! ज़मीन लरज़ उठी और आसमान थर्रा गए, लेकिन उन ज़ालिमों को तनिक दया न आई। फिर यह चीज़ आप *(सल्ल.)* ही तक सीमित न थी...... आपके साथियों को भी उन्होंने अपने अत्याचारों का निशाना बनाया और ज़ुल्म व सितम की चक्की में पीसकर रख दिया।

लेकिन प्यारे नबी *(सल्ल.)* और आपके जवाँ हिम्मत साथी सब कुछ सहते रहे। उनके पाँव सत्य के मार्ग से तनिक भी न डगमगाए।

कशमकश

(1) क़ुरैश का अनर्गल दुर्व्यवहार
(2) अबू-जहल की असफल साज़िश
(3) अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* परम रक्षक की सुरक्षा में
(4) मुशरिकों के दिल दहलानेवाले अत्याचार
(5) बेबस मुसलमानों की हैरतनाक मज़बूती
(6) हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* इस्लाम की गोद में
(7) हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* का साहस और वीरता
(8) अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* और उत्बा की बातचीत
(9) उत्बा की प्रतिक्रिया और उसका क़ुरैश को मशवरा
(10) बुतख़ाने में क़ुरआन की गूँज
(11) एक बड़ा हंगामा
(12) क़ुरआन के बारे में शिर्कवालों की राय
(13) रिसालत का ज़िन्दा सुबूत
(14) मुशरिकों की हठधर्मी

(1)

काफ़िर प्यारे नबी *(सल्ल.)* और आपके सच्चे साथियों के पीछे हाथ धोकर पड़ गए। वे बड़ी बेदर्दी से सताते। गालियाँ देते। पत्थर बरसाते और अपनी नीच हरकतों का ऐसा-ऐसा प्रदर्शन करते कि ख़ुदा की पनाह! शराफ़त ने कभी तो आँखें बन्द कर लीं और कभी कानों में उँगलियाँ दे लीं।

रुक़य्या और उम्मे-कुलसूम आप *(सल्ल.)* की दो बेटियाँ थीं। इनकी शादी उत्बा और उतैबा के साथ हुई थी। उत्बा और उतैबा अबू-लहब के बेटे थे। बाप ही की तरह ये दोनों भी इस्लाम के कट्टर दुश्मन थे। एक ज़माने तक ये दोनों नेक बीवियों की नाक में दम किए रहे। कड़वी-कड़वी बातों से दिल छेदते रहे। बदक़िस्मत अबू-लहब को इससे भी सुकून न मिला। उनको बेटों से अलग कर दिया। घर से उन्हें निकालकर बाहर कर दिया।

अबू-लहब प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पड़ोस ही में रहता था। वह दरवाज़े पर कूड़ा करकट फेंक देता। कभी गन्दगी लाकर डाल जाता। उसकी बीवी उम्मे-जमील भी कुछ कम न थी। वह रास्ते में काँटे बिछा दिया करती।

दुश्मनों का यह बर्ताव था। इस पर भी आप *(सल्ल.)* ने शराफ़त का दामन हाथ से न छोड़ा। उनकी बदतमीज़ी का जवाब हमेशा कुशादगी और सद्-व्यवहार से दिया। वे सब कुछ करते रहते। आप *(सल्ल.)* देखा करते और सब्र से काम लेते। बहुत दुःखी हो जाते तो केवल इतना कहते—

"आले-मुत्तलिब! पड़ोसी के साथ कैसा सुलूक है यह!"

क़ुरैश तो आप *(सल्ल.)* के क़त्ल का फ़ैसला कर चुके थे। लेकिन उन्होंने देखा कि बनी-हाशिम और बनी-अब्दुलमुत्तलिब आप *(सल्ल.)* के साथ हैं। आप पर जान देने को तैयार हैं। इससे वे बहुत घबराए। उनका साहस जाता रहा। कोई उत्साह न रहा। उन्होंने यह नापाक इरादा दिल से निकाल दिया। परन्तु चोटें करने और फब्तियाँ कसने से बाज़ न आए। कहीं रास्ते में पा जाते या साथियों में देख लेते तो ज़ोर का ठट्ठा

लगाते और कहते—

"क्यों मुहम्मद! आकाश से आज कुछ नहीं आया?"

या कहते—

"क्या और कोई नहीं था कि अल्लाह ने तुम्हें रसूल बना दिया? यहाँ तो एक से एक मौजूद थे। तुम से ज़्यादा अक़्लमन्द भी और मालदार भी!"

या वे तालियाँ पीटते, सीटियाँ बजाते कि आप *(सल्ल.)* किसी से बात न कर सकें। कमज़ोर और निर्धन मुसलमानों को देखते तो क़हक़हा लगाते। इशारा करते हुए कहते—

"ये लोग तो धरती के राजा हैं। जल्द ही रोम और ईरान पर विजय प्राप्त करेंगे।"

आप *(सल्ल.)* का सबसे बड़ा दुश्मन अबू-जहल था। दुश्मनी में एकदम दीवाना था। सज्जनता और शराफ़त तो उसमें नाम को भी न थी। आप *(सल्ल.)* के विरोध के लिए बुरे से बुरा काम भी उसके लिए बुरा न था। जहाँ पाता आप (सल्ल.) को सताता। अन्य लोगों को भी आपके विरुद्ध उकसाता। आप नमाज़ पढ़ते तो कुछ बदमाशों को साथ लेकर ख़ूब हँसी उड़ाता। आप दीन का प्रचार करते होते तो गुण्डों को जमा करके ठट्ठा लगाता। लोगों से बार-बार कहता—

"मुहम्मद की धज्जियाँ बिखेरो फिर चैन की बंसी बजाओ!"

यही नहीं, एक दिन तो उसने साथियों से कहा—

"ख़ुदा की क़सम, कल सुबह एक पत्थर लेकर बैठूँगा। इतना भारी कि उठाए न उठे, ज्यों ही मुहम्मद सजदे में जाएगा सिर कुचल कर रख दूँगा। फिर चाहे तुम मेरा साथ दो या छोड़कर अलग हो जाओ। आले-मनाफ़ भी जो कुछ करेंगे देखा जाएगा।"

साथियों ने उसे प्रोत्साहन दिया। साहस दिलाते हुए बोले—

"तौबा, तौबा, भला हम लोग साथ छोड़ सकते हैं? इस बात से तो बिलकुल बेफ़िक्र रहिए और जो मन में आए, बेधड़क कीजिए।"

सुबह हुई तो अबू-जहल ने एक भारी पत्थर लिया और काबा के निकट आप *(सल्ल.)* के इन्तिज़ार में बैठ गया। क़रीब ही साथी भी बैठ गए। रोज़ की तरह प्यारे नबी *(सल्ल.)* आए। 'रुक्ने-यमानी' और 'हजरे-असवद' के बीच खड़े हुए और नमाज़ में लीन हो गए। फिर जैसे

ही आप *(सल्ल.)* सजदे में गए, अबू-जहल ने पत्थर उठाया और आप *(सल्ल.)* की ओर बढ़ा। साथी चुपचाप बैठे रहे और ध्यानपूर्वक देखते रहे कि क्या होता है?

कितना अद्भुत दृश्य था......! ख़ुदा का एक दुश्मन उस सिर को कुचलने जा रहा था जो सिर अपने रब के क़दमों में पड़ा था, उस वुजूद को मिटाने जा रहा था, जिसका रखवाला ख़ुद रब था।

साथी घटित होनेवाली घटना के इन्तिज़ार में धड़कते हुए दिल से अबू-जहल को देखते रहे। अचानक क्या देखते हैं कि वह लौट पड़ा। चेहरा उतरा हुआ था। आँखें चढ़ी हुई थीं और हाथ में पत्थर ज्यों का त्यों था।

साथियों को बड़ी हैरानी हुई। बढ़कर पूछा—

"अरे अबुल-हकम! क्या हुआ, क्या हुआ? डर क्यों गए?"

अबू-जह्ल : (हाँपते हुए)

"अरे तुमको नहीं कुछ दीखता? सामने आग का अलाव है। तनिक भी आगे बढ़ता तो भस्म होकर रह जाता।"

यह सुनकर वे और भी हैरान हुए और ताज्जुब से उसका मुँह तकने लगे। उन्होंने सोचा, मालूम होता है, इरादा बदल गया। करने को मन चाहता नहीं। उसी की ये सब बहाने बाज़ियाँ हैं। एक साथी तो जोश में आ गया। तुरन्त वही पत्थर उठाया और उसी इरादे से आप *(सल्ल.)* की तरफ़ बढ़ा। कुछ ही दूर गया कि उसके क़दम रुक गए और फिर वह भी लौट पड़ा। लोगों ने देखा कि उसका चेहरा भी उतरा हुआ था और भय से आँखें पथराई हुई थीं!

अल्लाह ने आप *(सल्ल.)* की मदद की। दुश्मनों की साज़िशें धरी की धरी रह गईं।

यह कोई पहली घटना नहीं। क़ुरैश ने बड़ी-बड़ी साज़िशें कीं और बार-बार कीं। लेकिन उनके अरमान कभी पूरे न हुए। वे लगातार मुँह की खाते रहे। फिर भी वे अपनी हरकतों से बाज़ न आए। आप *(सल्ल.)* पर किसी तरह बस न चला तो उन्होंने बेचारे कमज़ोर मुसलमानों को निशाना बनाया और उनको तड़पा-तड़पा कर दिल की भड़ास निकालने लगे। फिर इस काम में क़ुरैश अकेले न थे और बहुत से क़बीले भी उनके साथ थे और उनकी पीठ ठोंक रहे थे। इन क़बीलों ने आपस में

एक समझौता भी किया।

इस समझौते के अनुसार कोई क़बीला किसी मुसलमान को पनाह नहीं दे सकता था। प्रत्येक क़बीले की ज़िम्मेदारी थी कि जहाँ कहीं मुसलमान मिल जाएँ, उनपर ज़ुल्म और सितम का पहाड़ तोड़े। उनको ख़ूब मारे-पीटे। बेइज़्ज़त और रुसवा करे। शराफ़त और इनसानियत का ख़ून हो तो हुआ करे। इसकी तनिक भी परवाह न करे, और अगर किसी का दास या दासी मुसलमान हो जाए तो उसपर वह ज़रा भी तरस न खाए। इतना-इतना सताए कि वह नए धर्म से मुँह मोड़कर अपने बाप-दादा के दीन की पनाह लेने पर मजबूर हो जाए।

दिन प्रतिदिन उनके अत्याचार बढ़ते ही गए। उनमें ऐसे-ऐसे बेरहम भी थे, जिनके सीनों में दिल नहीं, पत्थर के टुकड़े थे। जिनके अत्याचारों से धरती दहल गई और आकाश थर्रा उठे। इन ज़ालिमों ने असहाय मुसलमानों को क़ैद किया। मारा-पीटा, भूखा-प्यासा रखा। मक्के की तपती हुई रेत पर लिटाया। लोहे की गर्म छड़ों से दाग़ा। पानी में डुबकियाँ दीं और न जाने क्या-क्या किया!

अंजाम। ज़ाहिर था कि जो लोग अक़ीदे के कमज़ोर और इरादे के कच्चे थे, वे दीन पर जमे न रह सके और दोबारा कुफ़्र और शिर्क में जा पड़े। कुछ ऐसे भी थे जो ऊपर से शिर्क के रंग में रंग गए; परन्तु भीतर से मुसलमान रहे। उनका मक़सद था कि मुशरिकों के अत्याचारों से बच सकें। लेकिन कुछ ऐसे साहसी भी थे जो पूरी बहादुरी से इस्लाम पर जमे रहे और बहादुरी से सारी मुसीबतों का मुक़ाबला करते रहे।

इन्ही जवानों में यासिर *(रज़ि.)*, उनकी बीवी सुमय्या *(रज़ि.)* और जिगर के टुकड़े अम्मार *(रज़ि.)* भी थे। ये तीनों मक्का के ग़रीब लोगों में से थे और बहुत पहले इस्लाम क़बूल कर चुके थे। दुश्मन उनके कपड़े उतार देते। जब दोपहर सख़्त हो जाती तो तपती हुई रेत पर लिटा देते। कभी आग से जलाते, कभी पानी में डुबकी देते। इसी बेकसी की हालत में हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* का उनके पास से गुज़र होता तो उनको तसल्ली देते और बहुत ही दर्द भरे शब्दों में कहते—

"सब्र करो सब्र, तुम्हारा ठिकाना जन्नत है।"

हज़रत यासिर *(रज़ि.)* ने तो इसी तरह तड़प-तड़प कर जान दे दी। हज़रत सुमय्या *(रज़ि.)* को अबू-जह्ल ने शहीद किया। हुआ यह कि वह

हर समय उनकी जान के पीछे पड़ा रहता और बड़ी बेदर्दी से सताता। एक दिन उन्हें जोश आ गया और उन्होंने अबू-जह्ल को फटकार दिया। अब क्या था, अबू-जहल गुस्से से पागल हो गया। इत्तिफ़ाक़ से हाथ में बर्छी थी। खींचकर ऐसी मारी की हज़रत सुमय्या *(रज़ि.)* का दम निकल गया। इस्लाम में सबसे पहले शहीद होने का श्रेय इन्ही बुज़ुर्ग महिला को हासिल हुआ।

हज़रत अम्मार *(रज़ि.)* को ये दुष्ट लोहे का कवच पहनाकर धूप में छोड़ देते या तपती हुई ज़मीन पर लिटा कर इतना मारते कि वे बेहोश हो जाते। लेकिन इस मार-पीट और धूप की सख़्ती से ईमानी गर्मी में कोई कमी न होती।

इन्ही बहादुरों में हज़रत ख़ब्बाब *(रज़ि.)* भी थे। ये उम्मे-अंमार के ग़ुलाम थे। वह पापिन लोहे की छड़ें गर्म करती और उनके सिर पर रख दिया करती थी, और न जाने उनपर क्या-क्या सितम होते। एक दिन तो ऐसा भी हुआ कि कोयले दहकाए गए और वे उन कोयलों पर चित लिटा दिए गए और इसी हाल में कोयले ठण्डे हो गए। हज़रत ख़ब्बाब*(रज़ि.)* ने इन अत्याचारों पर प्यारे नबी *(सल्ल.)* से फ़रियाद की। आपने उनके लिए दुआ की–

"ऐ अल्लाह! ख़ब्बाब की मदद कर।"

आप *(सल्ल.)* की दुआ रंग लाई। उम्मे-अंमार के सिर में कोई बीमारी हो गई। हकीमों ने उसका इलाज किया और बताया कि गर्म छड़ों से सिर को दाग़ा करे। अतएव ख़ब्बाब *(रज़ि.)* लोहे की छड़ गर्म करते। फिर उसका सिर दाग़ते।

इन्ही बहादुर लोगों में एक हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* भी थे। ये हब्शा के रहनेवाले थे और ख़ल्फ़ के बेटे उमय्या के ग़ुलाम थे। उमय्या उनका खाना-पीना सब बन्द कर देता। जब भूख-प्यास से वे बेक़रार हो जाते और ठीक दोपहर हो जाती तो वह उन्हें तपती हुई चट्टानों पर चित लिटा देता और छाती पर बहुत भारी पत्थर रखवा देता, फिर कहता–

"मुहम्मद का साथ छोड़ दो और लात और उज़्ज़ा को पूजो वरना इसी तरह एड़ियाँ रगड़ते रहो।"

हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* ये सारे अत्याचार सहते रहते और उस समय भी उनकी ज़ुबान पर ये शब्द होते–

"अहद!...... अहद! एक है, ख़ुदा तो बस एक है।"

वे तो ईमान के नशे में चूर थे। वह नशा ऐसा न था जो इन तल्ख़ियों से उतर जाता। इस जोश की हालत में वे बार-बार यही शब्द दोहराते।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* का गुज़र उनके पास से होता तो आप *(सल्ल.)* यह निर्मम हालत देखकर तड़प उठते और बहुत ही दर्द भरे शब्दों में फ़रमाते—

"बिलाल! घबराओ नहीं। अहद, अहद जल्द ही मुक्ति दिलाएगा।"

वरक़ा-बिन-नौफ़ल का गुज़र होता तो कहते

"बिलाल! अल्लाह की क़सम वह एक ही है। सचमुच वह एक ही है।"

फिर ज़ालिमों को सम्बोधित करते हुए कहते—

"ख़ुदा की क़सम, अगर तुम लोगों ने इसी तरह जान ले ली तो मैं इसकी क़ब्र को ज़ियारतगाह बनाऊँगा।"

हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* ये सख़्तियाँ झेलते रहे और सब्र करते रहे। आख़िर एक दिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* उमय्या के पास गए और बोले—

"अरे तुझको तनिक भी ख़ुदा का डर नहीं कि इस बेचारे को नाहक़ मारे डाल रहा है?"

वह बोला, "तुम ही ने तो इसको बिगाड़ा है। अब तुम ही बचाओ भी।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने फ़रमाया—

"मेरे पास एक मुशरिक ग़ुलाम है। तू उसे ले ले और इसे मुझे दे दे।"

बोला, "चलो मंज़ूर है मुझे। ले जाओ इसे।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपना ग़ुलाम उमय्या को दे दिया और उससे हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* को लेकर ग़ुलामी से आज़ाद कर दिया।

केवल हज़रत बिलाल ही नहीं और न जाने कितने ग़ुलाम थे, जो मुसलमान हो गए थे और इस मुसलमान होने के जुर्म में बेरहम मालिकों के अत्याचारों का निशाना बन रहे थे। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* उन अत्याचारों को देख-देखकर तड़प उठे। आख़िर उनसे रहा न गया और

सबको ख़रीद-ख़रीद कर आज़ाद कर दिया यहाँ तक कि एक दिन उनके बाप ने कहा–

"बेटे! तुम तो बहुत कमज़ोर-कमज़ोर ग़ुलाम आज़ाद कर रहे हो। ज़रा ऐसे ग़ुलाम आज़ाद करो, जो बहादुर और ताक़तवर हों कि वक़्त पड़े तो कुछ काम आ सकें। मुसीबत में तुम्हारी मदद कर सकें।"

"अब्बा जान! मेरा मक़सद तो केवल अल्लाह को ख़ुश करना है। इनसे कोई सेवा नहीं लेनी है।" हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने जवाब दिया।

अल्लाह को उनकी यह बात बहुत पसन्द आई और यह आयत उतरी–

> "और किसी का उसके ज़िम्मे कोई एहसान नहीं है, जिसका बदला दिया जाए। उसे तो बस अपने सर्वोच्च अल्लाह की ख़ुशी हासिल करनी है और वह यक़ीनन उससे ख़ुश होगा।"
>
> (क़ुरआन, 92:19-20)

(2)

अबू-जह्ल प्यारे नबी *(सल्ल.)* को सताने में ज़रा भी नर्म न पड़ा। वह जब भी अवसर पाता दिल का बुख़ार निकालता रहता।

आप *(सल्ल.)* की नुबूवत का यह छठा साल था। एक दिन आप *(सल्ल.)* के पास से अबू-जह्ल का गुज़र हुआ। देखते ही वह आपको गालियाँ देने लगा और जितना बुरा-भला कह सकता था, कहता रहा। आपने उसे मुँह न लगाया और न कोई प्रतिक्रिया व्यक्त की। यह बात उसको और भी खल गई। ग़ुस्से से लाल हो गया। झुक कर ज़मीन से मुट्ठी भर कंकरियाँ उठाईं और आप *(सल्ल.)* के प्यारे चेहरे पर फेंक मारीं! फिर देर तक बुरा भला कहता रहा और मुँह में जो आया बकता रहा।

पास ही एक दासी खड़ी यह सब देख रही थी। यह अब्दुल्लाह तैमी की दासी थी। वही अब्दुल्लाह तैमी जो आप *(सल्ल.)* के गुफा के साथी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का चचेरा भाई था। उसकी गिनती क़ुरैश के सरदारों में होती थी। वह बहुत ही धनवान था। भोग-विलास और व्यभिचार में सबसे बढ़ा हुआ था। वह दासियाँ-ख़रीद-ख़रीद कर रखता और उनसे वेश्यावृत्ति कराता था।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के साथ अल्लाह के दुश्मन की यह

बदसुलूकी देखकर इस दासी का दिल भर आया। इस्लाम से वास्तव में उसको प्रेम था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* से उसे मुहब्बत थी। यद्यपि लोग इस बात से बेख़बर थे। उसने अपने ईमान को छिपा रखा था, क्योंकि उसे यह डर था कि अगर उसका मालिक जान गया तो मारते-मारते उसे बेजान कर देगा।

शाम को उसे पैरों की चाप सुनाई दी। यह चाप अबू-कुबैस नामक पहाड़ की ओर से आ रही थी। देखा तो एक आदमी चला आ रहा था। उसका क़द न लम्बा था न छोटा, आँखें काली थीं। कंधे चौड़े थे। चेहरे से गम्भीरता और रोब ज़ाहिर हो रहा था। कमर में तलवार बँधी हुई थी। गर्दन से कमान लटक रही थी और पीठ पर तरकश था। वह आदमी कौन था? क़ुरैश का शेर हमज़ा था। अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा और प्यारे नबी *(सल्ल.)* का चचा। एक रिश्ते से वह आप *(सल्ल.)* की ख़ाला (मौसी) का बेटा भी होता था और दूध शरीक भाई भी था। वह शिकार से लौट रहा था और काबा का तवाफ़ करने जा रहा था। उसका यही नियम था कि शिकार से लौटता तो सबसे पहले काबा जाता। वहाँ पहुँचकर तवाफ़ करता। वहीं क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदार बैठे होते। उनसे मुलाक़ात करता और फिर घर लौट आता।

हमज़ा जब निकट आया तो उस दासी से रहा न गया। वह बहुत ही भावुक होकर बोली–

''अबू-उमारा! क्या आप लोगों में ग़ैरत नाम की कोई चीज़ भी न रही कि बनी-मख़ज़ूम के ग़ुण्डे मुहम्मद को इतनी आज़ादी से सता रहे हैं?''

हमज़ा के क़दम रुक गए......

''अब्दुल्लाह की सेविका! तू यह क्या कह रही है?'' उसने बड़ी हैरानी से पूछा।

दासी : ''मैं क्या बताऊँ कि आज तुम्हारे भतीजे मुहम्मद पर क्या बीती! मुहम्मद यहीं पर थे। कहीं से अबू-जहल भी आ गया। आते ही उसने ऐसी-ऐसी गालियाँ दीं कि मैं तो शर्म से पानी-पानी हो गई। फिर इसी पर बस न किया। मुट्ठी भर कंकरियाँ ज़मीन से उठाईं और बहुत ही ग़ुस्से में उनके मुँह पर फेंक मारीं।''

हमज़ा : ''क्या यह आँखों देखी बात है?''

दासी : "हाँ, हाँ, मेरी इन आँखों ने देखा है। मेरे इन कानों ने सुना है।"

हमज़ा ग़ुस्से से लाल हो गया। तुरन्त ही काबा गया। आज किसी से कोई बातचीत न की। सलाम तक न किया। पहुँचते ही अबू-जहल पर नज़र पड़ गई। वह लोगों के बीच बैठा हुआ था। हमज़ा तेज़ी से उसकी ओर बढ़ा। कमान सँभाल कर इतने ज़ोर से मारी कि उसका सिर फट गया। अब क्या था, ख़ून का फ़व्वारा फूट पड़ा। पूरा चेहरा लहुलुहान हो गया।

"वह मेरा भतीजा है, जिसे तूने लावारिस समझ रखा है। वह मेरा भतीजा है, वह गालियाँ खाने के लिए नहीं है और न उसका चेहरा पत्थर खाने के लिए ही बना है।" हमज़ा आज बुरी तरह गरज रहा था।

हमज़ा बड़ा रौबदाबवाला आदमी था। उसके ग़ुस्से से हर एक काँपता था। वह अगर बिगड़ जाता तो कोई बोल न सकता था।

अबू-जहल ने अपने को बेक़ुसूर साबित करने की कोशिश करते हुए कहा—

"हमज़ा! होश से काम लो! ज़्यादा भावुक न बनो। अपने भतीजे की हरकतें तो देखो उसने तो हमको मूर्ख समझ लिया है। जो चाहता है बक देता है। कभी हमारी समझ और अक़्ल पर चोट करता है, कभी बाप-दादा के विरुद्ध आवाज़ उठाता है। इसपर भी बस नहीं। हमारे देवताओं तक को नहीं छोड़ता, और फिर हमारे जितने ग़ुलाम और दासियाँ हैं सबको बहकाता है।"

हमज़ा ने जवाब दिया "तुमसे ज़्यादा नादान है भी कौन कि एक अल्लाह को छोड़कर बेजान मूर्तियों को पूजते हो? कान खोलकर सुन लो, मैं भतीजे के साथ हूँ। अब इस्लाम ही के लिए मेरा जीना है। इस्लाम ही के लिए मेरा मरना है।"

अबू-जहल बनी-मख़ज़ूम क़बीले से था। वहाँ उस क़बीले के भी कुछ लोग मौजूद थे। वे तुरन्त अबू-जहल की मदद के लिए आगे बढ़े और बोले—

"हमज़ा! होश में रहो, दिमाग़ न ख़राब करो! क्या तुम अपने दीन से फिर गए हो? क्या तुम भी मुहम्मद के चक्कर में आ गए हो!"

हमज़ा ने कहा, "जब उसका सत्य होना मुझपर स्पष्ट हो गया तो

फिर मैं उसे क्यों न स्वीकार करूँ? सुन लो, मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं। जो कुछ कहते हैं बिलकुल सत्य है। ख़ुदा की क़सम अब मैं इससे नहीं फिर सकता। हाँ, अगर तुम सच्चे हो और साहस रखते हो तो रोककर देख लो।"

अबू-जहल ने हमज़ा का यह ग़ुस्सा देखा तो डरा। समझ गया, इसका अंजाम अच्छा नहीं हो सकता। साथियों से बोला–

"हटो, जाने भी दो। मैंने वास्तव में मुहम्मद पर बड़ा ज़ुल्म किया। यह उसी की प्रतिक्रिया है। अब हमज़ा को और ग़ुस्सा न दिलाओ। वे ठण्डे हो जाएँगे तो सारा मामला ठीक हो जाएगा।"

हमज़ा ने भी लोगों के सामने अपने मुसलमान होने का एलान कर दिया, और निडर होकर कह दिया–

"मेरा दीन वही है जो मुहम्मद का है।"

फिर वे लौटकर घर आए और सोचते रहे कि "क्या मैं जो कुछ कह कर आया हूँ वह सही है? कहीं मैंने ग़लत बात का एलान तो नहीं कर दिया? कहीं मैं भावुक तो नहीं हो गया?"

आँखो-आँखों में रात कट गई। पूरी रात जागते रहे और दुआ करते रहे–

"ऐ रब! मुझको सीधा रास्ता दिखा। मेरे दिल की बेक़रारी दूर कर।"

सुबह हुई तो ऐसा मालूम हुआ, मानो मन के द्वार खुल गए। दिल शान्त था और अन्तर विश्वास की रौशनी से जगमगा रहा था। वे दौड़े हुए भतीजे मुहम्मद *(सल्ल.)* के पास गए। अपने मुसलमान होने की ख़ुशख़बरी सुनाई और अन्तिम साँस तक दीन के लिए जान लड़ाने का संकल्प किया।

हमज़ा *(रज़ि.)* के मुसलमान होने से कुफ़्र का सिंहासन काँप उठा। असत्य अपने एक बड़े बहादुर और जाँबाज़ सिपाही से महरूम हो गया।

हमज़ा *(रज़ि.)* के ईमान लाने से आप *(सल्ल.)* को कितनी अधिक ख़ुशी हुई? इसका अन्दाज़ा कौन कर सकता है? लोगों ने देखा, उस समय आप *(सल्ल.)* का मुखड़ा गुलाब की तरह खिला हुआ था, और चाँद की तरह चमक रहा था। हमज़ा *(रज़ि.)* के मुख से ईमान की बात सुनकर बेइख़्तियार आप *(सल्ल.)* की ज़ुबान से ये शब्द निकले–

"ऐ अल्लाह! हमज़ा के क़दमों को ईमान पर जमाए रख।"

हमज़ा *(रज़ि.)* क़ुरैश के सबसे बड़े पहलवान थे। उनकी बहादुरी की हर ओर चर्चा थी। हर छोटा-बड़ा उनसे दबता था। उनका मुसलमान होना इस्लाम के उन्नति-काल का शुभारम्भ था। उसी समय आप *(सल्ल.)* ने यह दुआ भी की—

"ऐ ख़ुदा! उमर और अम्र में जो तुझे अधिक प्रिय हो, उसके द्वारा इस्लाम की मदद कर।"

उमर ख़त्ताब का बेटा था और अम्र (अबू-जहल) हिशाम का। ये दोनों क़ुरैश के बहुत ही ताक़तवर और बाअसर सरदार थे। आप *(सल्ल.)* की तमन्ना थी, इन दोनों में से कोई एक भी मुसलमान हो जाए कि इससे इस्लाम की ताक़त कई गुना बढ़ जाए।

(3)

मुसलमानों की तादाद धीरे-धीरे बढ़ती जा रही थी। यह देखकर क़ुरैश बड़े फ़िक्रमन्द और परेशान थे। हज़रत हमज़ा का इस्लाम में आ जाना उनके लिए एक दुखद घटना थी और उनकी इज़्ज़त और हुकूमत के लिए खुला हुआ ख़तरा था। जिसने भी यह ख़बर सुनी उसने सिर पकड़ लिया। ग़म और ग़ुस्से से दीवाना हो गया। हर तरफ़ बेचैनी फैल गई। हर ओर उदासी छा गई। जहाँ दो आदमी इकट्ठे होते, इसी का रोना रोते और इसी पर दुःख और शोक प्रकट करते।

एक दिन की बात है। क़ुरैश जमा थे। आपस में बातें कर करे थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* के बारे में बातचीत हो रही थी। वही अपनी बेबसी का रोना था। क़ुरैश का एक बड़ा सरदार उत्बा-बिन-रबीआ बोला

"भाइयो! क्या मैं जाऊँ और मुहम्मद से बात करूँ? मेरा विचार है, उसके सामने कुछ बातें रखूँ, हो सकता है कोई बात मान ले और सिर से यह बला टल जाए।"

"जाओ अबुल-वलीद, ज़रूर जाओ! जाकर उसको किसी तरह राज़ी करो।" सबने एक आवाज़ होकर कहा :

उत्बा उठा। प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास आया। बोला—

"भतीजे! तुम्हें मालूम है, तुम कितने ऊँचे ख़ानदान के सपूत हो। हमारे दिल में तुम्हारा क्या स्थान है, यह भी तुम अच्छी तरह जानते हो, मगर तुमने तो बहुत बुरी आवाज़ उठाई है। देख रहे हो, पूरी क़ौम

तितर-बितर हो गई। सारी व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई। अच्छा सुनो, मैं कुछ बातें रखता हूँ। हो सकता है, कोई बात दिल को लग जाए और तुम्हें अपनी ग़लती का एहसास हो जाए।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "हाँ, हाँ, कहिए अबुल-वलीद! मैं ख़ुशी से सुनूँगा।"

उत्बा : "भतीजे! क़ौम में फूट डालने से क्या फ़ायदा? दौलत चाहते हो तो बताओ, तुम्हारे सामने हम दौलत के ढेर लगा दें। सरदार बनने की इच्छा हो तो तुम्हें अपना सरदार बना लें। बादशाहत की तमन्ना हो तो इसके लिए भी हम तैयार हैं। फिर तुम्हारे बग़ैर कोई फ़ैसला न होगा और जो तुम कहोगे वही होगा। और हाँ, अगर तुम पर भूत-प्रेत का असर हो गया है और उसके मुक़ाबले में तुम बेबस हो तो बताओ, हम इलाज का अच्छे से अच्छा इन्तिज़ाम करेंगे और जब तक तुम अच्छे नहीं हो जाओगे, हम पानी की तरह दौलत बहाएँगे।"

इसी तरह उत्बा वही बातें करता रहा, जो उससे पहले लोग कर चुके थे।

उत्बा अपनी बात कह चुका तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"अबुल-वलीद! अब तनिक मेरी सुनिए। मैं भी कुछ सुनाता हूँ।"

आप *(सल्ल.)* ने क़ुरआन की सूरा हा-मीम अस-सजदा पढ़कर सुनाई। उत्बा पूरे ध्यान से सुनता रहा। कई बातें तो उस सूरा में ऐसी आईं जिन्हें सुनकर उसका दिल दहल-दहल गया। आप *(सल्ल.)* सूरा सुना चुके तो वह उठा और क़ुरैश की तरफ़ लौट पड़ा। लेकिन अब उसके विचार पहले जैसे न थे। अब उसके दिल की दुनिया बदल चुकी थी। उसके साथियों ने उसे आते देखा। उन्होंने दूर ही से उसे देखकर कहा—

"ख़ुदा की क़सम! यह वह चेहरा नहीं, जो यहाँ से लेकर गया था।" वह निकट आया तो सबने पूछा—

"कहो अबुल-वलीद! क्या रहा?!"

अबुल-वलीद : "ख़ुदा की क़सम! मैंने शाइरों की शाइरी सुनी है। बहुत-से ज्योतिषियों की भी बातें सुनी हैं, लेकिन यह तो चीज़ ही और है। इस जैसी चीज़ तो मेरे कानों ने अब तक न सुनी।

भाइयो! मेरी बात मान लो। जो कुछ वह करता है, करने दो। इसको अरब के लोगों पर छोड़ दो। अगर वे कामियाब हुए तो तुम्हारा

मक़सद पूरा हो जाएगा और तुम भाई के ख़ून में हाथ रंगने से भी बच जाओगे, और अगर वे इसके सामने झुक गए तो इसकी इज़्ज़त तुम्हारी इज़्ज़त है। इसकी ताक़त तुम्हारी ताक़त है।''

क़ुरैश : ''अबुल-वलीद! ख़ुदा की क़सम तुम पर भी जादू चल गया। तुम भी उसके जादू से बच न सके।''

उत्बा : ''मैंने जो समझा कह दिया। अब तुम जानो तुम्हारा काम।''

क़ुरैश का हाल यह था कि अगर किसी को क़ुरआन गुनगुनाता सुन लेते तो बहुत सताते और मज़ाक़ उड़ाते। किसी को नमाज़ पढ़ते देख लेते तो फब्तियाँ कसते और ठट्ठा लगाते, और यह सब कुछ केवल हठधर्मी और दुश्मनी की वजह से था, वरना प्यारे नबी *(सल्ल.)* की बातें जानने का उन्हें बड़ा शौक़ था। क़ुरआन की आयतें सुनना भी उन्हें बहुत प्रिय था।

मुसलमान उनसे बहुत बचते। क़ुरआन पढ़ना होता तो छिप-छिपा कर पढ़ते। कुछ याद करना होता तो हल्की आवाज़ से याद करते। एक दिन उन्हीं में से किसी ने कहा—

''क़ुरआन बहुत धीमी आवाज़ से पढ़ा जाता है। क़ुरैश ने तो इसे ढंग से सुना नहीं। वे क्या जानें, इसके सौन्दर्य और इसकी प्रतिभा को! है कोई जो इसकी हिम्मत करे? है कोई जो उन्हें जाकर क़ुरआन सुनाए?''

अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* के एक सच्चे साथी थे। बहुत पहले इस्लाम में आ चुके थे। वे बोले—

''मैं जाता हूँ। आज मैं उन्हें क़ुरआन सुनाऊँगा।''

''अब्दुल्लाह! तुम्हारे बारे में ख़तरा है। इस काम के लिए कोई ऐसा आदमी होना चाहिए, जिसका कोई ऐसा क़बीला हो कि अगर मुशरिक हमला करें तो उसको बचा सके।'' साथियों ने मशवरा दिया।

अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* : ''डरने की कोई बात नहीं। तुम लोग फ़िक्र न करो। अल्लाह मुझे बचाएगा।''

ठीक दोपहर का समय था। क़ुरैश काबा में बैठे हुए थे। अब्दुल्लाह उठे और मक़ामे-इबराहीम के पास पहुँच कर बुलन्द आवाज़ से क़ुरआन की एक सूरा 'सूरा रहमान' पढ़ने लगे।

लोग अब्दुल्लाह की ओर देखने लगे। हर एक दूसरे से पूछ रहा था—

"अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद यह क्या कह रहा है?"

किसी ने कहा : "यह तो शायद मुहम्मद का कलाम है। मुहम्मद का कलाम यहाँ कौन पढ़ रहा है? नोच लो इसका मुँह!"

अब क्या था। सारे मुशरिक अब्दुल्लाह पर टूट पड़े और मुँह पर थप्पड़ बरसाने लगे। अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* ने तनिक भी परवाह न की। मार पड़ती रही और वे ज़ोर-ज़ोर से क़ुरआन पढ़ते रहे। जी भरके सुना लिया तो लौटकर साथियों में आए। चेहरा बिलकुल लहूलुहान था।

"अब्दुल्लाह! हमें इसी का डर था।" साथियों ने रंज और अफ़सोस ज़ाहिर करते हुए कहा।

"ख़ुदा के दुश्मन आज से ज़्यादा मुझे कभी कमज़ोर नहीं नज़र आए। कहो तो कल फिर इसी तरह सुना आऊँ।" इब्ने-मसऊद ने फ़ातिहाना अन्दाज़ में जवाब दिया।

"रहने दो। इतना ही बहुत है। जिस बात से उन्हें चिढ़ थी, उनके कानों में पड़ चुकी।" साथियों के उनकी हिम्मत की दाद दी।

क़ुरआन......! हाँ, यही क़ुरआन, जिससे क़ुरैश को इतनी चिढ़ थी, उसे सुनने के लिए भी वे बेक़रार रहते और साथियों से छिप-छिपकर सुना करते। हर एक को शौक़ था कि मुहम्मद *(सल्ल.)* का कलाम सुने। देखे कैसा कलाम है, जिसके सामने कवियों का काव्य फीका पड़ गया। ज्योतिषियों का कलाम पीछे रह गया और जादूगरों से भी नम्बर ले गया।

जब रात का अँधेरा फैल जाता। हर ओर सन्नाटा छा जाता तो क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदार आप *(सल्ल.)* के घर की ओर चल पड़ते। वहाँ क़रीब ही कहीं दुबक कर बैठ जाते। वह समय ख़ामोशी और सुकून का होता था, आप *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ते होते। नमाज़ में आप बड़ी मीठी आवाज़ में क़ुरआन पढ़ते। बड़े ही मनमोहक ढंग से बार-बार उसे दोहराते। ये लोग ख़ामोशी से बैठे सुनते रहते। सुबह होने को होती तो दबे पाँव घर लौट आते। रात के पर्दे में यह सब हो जाता। किसी को कानों-कान ख़बर भी न होती। ख़ुद आप *(सल्ल.)* भी इससे बेख़बर रहते।

एक दिन की बात है। अबू-जहल, अबू-सुफ़ियान और अख़नस

अपने-अपने घरों से निकले। हर तरफ़ अँधेरा और सन्नाटा था। ये तीनों आप *(सल्ल.)* के घर के पास पहुँचे और छिप-छिप कर बैठ गए। रात अँधेरी थी, इसलिए कोई किसी को देख न सका। आप *(सल्ल.)* क़ुरआन पढ़ रहे थे। आवाज़ बहुत ही रसीली और प्यारी थी। कानों को बहुत भली लग रही थी। हर एक क़रीब ही दुबक कर बैठा हुआ था और समझ रहा था कि मैं यहाँ अकेला हूँ। सुबह होने को हुई तो सब अपने-अपने घरों को लौट पड़े। इत्तिफ़ाक़ से एक जगह आकर तीनों मिल गए। हर एक दूसरे का इरादा ताड़ गया। तीनों अपनी ग़लती पर शर्मिन्दा हुए और हमेशा के लिए कान पकड़ लिए। हर एक ने कहा—

"अगर किसी ने देख लिया तो फिर बड़ा ग़ज़ब हो जाएगा। हमारा सारा खेल बिगड़ जाएगा और मुहम्मद के लिए मैदान साफ़ हो जाएगा।"

दूसरी रात आई तो अबू-जहल फिर आप *(सल्ल.)* के घर के पास जाकर दुबक गया और क़ुरआन सुनने लगा। वह सोच रहा था। आज तो वे दोनों आएँगे नहीं।

कुछ देर बाद अबू-सुफ़ियान भी आ पहुँचा। वह भी क़रीब ही दुबक कर बैठ गया। उसका भी विचार था कि आज तो वे दोनों आएँगे नहीं।

कुछ ही देर बाद अख़नस भी आ पहुँचा। वह भी कहीं क़रीब ही बैठ गया। उसका भी ख़याल था कि आज वे दोनों आएँगे नहीं।

सुबह होने को हुई तो फिर तीनों लौट पड़े। इत्तिफ़ाक़ से आज भी सबकी मुठभेड़ हो गई। वे सब फिर शर्मिन्दा हुए और आइन्दा के लिए तौबा की।

तीसरी रात आई तो फिर अबू-जहल ने आप *(सल्ल.)* के घर का रुख़ किया। उसने सोचा, दोनों दो बार आए और हर बार पकड़े गए। भला अब फिर यह ग़लती वे कैसे कर सकते हैं।

हर एक ने यही सोचा और फिर जा पहुँचा। रास्ते में आज भी मुठभेड़ हो गई। तीनों फिर शर्मिन्दा हुए। फिर उन्होंने नया अहद किया। हर एक ने फिर क़समें खाईं कि अब कभी नहीं आएँगे।

सुबह हुई तो अख़नस अबू-सुफ़ियान के पास पहुँचा। बोला—

"अबू-हंज़ला! मुहम्मद का कलाम तुमने सुन लिया। बोलो, इसके बारे में तुम्हारा क्या विचार है?"

अबू-सुफ़ियान : "क़सम है! अबू-सालबा! कुछ तो ऐसी चीज़ें सुनीं जिनका मतलब समझ में आता है। पता चलता है कि उनसे क्या मुराद है। लेकिन कुछ ऐसी भी बातें हैं, जिनका मक़सद ही नहीं पता चलता। समझ ही में नहीं आता कि उनसे क्या मुराद है?"

अख़नस : "ख़ुदा की क़सम! अपना भी यही हाल है।"

फिर अख़नस अबू-जहल के पास आया और उससे भी यही सवाल किया। अबू-जहल बोला—

"क्या तुम नहीं जानते? हम और अब्दे-मनाफ़ हमेशा नेक नामी में बराबर रहे। कोई ऐसा काम नहीं जो उन्होंने किया हो और हमने छोड़ दिया हो। हर मौक़े पर उनके साथ रहे और हर मैदान में उनके प्रतिद्वन्द्वी रहे। बस यों समझ लो कि हम दोनों मुक़ाबले के थे। आज वे कहते हैं कि हमारे अन्दर एक नबी है। उसके पास आकाश से वह्य आती है। अब बताओ, इस चीज़ में हम उनको कहाँ पा सकते हैं? ख़ुदा की क़सम! हम तो क़ियामत तक ईमान नहीं लाएँगे। उसकी एक बात भी नहीं मानेंगे।"

धिक्कार हो ऐसी ईर्ष्या और द्वेष पर!

वे जानते थे, मुहम्मद हक़ पर हैं। आप *(सल्ल.)* की बातें बिलकुल सत्य हैं। उन्हें यह भी यक़ीन था कि आप *(सल्ल.)* सचमुच अल्लाह के रसूल हैं। ख़ुदा की ओर से आप पर वह्य आती है। लेकिन दुश्मनी में वे अन्धे हो गए थे और ईर्ष्या की आग में जल रहे थे। उधर शैतान उनकी ख़ूब पीठ ठोंक रहा था।

वे चाहते थे कि जो कुछ मुहम्मद *(सल्ल.)* को मिला है, हमको भी मिल जाए। जो कुछ मुहम्मद *(सल्ल.)* पर उतरता है, हम पर भी उतरने लगे और नुबूवत के इस सौभाग्य में हम आले-मुत्तलिब से पीछे न रहें।

वलीद-बिन-मुग़ीरा तो खुल्लम-खुल्ला कहता—

"मेरे होते मुहम्मद पर वह्य आ सकती है? जब कि मैं क़ुरैश का सरदार हूँ। सबकी नज़रों में इज़्ज़त के लायक़ हूँ। क्या सक़ीफ़ का सरदार अबू-मसऊद भी इस लायक़ न था कि उसे नबी बनाया जाता?"

कितनी अजीब बात है......! ये लोग नुबूवत को ख़ुद ही अपने हाथ में लेना चाहते हैं जबकि अल्लाह ने रोज़ी तक तो अपने हाथ में रखी है!

क़ुरैश में एक बहुत बड़ा दुष्ट नज़्र-बिन-हारिस था। उसने क़सम

खाई कि हमेशा आप *(सल्ल.)* के मुक़ाबले में डटा रहेगा। लोगों को आपके विरुद्ध उकसाता रहेगा और कुछ भी नर्मी से काम न लेगा। यमन का एक नगर हीरा है। नज़्र वहाँ भी जा चुका था। वहाँ उसने फ़ारस के राजाओं के क़िस्से पढ़े थे। उनकी इबादतों का हाल सुना था। आलिमों, विद्वानों और ज्ञानियों के पास भी बैठ चुका था। वह साए की तरह आप *(सल्ल.)* के पीछे लगा रहता। जहाँ कहीं देखता कि आप लोगों को इस्लाम की ओर बुला रहे हैं, कुफ़्र के बुरे अंजाम से डरा रहे हैं, गुज़री हुई क़ौमों की शिक्षाप्रद घटनाएँ भी सुना रहे हैं और इस प्रकार लोगों के दिलों को नर्म करना चाहते हैं, तो झट यह भी वहीं पहुँच जाता। जब आप *(सल्ल.)* वहाँ से चले जाते तो लोगों से कहता—

"भाइयो! मैं तो इससे भी अच्छी बातें कर सकता हूँ। लो सुनो, मैं सुनाता हूँ।"

वह उन्हें ईरान की घटनाएँ सुनाता। वहाँ के राजाओं के क़िस्से सुनाता। वहाँ के दीन और धर्मों का ज़िक्र करता और न जाने कैसी-कैसी दिलचस्प और ख़याली कहानियाँ सुनाता। फिर कहता—

"मुहम्मद की बात मुझसे अच्छी कैसे हो सकती है? क्या मेरी ही तरह वह भी पिछलों की दास्तानें नहीं सुनाता?"

सारे लोग उलझन में पड़ जाते। कौन सत्य पर है? और कौन असत्य पर?! कौन हमारा भला चाहता है? और कौन बुरा? यह फ़ैसला करना मुश्किल हो जाता।

नज़्र की सरकशी पूरे ज़ोर पर थी। उसी ज़माने में उसके साथियों ने कहा, "अबू-मुऐत के बेटे उक़्बा को साथ ले लो और मदीना जाकर यहूदी आलिमों से मिलो। उनसे मुहम्मद की सारी बातें बयान करो और पूछो कि इस बारे में उनका क्या ख़याल है। वे लोग ईश्वरीय ग्रन्थ रखते हैं। नबियों का इल्म उनके पास है। वे सही बात बता सकते हैं।"

नज़्र और उक़्बा यहूदी आलिमों के पास गए और उन्हें अपने आने का मक़सद बताया। सारी बातें सुनकर यहूदियों ने कहा—

"पिछले ज़माने में कुछ जवान थे उनकी दास्तान बड़ी अजीब व ग़रीब है। तनिक मुहम्मद से पूछो, देखो, कुछ बताते हैं। एक और आदमी गुज़रा है। उसने धरती का चप्पा-चप्पा छान मारा। मुहम्मद से पूछो, उसके बारे में भी कुछ जानते हैं? यह भी पूछो कि यह क़ुरआन

लाते कहाँ से हैं? अगर ये तीनों बातें बता दें तो समझ लो कि वे सच्चे पैग़म्बर हैं, वरना झूठे, फिर जो मन में आए, करो।"

वे दोनों लौटकर मक्का आए। क़ुरैश इन्तिज़ार में तो थे ही। देखते ही पूछा, "कहो भाइयो! क्या रहा?"

यहूदियों से जो बातचीत हुई थी, सब उन दोनों ने दोहरा दी।

कुछ लोग मुहम्मद *(सल्ल.)* के पास आए। आप से ये सवाल किए। आपने कुछ मुहलत चाही और वह्य का इन्तिज़ार करने लगे।

अल्लाह ने आप *(सल्ल.)* को वह्य के द्वारा सारी बातें बता दीं। जवानों का क़िस्सा भी बताया जो सूरा कहफ़ में तफ़्सील से मौजूद है। सय्याह (भ्रमणकर्ता) के सम्बन्ध में भी बताया कि वे ज़ुल-क़रनैन थे। उनकी यह घटना है। उनका वर्णन भी सूरा कहफ़ में मौजूद है। तीसरे सवाल के बारे में फ़रमाया कि 'इन्हें बता दो, यह वह्य मेरे रब के हुक्म से आती है। मगर तुम लोग इनसानी बात और आसमानी बात में फ़र्क़ ही नहीं कर पाते और शक करते हो कि यह इनसानी बात है। कोई इनसान इसे गढ़ा करता है। वजह सिर्फ़ यह है कि तुम इल्म से महरूम और सूझ-बूझ से बहुत दूर हो।

> "और ये लोग तुमसे रूह (वह्य) के बारे में पूछते हैं। कह दो यह रूह मेरे रब के हुक्म से है, मगर तुम ज्ञान थोड़ा ही रखते हो।" (क़ुरआन, 17:85)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* मुशरिकों के पास आए। उनको उनके सवालों के जवाब दिए कि शायद वे ईमान ले आएँ। आपको नबी मान लें। परन्तु यहाँ तो दिल ही सख़्त हो चुके थे। वे तनिक भी नर्म न पड़े। बल्कि और हठधर्मी पर उतर आए। नज़्र बोला—

"भाइयो! रुको। मुहम्मद जैसी बातें मैं अभी तुम्हें सुनाता हूँ।"

एक अन्य व्यक्ति ने कहा, "इस क़ुरआन को सुनो ही मत। यह तो पागलों की सी बकवास है। जितना हो सके, इसका मज़ाक़ उड़ाओ। हो सकता है, इसी तरह मुहम्मद क़ाबू में आ जाए।"

अबू-जहल बोला, "क्या मुहम्मद की बातों से तुम डरते हो? वह कहता है, आग में जलाए जाओगे और अल्लाह के उन्नीस सिपाही हैं। वे निकल भागने नहीं देंगे। तो क्या यह भी कोई डरने की बात है? क्या हम में के सौ भी एक सिपाही के लिए काफ़ी नहीं होंगे?"

उफ़! खुदा की पनाह, यह ढिठाई और यह सरकशी! हालाँकि खुद उनका अपना यह अक़ीदा था कि एक ही फ़रिश्ता सारी दुनिया को तहस-नहस कर सकता है।

> "और हमने उस आग पर नियुक्त किए जानेवालों को फ़रिश्ते ही बनाया है, और हमने उनकी तादाद बस आज़माइश बना दी है, उन लोगों के लिए जिन्होंने कुफ़्र किया।"
>
> (क़ुरआन, 74 : 31)

काली घटाएँ

(1) हब्शा की हिजरत

(2) मुशरिकों की तिलमिलाहट

(3) मुशरिकों के नुमाइन्दे नज्जाशी के दरबार में

(4) दरबार में मुसलमानों की हाज़िरी

(5) हज़रत जाफ़र *(रज़ि.)* का प्रभावकारी भाषण

(6) नज्जाशी की प्रतिक्रिया

(7) एक शैतानी कानूफ़्रेंस

(8) उमर—रसूल *(सल्ल.)* की हत्या के इरादे से

(9) फ़ातिमा *(रज़ि.)* और सईद *(रज़ि.)* का जोशे-ईमान

(10) उमर *(रज़ि.)* रसूल *(सल्ल.)* की सेवा में

(11) मुसलमानों का पूर्ण बाइकाट

(12) उमर *(रज़ि.)* का ईमानी जोश और स्वाभिमान

(13) मुसलमानों का असाधारण सब्र और जमाव

(14) आले-मुत्तलिब का स्वाभिमान

(15) समझौता नामा फाड़ दिया

(16) अबू-तालिब मृत्यु-शैया पर

(17) चचा और भतीजे की अन्तिम बातचीत

(18) बीबी ख़दीजा *(रज़ि.)* भी चल बसीं

(1)

अल्लाह के लिए घरबार छोड़कर दूसरी जगह बस जाने का नाम हिजरत है। जब मक्का की धरती मुसलमानों के लिए तंग हो गई, वहाँ रहना उनके लिए दूभर हो गया तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सच्चे साथियों से कहा, "ख़ुदा की धरती विशाल है। अपने लिए कोई अन्य जगह तलाश करो। इस प्रकार हो सकता है कि इन ज़ालिमों से तुम्हें नजात मिल जाए और तुम आराम से रह सको।" साथियों ने कहा –

"अल्लाह के रसूल! आप ही बताएँ, हम कहाँ जाएँ?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कहा, "हब्शा चले जाओ। वहाँ का राजा इनसाफ़ पसन्द है। किसी पर ज़ुल्म नहीं होने देता। लोग बहुत सुख-चैन से रहते हैं।"

हब्शा अफ़्रीक़ा का एक मशहूर देश है। अब इसे इथोपिया (Ethiopia) कहते हैं। यह अरब से बहुत क़रीब है। दोनों के बीच केवल एक समुद्र पड़ता है। उस समुद्र का नाम लाल सागर है। वहाँ के बादशाह को नज्जाशी कहते थे। उस समय जो नज्जाशी था वह ईसाई धर्म का माननेवाला था। उसका नाम असहमा था।

रजब का महीना था। आप *(सल्ल.)* की नुबूवत का पाँचवाँ साल था। इशारा पाते ही बहुत-से मुसलमान हब्शा की ओर चल पड़े। दो-दो चार-चार करके सब ने अरब को छोड़ दिया। हब्शा पहुँचने पर नज्जाशी ने उनका स्वागत किया। अपने यहाँ बड़ी इज़्ज़त से बसाया और हर प्रकार के आराम का इन्तिज़ाम किया।

क़ुरैश को इसका पता चला तो बड़े बेचैन हुए। जैसे तन-बदन में आग लग गई हो!

ऐसा क्यों था? मुसलमानों ने उनका क्या बिगाड़ा था? बेचारों ने अपना घरबार ही तो छोड़ा था। उनके चले जाने से तो क़ुरैश को चैन मिल जाना चाहिए था!

बात यह थी कि क़ुरैश डरते थे। वे सोचते थे कि कहीं बाहर से उनको मदद मिल गई तो...... क्या होगा? तब तो हम उनके सामने बेबस हो जाएँगे और मैदान उनके लिए बिलकुल साफ़ हो जाएगा। फिर तो उनकी आवाज़ हर तरफ़ गूँज उठेगी। हर तरफ़ इस्लाम ही का बोलबाला होगा। और...... और बुतों को कहाँ पनाह मिलेगी?

तुरन्त उन्होंने हब्शा के राजा के पास दो आदमियों को अपना नुमाइन्दा बना कर भेजा। उसमें एक अबू-रबीआ का बेटा अब्दुल्लाह था और दूसरा आस का बेटा अम्र। इन लोगों के जाने का मक़सद यह था कि राजा के कान भरें और मुसलमानों को पकड़कर फिर अपने यहाँ ले आएँ। इसी लिए राजा को लुभाने के लिए वे अपने साथ क़ीमती तोहफ़े भी ले गए।

हब्शा पहुँचकर ये लोग सबसे पहले वहाँ के पादरियों से मिले। दोनों की स्कीम थी कि पहले उनही को राज़ी किया जाए। इस काम के लिए उन्हें भी कुछ तोहफ़े दिए।

इसके बाद दोनों राजा के दरबार में पहुँचे। बड़ी विनम्रता से तोहफ़े पेश किए, फिर बोले—

"ऐ बादशाह! हमारे यहाँ से कुछ मुजरिमों ने भागकर आपके यहाँ पनाह ली है। उन्होंने अपने क़ौमी दीन से बग़ावत की है। उन्होंने आपका दीन भी नहीं अपनाया। वे तो एक नया ही दीन लेकर उठे हैं। उसको न हम जानते हैं और न आप। घर-घरानेवाले उनसे तंग आ चुके हैं। उनको लेने के लिए ही हमें भेजा है। वे उनकी रग-रग से वाक़िफ़ हैं। उनके इरादों को अच्छी तरह समझते हैं।"

पादरियों ने तुरन्त उनकी हाँ में हाँ मिलाई। वे ज़ोरदार अन्दाज़ में बोले—

"महाराज! ये बिल्कुल सच कहते हैं। वास्तव में कुछ अपराधी यहाँ घुस आए हैं। उन्हें ज़रूर इनके हवाले कर दिया जाए।"

लेकिन नज्जाशी ने इनकार किया। उसने कहा, "जिन लोगों ने हमारे यहाँ पनाह ली है, हमारे पास रहना पसन्द किया है, मैं उनकी बातें भी सुनूँगा। वे जहाँ कहीं भी हों; हाज़िर किए जाएँ।" इसी से वे दोनों नुमाइन्दे सबसे ज़्यादा घबरा रहे थे।

मुसलमान हाज़िर किए गए तो राजा ने पूछा—

"सुना है तुम लोगों ने अपना क़ौमी दीन छोड़ दिया है। छोड़कर मेरा धर्म भी नहीं अपनाया है और जो अन्य धर्म हैं उनसे भी बेज़ार हो। मालूम हुआ है कि तुम कोई नया धर्म लेकर उठे हो। आख़िर वह कौन-सा दीन है? क्या क़िस्सा है?"

उन मुसलमानों में अबू-तालिब के बेटे हज़रत जाफ़र *(रज़ि.)* भी शामिल थे। वे सब की ओर से बोले—

"ऐ बादशाह! हम लोग अज्ञान और जहालत में पड़े थे। बुत पूजते थे। मुर्दार खाते थे। गन्दे काम करते थे। पड़ोसियों को सताते थे। आपस में झगड़ते रहते थे। ताक़तवर कमज़ोर को खा जाता था। ये हालात थे कि अल्लाह ने हममें एक रसूल भेजा। हम उसके वंश और ख़ानदान को अच्छी तरह जानते थे। उसकी सच्चाई और पाकबाज़ी को भी जानते थे। उसने हमें सत्य धर्म की ओर बुलाया। उसने कहा, 'हम केवल एक अल्लाह की इबादत करें। बेजान मूर्तियों को पूजना छोड़ दें। सच बोलें। ईमानदार बनें। रिश्ते-नातों को जोड़ें। पड़ोसियों को आराम पहुँचाएँ। ज़ुल्म और अत्याचार से रुक जाएँ। व्यभिचार और गन्दे काम छोड़ दें। यतीमों का माल न खाएँ। पाकदामन औरतों पर तोहमत न लगाएँ। नमाज़ पढ़ें। दान और ख़ैरात दें। हमने उस रसूल को सच्चा माना उसपर ईमान ले आए। अल्लाह की ओर से उसने जो कुछ बताया हमने दिल-जान से अपना लिया। हमारा यही वह जुर्म है, जिसपर हमारी क़ौम नाराज़ हो गई। हमको बेदर्दी से सताने लगी ताकि हम इस दीन से तौबा कर लें और फिर से ग़लत रास्तों में भटकते रहें। जब हम उनसे बिलकुल तंग आ गए, हमारे लिए साँस लेना मुश्किल हो गया तो हमने आपके देश में पनाह ली कि शायद यहाँ चैन मिल जाए। ज़ुल्म और अत्याचारों के बादल सिर से टल जाएँ।"

जाफ़र *(रज़ि.)* की बात सुनकर नज्जाशी बोला—

"उसपर जो कलाम उतरा है, मैं भी सुनना चाहता हूँ, तुम्हारे पास कुछ हो तो सुनाओ।"

हज़रत जाफ़र *(रज़ि.)* ने सूरा मरियम की कुछ आयतें सुनाईं। आयतों से नज्जाशी पर इतना असर हुआ और उसका दिल इतना पिघला कि आँखों से आँसू फूट पड़े। वह इतना रोया कि दाढ़ी भीग गई। जितने पादरी वहाँ मौजूद थे उन सबके दिल भी पिघल गए। और आँखें सजल होकर रह गईं। आयतें सुनने के बाद नज्जाशी बोला—

"ख़ुदा की क़सम! ये आयतें और ईसा का कलाम दोनों एक ही उद्गम के स्रोत हैं। एक ही प्रदीप के प्रकाश हैं।"

फिर उसने क़ुरैश के प्रतिनिधियों से कहा—

"वापस जाओ। ख़ुदा की क़सम अब ये लोग तुम्हारे साथ नहीं जाएँगे।"

उसको मुसलमानों से ख़ास हमदर्दी हो गई। इसलिए इनको ज़ालिम दुश्मनों के हवाले करना गवारा न किया। क़ीमती तोहफ़ों को नफ़रत से ठुकरा दिया और नुमाइन्दों की एक बात भी सुनने को तैयार न हुआ। क़ुरैश के दोनों नुमाइन्दे अपना-सा मुँह लिए वापस हो गए और मुसलमान हब्शा में आराम और इत्मीनान से रहने लगे।

(2)

'मुसलमानों के ज़ोर पकड़ने की राहें खुल गईं।' यह सोचकर मुशरिक बेचैन हो उठते।

एक दिन वे सब जमा हुए। आपस में एक कान्फ़्रेंस की। वलीद-बिन-मुग़ीरा उसका अध्यक्ष बना। यह बहुत ही बूढ़ा था। पूरी क़ौम उसे दिल से चाहती थी। कान्फ़्रेंस में मुहम्मद *(सल्ल.)* के बारे में बात होने लगी। वलीद ने कहा :

"हज के दिन क़रीब आ गए हैं। अब बाहर से भी लोग आएँगे। मुहम्मद की तो चर्चा है ही। उसके बारे में ज़रूर खोज करेंगे। आपस में

एक बात तय कर लो और सब मिलकर वही कहो। देखो, एक-दूसरे की उलट बात मत कहना, वरना लोग समझ जाएँगे कि तुम झूठे हो। फिर सारा खेल बिगड़ जाएगा।"

क़ुरैश : "ऐ वलीद! फिर हमें आप ही कोई एक बात बता दीजिए। हम सब वही कहेंगे।"

वलीद : "नहीं, पहले तुम बताओ। तुम लोगों का क्या ख़याल है?"

क़ुरैश : "हम कहेंगे मुहम्मद तांत्रिक है।"

वलीद : "नहीं ख़ुदा की क़सम वह तांत्रिक नहीं है। हमने बहुतेरे तांत्रिक देखे हैं। तांत्रिकों के गीत और उनकी वाणियाँ कुछ दूसरे ही रंग की होती हैं।"

क़ुरैश : "तो हम कहेंगे कि वह दीवाना है।"

वलीद : "नहीं, वह दीवाना नहीं है। हमने दीवानगी को ख़ूब देखा और पहचाना है। इसकी तो उसके अन्दर एक निशानी भी नहीं। दीवानों की सी कोई बात नहीं।"

क़ुरैश : "तो हम कहेंगे कि वह शाइर है।"

वलीद : "वह शाइर भी नहीं है। हमने शाइरी के मैदानों की बड़ी सैर की है। उसकी सारी बहरों और छन्दों से अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। उसकी बातें शाइरी नहीं हो सकतीं।"

क़ुरैश : "तो हम कहेंगे कि वह जादूगर है।"

वलीद : "वह जादूगर भी नहीं है। हमने बहुत से जादूगर देखे हैं। जादू के बीसियों करतब देखें हैं। यह जादूगरों का टोना, मन्त्र मालूम नहीं होता।"

क़ुरैश : (बड़े ताज्जुब के साथ) "फिर! हम क्या कहेंगे, ऐ वलीद!"

वलीद : "ख़ुदा की क़सम, उसकी वाणी बड़ी मीठी है। मानो वह एक पेड़ है जिसकी जड़ें बहुत गहरी और मज़बूत हैं। उसकी शाख़ाएँ अत्यन्त मीठे और मज़ेदार फलों से लदी हैं। हमने जहाँ इनमें से कोई बात कही, सारी पोल खुल जाएगी। जो सुनेगा, समझ जाएगा कि यह प्रोपेगण्डा है। सबसे लगती हुई बात यही मालूम होगी कि वह जादूगर

है। जादू और असर रखनेवाली वाणी लेकर आया है। इससे वह बाप-बेटे में, भाई-बहन में, मियाँ-बीवी में और ख़ानदान-ख़ानदान में फूट डाल रहा है।''

यह राय सुनकर सब बहुत खुश हुए। सभा समाप्त हो गई। तय हो गया कि हाजियों के क़ाफ़िले आएँगे तो सब यही प्रोपेगण्डा करेंगे।

हज का समय आ गया। हाजियों के क़ाफ़िले भी आ गए। अब वे हर समय ताक में लगे रहते। जहाँ मौक़ा पाते, उनके कान भरते। जिसको देखो, मुख पर यही शब्द थे—

''मुहम्मद जादूगर है। उसकी बात में जादू है।''

हज के बाद क़ाफ़िले लौटकर अपने यहाँ गए। सबको आप *(सल्ल.)* की ख़बर दी। इस तरह पूरे अरब में आप *(सल्ल.)* की चर्चा हो गई। बहुतों को सच्चाई जानने का भी शौक़ हुआ और वे इसी धुन में घरों से निकल पड़े।

आसमान का थूका मुँह पर आता है। मुशरिकों ने आप *(सल्ल.)* के ख़िलाफ़ साज़िश की। वह साज़िश ख़ुद उनके ख़िलाफ़ पड़ी। उन्होंने इस्लाम को मिटाने की कोशिश की। इससे इस्लाम की और तरक़्क़ी हुई।

सारे अरब में आप *(सल्ल.)* मशहूर हो गए। इसके असरात बहुत दूर तक पहुँचे। मुशरिक इसी बात से सबसे अधिक डरते थे। कहते तो वे यह थे कि हमें बाप-दादा का धर्म प्रिय है और हम जान लड़ाकर उसकी हिफ़ाज़त करेंगे। किन्तु असल बात कुछ और ही थी और वह यह थी कि धर्म से ज़्यादा उनको दुनिया की फ़िक्र थी।

अरब लोग बिलकुल आज़ाद ज़िन्दगी गुज़ारते थे। वहाँ न कोई उसूल था न क़ानून। जो मन में आता था, करते थे। हर ओर बेशर्मी और अश्लीलता का चलन था। शराब और जुए का बाज़ार गर्म था। लोग अंजाम से बेपरवाह होकर रंग-रलियों में मग्न थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* का सन्देश इन बुराइयों के ख़िलाफ़ एक ज़बरदस्त आवाज़ थी। फिर यही नहीं, मक्का बुतों का गढ़ था। लोग दूर-दूर से ज़ियारत को आते थे। क़ुरैश ही इन बुतख़ानों और मठों के महन्त थे। उनको भी भेंट और

चढ़ावे मिलते थे और तरह-तरह की चालों से वे अच्छी तरह लोगों को लूटते भी थे। इस्लाम का फैलना इस कारोबार के लिए हक़ीक़त में एक बड़ा ख़तरा था। भला अब वे ख़ामोश कैसे बैठ सकते थे।

"नहीं......अब हम चुप नहीं रह सकते। आज से बर्दाश्त नहीं कर सकते। अब हमदर्दी का कोई सवाल नहीं। चाहे मुहम्मद हो या उसके साथी!"

कुछ मुसलमान ऐसे भी थे जो मुशरिकों के ग़ुलाम थे। ये ज़ालिम उन्हें बहुत ही बेदर्दी से सताते थे। उनका मक़सद था कि किसी प्रकार ये इस्लाम से फिर जाएँ। मुसलमानों से ये ज़ुल्म और ज़्यादतियाँ देखी न जातीं। वे बे-इख़्तियार तड़प-तड़प उठते। उनमें जो मालदार होते वे इन ग़ुलाम मुसलमानों को ख़रीद-ख़रीद कर आज़ाद कर देते।

मुशरिकों ने देखा कि इस तरह तो मुसलमानों की ताक़त और बढ़ रही है। अब उन्होंने ग़ुलामों को बेचना भी बन्द कर दिया। सोचा कि ख़ूब नाक में दम करें। ये ख़ुद ही सारी मस्ती भूल जाएँगे।

जो मुसलमान प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ थे और हब्शा नहीं जा सके थे, उनको ये दुष्ट पहले से ज़्यादा सताने लगे।

वही क्या? ख़ुद आप *(सल्ल.)* को भी और अधिक सताने लगे। हालाँकि अबू-तालिब खुलकर आप *(सल्ल.)* के साथ थे और आपके ख़ानदानवाले भी आपके मददगार थे।

(3)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने एक बार दुआ की थी कि "ऐ रब! ख़त्ताब के बेटे उमर को या हिशाम के बेटे अम्र को हिदायत दे। उसके दिल में इस्लाम की मुहब्बत डाल दे।" आप *(सल्ल.)* का विचार था कि इस तरह इस्लाम को बड़ी ताक़त मिलेगी।

उमर की उठती हुई जवानी थी। वे इरादे के पक्के और हौसले वाले इनसान थे। बड़े ताक़तवर थे। न किसी से डरते थे, न दबते थे। जिस काम को करने का इरादा कर लेते उसे करके ही दम लेते। यही वजह है कि वे इस्लाम की दुश्मनी में भी आगे-आगे थे और मुसलमानों के लिए

बड़े ही पत्थर दिल और बेरहम थे। कोई दासी इस्लाम क़बूल कर लेती और उनके हाथ लग जाती तो उसे बहुत मारते। मारते-मारते जब तक थक न जाते, हाथ न रोकते। जब थक कर चूर हो जाते तो कहते—

"मैंने तो थक कर छोड़ दिया है। ज़रा दम ले लूँ, फिर तेरी ख़बर लूँगा।"

एक ओर तो वे इतने ज़्यादा बेरहम और ज़ालिम थे, लेकिन साथ ही वे अपने सीने में दर्दमन्द दिल भी रखते थे। वे रिश्तेदारों के बड़े हमदर्द थे। घरवालों के लिए सरापा रहम थे। उनको जब पता चला कि बहुत से मुसलमान हिजरत करके हब्शा चले गए हैं तो उनके दिल को बड़ा धक्का लगा और जब यह सुना कि नज्जाशी ने मुसलमानों को पनाह दे दी है और मक्का से गए हुए दोनों नुमाइन्दे नाकाम लौट आए हैं तो वे सिर पीटकर रह गए। आँखों में ख़ून उतर आया और कनपटी की नसें ग़ुस्से से फूल गईं। "मुहम्मद ही विष की गाँठ है। उसी ने क़ुरैश में फूट डाली है। उसी ने ख़ानदानों में आपस में दूरी पैदा की है और उसी ने अपनों को आपस में टकराया है। हाँ, तो अब मैं उसकी गर्दन उड़ा कर ही दम लूँगा।"

वे तलवार उठा कर घर से निकल पड़े कि आज प्यारे नबी *(सल्ल.)* का काम तमाम कर दें और आए दिन की चिन्ता और बेचैनी से सब मुक्ति पा जाएँ।

वे तेज़ी से आ रहे थे कि रास्ते में बनी-अदी के एक आदमी से मुलाक़ात हो गई, उनका नाम नुऐम-बिन-अब्दुल्लाह था। वे पहले ही मुसलमान हो चुके थे, परन्तु किसी को पता न था। ज़ुल्म और सितम का ख़ौफ़नाक दृश्य वे अपनी आँखों से देख रहे थे, इसलिए खुलकर सामने नहीं आए थे। उन्होंने देखा कि उमर बहुत जोश में है। कमर से तलवार भी लटकी है। पूछा—

"ख़त्ताब के बेटे! किधर चल दिए?"

उमर : "उसी अधर्मी के पास, जो देवताओं का निरादर कर रहा है। जो सारी सामाजिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त कर रहा है।"

नुऐम *(रज़ि.)* उमर का ग़ुस्सा जानते थे। सोचा, कहीं सचमुच

आप*(सल्ल.)* की जान ख़तरे में न पड़ जाए। किसी तरह उमर का रुख़ बदला जाए। तुरन्त एक बात उनके मन में आई, बोले—

"उमर! किस धोखे में हो? क्या मुहम्मद की हत्या के बाद अब्दे-मनाफ़ तुम्हें जीता छोड़ देंगे? और पहले ज़रा अपने घर की तो ख़बर लो!"

उमर : "क्या कहा......मेरे घर में कौन?!"

नुऐम : "तुम्हारी बहिन और बहनोई मुसलमान हो गए हैं। मुहम्मद का दीन क़ुबूल कर लिया है। पहले उनसे तो निबट लो।"

उमर हक्का-बक्का रह गए। जैसे तन-बदन में आग लग गई हो। बहिन और बहनोई इस्लाम क़बूल कर चुके थे। उसी के लिए जीने-मरने का फ़ैसला कर चुके थे, मगर उमर को पता न् था, क्योंकि उन्होंने अब तक छिपाया था। उमर तुरन्त बहिन की ओर पलटे। उनका सीना सुलग रहा था और ग़ुस्से से नसें फूल आई थीं।

बहिन के घर पहुँचे तो भीतर से किसी के कुछ पढ़ने की आवाज़ आ रही थी। वे ज़ोर-ज़ोर से दरवाज़ा पीटने लगे। घर के सब लोग घबरा गए। उन्होंने पूछा : "कौन?"

जवाब मिला : "मैं हूँ उमर!"

'उमर' सुनना था कि लोग चौंक गए। डर से निढाल हो गए और इधर-उधर छिपने लगे।

उमर की बहिन का नाम फ़ातिमा *(रज़ि.)* था और बहनोई का सईद*(रज़ि.)*। ये दोनों ख़ब्बाब *(रज़ि.)* से क़ुरआन पढ़ते थे। ख़ब्बाब को ख़ुद नबी*(सल्ल.)* ने इस काम पर लगाया था। जो आयतें उतरतीं, ये पढ़कर सुना दिया करते और वे दोनों याद कर लेते। उस समय ख़ब्बाब *(रज़ि.)* सूरा ताहा पढ़ रहे थे। उमर की आवाज़ सुनते ही अन्दर छिप गए। जिन पन्नों से वे पढ़ रहे थे, फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने उन्हें भी छिपा दिया। सईद*(रज़ि.)* हिम्मत करके आगे बढ़े और जाकर दरवाज़ा खोला।

उमर एक भयंकर शेर की तरह अन्दर आए और भयानक आँखों से चारों तरफ़ देखने लगे कि अभी जो आवाज़ कानों में पड़ी, वह कहाँ से

आई। लेकिन बहिन और बहनोई के सिवा सामने कोई न था। कड़क कर पूछा—

"अभी पढ़ने की आवाज़ कहाँ से आ रही थी? वह कैसी आवाज़ थी और किसकी आवाज़ थी?!"

भय से तो बुरा हाल था। सच-सच बताने की हिम्मत न हुई। झट बोले : "यहाँ तो कुछ भी नहीं!......कोई भी नहीं!"

उमर फिर गरजे : "छिपाओ नहीं। क्या समझते हो, तुम्हारे इस्लाम से मैं बेख़बर हूँ?"

यह कह कर वे बहनोई की ओर बढ़े। बुरी तरह उन्हें पीटने लगे। फ़ातिमा *(रज़ि.)* से यह देखा न गया। बढ़कर शौहर को बचाने लगीं तो उमर ने बहिन को भी मारना शुरू कर दिया और इतना मारा कि सिर फट गया। आग को जितना ही पीटो, उतना ही भड़कती है। उमर की मार से इस्लाम के प्रति आस्था और जोश की आग और भड़क उठी। फ़ातिमा और उनके शौहर बुलन्द आवाज़ में बोले—

"हाँ, हमने इस्लाम अपना लिया है। इस्लाम पर जीने और मरने का फ़ैसला कर लिया है। अब दुनिया की कोई ताक़त हमें इस्लाम से हटा नहीं सकती। हाँ, अब हम मुस्लिम हैं। इस्लाम की मिठास हमें मिल चुकी है। उसके लिए हम सब कुछ झेलने के लिए तैयार हैं। तुम्हारा जो जी चाहे कर लो!"

यह आवाज़ पक्के-इरादे और दर्द में डूबी हुई आवाज़...... दिल की गहराइयों से निकली हुई आवाज़ सीधी उमर के दिल से टकराई। उमर को इस आवाज़ ने हिला कर रख दिया। बेरहम हाथ चलते-चलते रुक गए। बहिन के सिर से ख़ून के फ़व्वारे अब भी जारी थे। उमर का दिल यह दर्दनाक दृश्य देखकर पसीज गया। उसे अपने किए पर शर्म भी महसूस हुई। अचानक नज़र उन पन्नों पर पड़ी, जिन्हें ख़ब्बाब *(रज़ि.)* पढ़ रहे थे।

"क्या यही तुम दोनों पढ़ रहे थे? ज़रा देना, मैं भी देखूँ।" उमर की आवाज़ में अब बड़ी नर्मी आ चुकी थी।

बहिन : "मुझे डर है कि अगर ये तुम्हारे हाथ लग गए तो फिर

वापस नहीं मिलेंगे।

उमर ने यक़ीन दिलाया, क़सम खाकर कहा कि मैं वापस ज़रूर कर दूँगा। फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने वे पन्ने उमर को दे दिए। बहिन के मन में यह तमन्ना उभर रही थी कि काश! इस्लाम की दौलत उमर को भी मिल जाए।

उमर ने पन्ने हाथ में लिए और ग़ौर से पढ़ने लगे। पढ़ते ही अधर्मियों के बुरे अंजाम से दिल काँप उठा। दिल की दुनिया बदल गई और वे पुकार उठे–

"कितने अच्छे और पवित्र बोल हैं ये!"

ख़ब्बाब निकट ही छिपे हुए सारा माजरा देख रहे थे। अब वे सामने आए, और बड़ी खुशी और इत्मीनान के साथ बोले–

"उमर! अल्लाह के रसूल ने दुआ की थी कि 'ऐ रब! हिशाम के बेटे अबुल-हकम या ख़त्ताब के बेटे उमर से इस्लाम की मदद कर।' उमर! खुदा की क़सम अल्लाह ने तुम्हारे हक़ में यह दुआ सुन ली है। उमर! अब रब से जुड़ जाओ और अब उसके दर को न छोड़ो।"

उमर : "अच्छा ख़ब्बाब! बताओ, मुहम्मद *(सल्ल.)* कहाँ हैं? मैं जाता हूँ। मैंने भी अब मुसलमान होने का फ़ैसला कर लिया। मुझे रौशनी मिल गई। सत्य मुझपर प्रकट हो गया। वास्तव में अब तक मैं बड़ी भूल में था। अब मुझे पूरा यक़ीन हो गया कि मुहम्मद वास्तव में नबी हैं। वे जो वाणी पेश कर रहे हैं, वह सचमुच ईश्वर की वाणी है।

उमर के मुख से यह बात सुनकर ख़ब्बाब *(रज़ि.)* का दिल खुशी से खिल उठा और फ़ौरन आप *(सल्ल.)* का पता बताया कि आप सफ़ा पहाड़ी के निकट अरक़म के घर में हैं।

फ़ातिमा *(रज़ि.)* की ज़िन्दगी का यह कितना आनन्दमय क्षण था और सईद *(रज़ि.)* की खुशी का भी कोई ठिकाना न था। फ़ातिमा (रज़ि.) का भाई और सईद *(रज़ि.)* का प्रिय नातेदार इस्लाम की गोद में था!

उमर आए तो मुशरिक थे, मुहम्मद *(सल्ल.)* के लहू के प्यासे थे और जा रहे थे रब के......केवल रब के बन्दे बनकर और मुहम्मद *(सल्ल.)* पर

जान निछावर करनेवाले बनकर। उमर दौड़े जा रहे थे कि आप *(सल्ल.)* को अपना रहनुमा बना लें और ख़ुद को आपके हवाले कर दें!

उमर अरक़म के घर पहुँचे तो दरवाज़ा बन्द था। उन्होंने कुण्डी खटखटाई। अन्दर से बिलाल *(रज़ि.)* की आवाज़ आई—

"कौन?"

जवाब मिला : "ख़त्ताब का बेटा।"

उस समय अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* अपने कुछ साथियों के साथ थे। हमज़ा, अबू-बक्र, बिलाल और अली (अल्लाह इन सबसे ख़ुश हो) सभी मौजूद थे। बिलाल *(रज़ि.)* ने आकर आप *(सल्ल.)* से कहा—

"अल्लाह के रसूल! दरवाज़े पर ख़त्ताब का बेटा उमर है। दरवाज़ा अगर खोल दिया तो डर है कहीं वह परेशान न करे।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया : आने दो। अगर नीयत ठीक है तो क्या कहना!"

हमज़ा *(रज़ि.)* ने कहाः "और अगर बुरी हुई तो उसको मारना मेरे बाएँ हाथ का खेल है। बिलाल *(रज़ि.)* दरवाज़ा खोलने के लिए गए। हमज़ा *(रज़ि.)* भी साथ हो लिए कि उमर ने अगर हमला किया तो बिलाल *(रज़ि.)* की मदद कर सकें।"

दरवाज़ा खुलते ही उमर अन्दर आ गए। हमज़ा और बिलाल *(रज़ि.)* झपटे और उन्हें बाहों में जकड़ लिया।

उमर पर नज़र पड़ी तो रसूल *(सल्ल.)* ने यह दुआ की—

"ऐ रब! उमर के दिल में जो खोट हो, दूर कर दे। इसके सीने में ईमान की ज्योति जला दे।"

"हमज़ा! उमर का हाथ छोड़ दो। बिलाल! तुम भी छोड़ दो।"

हमज़ा और बिलाल *(रज़ि.)* अलग हो गए। उमर आगे बढ़े और आप *(सल्ल.)* के पास खड़े हो गए। आप ने उनसे कहा—

"उमर! क्या जब तक कोई दर्दनाक अज़ाब न आ ले अपना रवैया नहीं बदलोगे? कहो, क्या सोच रहे हो?"

उमर ने विनम्रतापूर्वक जवाब दिया—

"ईमान क़बूल करने आया हूँ। अब मैं मुसलमान हूँ। आपका सेवक हूँ। ख़ुदा का बन्दा हूँ। सत्य का बोलबाला हो, यही अपनी ख़ाहिश है।"

यह कहना था कि मुसलमान ख़ुशी से झूम उठे। अल्लाहु-अकबर के नारों से घर की दीवारें हिल गईं और मक्का की पहाड़ियाँ गूँज उठीं। थोड़ी देर के लिए अजीब समाँ बंध गया। पूरे माहौल पर एक रौब और तेज छा गया।

अल्लाहु-अक्बर ......! अल्लाहु-अक्बर ......! अल्लाहु-अक्बर ......!

ये बोल जो ख़ुद-ब-ख़ुद लोगों के मुख से निकले, इस बात का प्रतीक थे कि वे आज कितने ख़ुश हैं! उनके मन को कितनी शान्ति है और दिल कितने आनन्दित हैं! वे इतने आनन्द-विभोर होते भी क्यों न, जबकि आज उमर *(रज़ि.)* मुसलमान थे! आज उमर *(रज़ि.)* उनके साथ थे। उमर *(रज़ि.)* इस्लाम में आ गए। इसपर प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने ख़ुदा का शुक्र अदा किया और उमर *(रज़ि.)* के सीने पर अपना मुबारक हाथ फेरते हुए दुआ की—

"ऐ रब! उमर को हिदायत दे! ऐ रब उमर के क़दमों को जमाए रख।"

उमर *(रज़ि.)* भी अब मुसलमानों में बैठ गए और बातें करने लगे। उन्होंने कहा—

"अल्लाह के रसूल! क्या हम सत्य पर नहीं हैं, चाहे मरें; चाहे जीएँ?"

आप *(सल्ल.)* ने जवाब दिया : "क्यों नहीं, क़सम है उस ज़ात की जिसके हाथ में मेरी जान है, तुम सत्य पर हो, मरने और जीने से क्या होता है?"

उमर बोले : "फिर छिपना कैसा? ऐ अल्लाह के रसूल!"

आप *(सल्ल.)* ने कहा : "हम थोड़े हैं, दुश्मन बहुत हैं।"

उमर बोले : "ख़ुदा की इबादत और छिपकर की जाए, ख़ुदा की क़सम, यह न होगा। उस ज़ात की क़सम जिसने आपको सत्य देकर

भेजा है, जिन लोगों के बीच अब तक मैंने अधर्म का बोल-बाला किया है, अब वहाँ इस्लाम के नारे लगाऊँगा।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने साथियों को दो टुकड़ियों में बाँट दिया। एक के अमीर उमर *(रज़ि.)* थे और दूसरी के हमज़ा *(रज़ि.)*। बहादुर जवानों की दोनों पक्तियाँ काबा की ओर बढ़ीं। वहाँ पहुँच कर नमाज़ पढ़ी। फिर नारा लगाया कि जिससे मक्का की पहाड़ियाँ दहल गईं।

ला इला-ह इल्लल्लाह मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह। (अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं। मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।)

आज इस्लाम का सूरज ख़ास ढंग से उदय हुआ था, आज पहली बार इस्लाम अपनी पूरी शान के साथ सामने आया था।

आज क़ुरैश को जितना दुःख हुआ और कभी न हुआ था।

मुसलमानों को जितनी ख़ुशी थी, उससे कहीं ज़्यादा ख़ुशी हज़रत उमर *(रज़ि.)* को थी कि आज वे दुनिया की सबसे बड़ी दौलत से मालामाल थे।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने घूम-घूमकर उसी रात अपने इस्लाम का एलान किया और लोगों को भी इस्लाम की दावत दी। जो वीरता और निर्भीकता इस्लाम से रोकने में लग रही थी, आज वही वीरता और निर्भीकता उसके प्रचार में ज़ाहिर हो रही थी।

अबू-जहल उनका मामा था। वे उसके यहाँ भी गए। हाँ, वही अबू-जहल जो इस्लाम के नाम ही से जलता था जो आप *(सल्ल.)* के लिए सदा आग-बगूला रहता। उमर *(रज़ि.)* ने घर की कुण्डी खटखटाई तो वह बाहर आया। बहुत ही मुहब्बत से मिला। बोला—

"कहो कैसे आए?"

"बस यह बताने आया हूँ कि मैं अल्लाह पर ईमान ले आया हूँ। मैंने मुहम्मद *(सल्ल.)* को नबी मान लिया है और उनकी बातों को क़ुबूल कर लिया है।" उमर (रज़ि.) ने आँखों में आँखें डालकर अपने ईमान का एलान कर दिया।

अबू-जहल के दिमाग़ पर जैसे बिजली गिर गई। उसने ज़ोर से

दरवाज़ा पीटा और कड़क कर बोला :

"ख़ुदा तेरा नास करे। तेरे धर्म की भी अर्थी निकले। तू इस समय कैसी मनहूस ख़बर लेकर आया है!"

क़ुरैश उमर *(रज़ि.)* को सताने और तंग करने लगे। वे उमर *(रज़ि.)* पर पिल पड़े। उमर *(रज़ि.)* ने भी तलवार से मुक़ाबला किया। अधर्मियों के बीच होते हुए भी डर का नाम न था। बार-बार शेर की तरह गरजते और बेख़ौफ़ कहते—

"सुन लो, मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं और मुहम्मद अल्लाह के सच्चे रसूल हैं। कोई भी हिला तो गर्दन उड़ा दूँगा।"

उसी समय प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनको 'फ़ारूक़' की उपाधि दी कि अल्लाह ने उनके द्वारा सत्य और असत्य को छाँटकर एक-दूसरे से अलग कर दिया।

यह नुबूवत का छटा साल था। हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* को मुसलमान हुए केवल तीन ही दिन हुए थे कि हज़रत उमर *(रज़ि.)* भी इस्लाम में दाख़िल हो गए।

(4)

अब दिन-प्रतिदिन मुसलमानों का ज़ोर बढ़ रहा था। लोग धीरे-धीरे इस्लाम की ओर खिंच रहे थे। तो क्या क़ुरैश हाथ-पाँव मारकर बेफ़िक्र होकर बैठे रहे? नहीं, वे बराबर इस धुन में रहे कि किसी तरह मुसलमानों में फूट डाल दें, मुसलमानों को प्यारे नबी *(सल्ल.)* से बदगुमान कर दें।

इसी मक़सद से वे एक दिन सिर जोड़कर बैठे और विचार करने लगे कि क्या इलाज किया जाए, जिससे मुहम्मद के अनुयायियों का बादल छंट जाए। उसपर जान निछावर करनेवाले धूल की तरह उड़ जाएँ और वह बेबस होकर रह जाए। बहुत देर हो गई, वे सोचते रहे। विचार करते रहे। अन्त में वे इस नतीजे पर पहुँचे कि मुहम्मद का बाइकाट किया जाए, पूरा बाइकाट। आप *(सल्ल.)* से और आपके साथियों से

किसी प्रकार का कोई सम्बन्ध न रखा जाए। न कोई उनसे शादी-विवाह करे, न कुछ बेचे-ख़रीदे, न कोई खाने-पीने का सामान दे और न किसी तरह का लेन-देन करे।

इस राय पर सबने अपनी सहमति प्रकट कर दी। और अधिक इत्मीनान के लिए एक लिखित समझौता भी तैयार हुआ जिसमें इन ही बुरे इरादों का उल्लेख था। यह लिखित समझौता काबा में लटका दिया गया ताकि हर एक उसका आदर करे और किसी को उसके हाथ लगाने या उसका विरोध करने की हिम्मत न हो।

इसके बाद क़ुरैश के कुछ सरदार मुत्तलिब ख़ानदान के पास गए और उन्हें धमकी दी—

"अब केवल दो सूरतें हैं! या तो तुम मुहम्मद को हमारे हवाले कर दो कि हम उसे क़त्ल कर दें। इस प्रकार तुमको भी आराम मिल जाएगा और हम भी चैन से रह सकेंगे। फिर साथ ही हम तुमको बहुत-सा धन भी देंगे जो मुहम्मद के ख़ून का बदला होगा। अगर इस बात पर तैयार हो जाओ तो फिर क्या कहना, वरना दूसरी सूरत यह है कि हम तुम सबका पूरे तौर से बाइकाट कर देंगे। न तुमसे कभी कुछ बेचेंगे-ख़रीदेंगे न और कोई लेन-देन करेंगे। नतीजा क्या होगा? ख़ूब सोच लो। तड़प-तड़प कर मर जाओगे। अब बोलो तुम्हारा क्या विचार है?"

मुत्तलिब के ख़ानदान के लोग यह सोच भी न सकते थे कि आप *(सल्ल.)* को बेरहम हाथों में दे दिया जाए ताकि आप *(सल्ल.)* के बैरी अपने दिल के अरमान पूरे करें। आप उनकी आँखों की रौशनी और दिल का सुकून थे। आप *(सल्ल.)* उनको अपनी जान से भी प्रिय थे। उन्होंने क़ुरैश की धमकियों की तनिक भी परवाह न की और साफ़-साफ़ कह दिया कि "हम हर बात सह सकते हैं, पर मुहम्मद को नहीं छोड़ सकते।"

मुशरिकों ने कहा, "तो ठीक है। आज से हम तुम्हारे दुश्मन हैं और तुम हमारे दुश्मन और अब हम तुम्हारा घेराव करेंगे।"

क़ुरैश ने उनका घेराव कर लिया और भूखे मारने की अपनी योजना में लग गए। हाशिम के ख़ानदानवाले मुत्तलिब के कुटुम्ब के रिश्तेदार

होते थे, इसलिए वे भी उनके साथ थे। केवल अबू-लहब ने बेवफ़ाई की। उसने अपने ख़ानदान का विरोध किया और क़ुरैश का साथ दिया, क्योंकि वह अपने ख़ानदान से बेज़ार था। उनको मुसीबतों में देखकर उसे बेहद ख़ुशी होती थी। बाइकाट की सलाह भी सबसे पहले उसी ने दी थी और लोगों को इस बात पर उभारा था कि वे इन लोगों से लेन-देन न करें।

मुहर्रम का महीना था, नुबूवत का सातवाँ साल था। अबू-तालिब पूरे कुटुम्ब के साथ एक घाटी में नज़रबन्द हो गए। यही घाटी 'शेबे-अबी-तालिब' के नाम से मशहूर हुई। ये लोग दिन रात यहीं पड़े रहते। न किसी से कुछ सम्बन्ध, न कोई लेन-देन। एक तरह की जेल थी जिसमें वे हर समय बन्द रहते। केवल प्रतिष्ठित महीनों (रजब, ज़ीक़ादा, ज़िलहिज्जा और मुहर्रम) में बाहर आते, जबकि अरब की सभी लड़ाई-झगड़े रुक जाते। हर तरह के ख़तरे ख़त्म हो जाते। हर आदमी बिलकुल आज़ाद और बेफ़िक्र होता।

इन्ही महीनों में प्यारे नबी *(सल्ल.)* भी बाहर आते और इस्लाम के प्रचार में लग जाते।

हाजी लोग इन्ही दिनों में मक्का आते। व्यापारी लोग मक्का के निकट ही बाज़ार लगाते और कारोबार के सामान सजाते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* उनके पास जाते। उनको इस्लाम की ओर बुलाते। बड़े ही दर्द और प्रेम से कहते—

"मेरे प्यारे भाइयो! अल्लाह का दीन अपना लो। वह बहुत ख़ुश होगा। तुम पर दया करेगा और तुम्हें अच्छा बदला देगा। लेकिन अगर तुम कुफ़्र और शिर्क से चिमटे रहे और इस दीन को ठुकरा दिया तो वह नाराज़ होगा और बहुत सख़्त सज़ा देगा।"

जो लोग हब्शा में थे, उनको पता चला कि उमर मुसलमान हो गए हैं। अब हर तरह इस्लाम के क़दम जम गए हैं और अब वह निस्सहाय और बेबस नहीं रहा है। मुसलमान अब बेझिझक क़ुरैश को इस्लाम की दावत दे रहे हैं। उनकी गुमराही पर होशियार कर रहे हैं। मक्का का कोना-कोना अब इस्लाम के प्रकाश से जगमगा उठा है। न केवल मक्का

बल्कि मक्का के बाहर भी इस्लाम का डंका बज रहा है। यह सुनकर वे ख़ुशी से खिल उठे और वतन के लिए इतने बेचैन हुए कि हबशा को छोड़कर फिर मक्का की ओर चल पड़े।

मक्का के निकट पहुँचे तो मालूम हुआ कि मुसलमान नज़रबन्द हैं। क़ुरैश का उनपर पहरा है। बड़ी तंगी और मुसीबत का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी हालत में वे मक्का क्या जाते, फिर वापस हब्शा लौट गए।

घाटी में प्यारे नबी *(सल्ल.)* और आपके सच्चे साथी पड़े रहे। एक महीना नहीं, दो महीने नहीं, साल-छः महीने भी नहीं, लगातार तीन साल तक पड़े रहे। कठिनाइयाँ उमड़-उमड़ कर आती रहीं और वे सब सहते रहे। जब पानी सिर से ऊँचा हो गया तो आप *(सल्ल.)* ने अपने साथियों को भी हिजरत की इजाज़त दे दी। वे भी हब्शा चले गए। वहाँ पहुँचकर उन्हें कुछ सुकून मिला। अब मक्का में केवल गिने-चुने मुसलमान रह गए।

जो मुसलमान रह गए, उनपर एक मुद्दत तक दुश्मनों का पहरा रहा, जिसकी वजह से एक-एक मिनट उनके लिए मुसीबत बन गया। लेकिन धन्य थे वे लोग, उनके स्वाभिमान और साहस का क्या कहना! सारी मुसीबतें एक तरफ़ और मुत्तलिब के कुटुम्ब की हिम्मत और मज़बूती एक तरफ़। भूख और फ़ाक़े के कष्ट सहते रहे, मगर प्यारे नबी *(सल्ल.)* पर तनिक भी आँच न आने दी और दिल-जान से आपकी ख़िदमत और हिफ़ाज़त में लगे रहे।

चचा अबू-तालिब का प्रेम और स्नेह भी देखने योग्य था। वे आपके लिए बिलकुल दीवाने थे, जैसे एक ममता की मारी माँ का हाल होता है। वे एक क्षण के लिए भी आप *(सल्ल.)* से ग़ाफ़िल न होते। यहाँ तक कि सोते भी तो अपने पास ही सुलाते। कभी किसी मजबूरी से साथ छोड़ना भी पड़ता तो अपनी जगह अपने किसी बेटे को कर देते कि रात में जाग कर वह आप *(सल्ल.)* की रक्षा करे।

कितने मुश्किल हालात थे ये! सारा माहौल दुश्मन, दोस्त-रिश्तेदार सब से अनबन, पास खाने के लिए कुछ नहीं। लोगों से कोई लेन-देन

नहीं। जैसे हर समय मौत मुँह खोले खड़ी हो। यह समय इतना कठिन था कि ख़ुदा की पनाह......! पत्ते खा-खा कर लोगों ने दिन गुज़ारे। हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास *(रज़ि.)* एक मशहूर सहाबी हैं। वे भी उस वक़्त मुसलमान थे और इस बला में घिरे हुए थे। वे कहते हैं कि "एक बार रात को सूखा चमड़ा हाथ आ गया, मैंने उसी को पानी से धोया। फिर आग में भूना और पानी में मिलाकर खाया।"

ये थे नाज़ुक हालात! ऐसे में अल्लाह ने मदद की। मजबूरों को सहारा दिया। कुछ लोगों के दिल उनके लिए नर्म हो गए। मुसलमानों की बेबसी देखकर उन्हें तरस आने लगा। वे छिपकर उनके पास आते। कुछ खाने-पीने का सामान दे जाते। इन्ही लोगों में एक हिज़ाम के बेटे हुकैम थे। ख़दीजा *(रज़ि.)* उनकी फूफी थीं। ये अपनी फूफी को रोटी सालन दे जाते। हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* खुद खातीं और दूसरों को भी खिलातीं। इसी प्रकार उमर *(रज़ि.)* के बेटे हिशाम भी मुसलमानों के बड़े हमदर्द थे। वे ऊँट पर बहुत-सा खाना-कपड़ा लाद लेते। रात हो जाती तो मुसलमानों के पास आते। ऊँट को घाटी के बाहर ही बिठा देते और सारा सामान अन्दर पहुँचा देते। हिशाम बराबर ऐसा ही करते रहे। कुछ दिनों में क़ुरैश को इसका पता चल गया। अब वे उनको भी सताने लगे किन्तु वे अपनी हमदर्दियों से बाज़ न आए। हिशाम ने एक काम और किया। वे अबू-उमय्या के बेटे ज़ुहैर के पास गए। यह आतिका का बेटा और अब्दुल-मुत्तलिब का नवासा था। हिशाम ने उससे कहा—

"ज़ुहैर! तुम तो ख़ूब मज़े उड़ाओ। अच्छे से अच्छा खाना खाओ। बढ़िया से बढ़िया कपड़े पहनो और तुम्हारे मामा इस तरह परेशानी और बेबसी के साथ दिन गुज़ारें। क्या तुम्हें यह बात पसन्द है............? ख़ुदा की क़सम, अगर ये लोग अबुल-हकम (अबू-जहल) के मामू होते और तुम ऐसा करने को कहते तो वह हरगिज़ इसके लिए तैयार न होता।"

ज़ुहैर : "मैं अकेला कर ही क्या सकता हूँ? ख़ुदा की क़सम, अगर कोई साथ देनेवाला होता तो मैं इस समझौते को तोड़ देता।"

हिशाम : "कोई और मिल जाए तो......?"

ज़ुहैर : "कौन?"

हिशाम : "मैं।"

ज़ुहैर : "अच्छा एक आदमी और तलाश करो, कोई और मिल जाए तो बड़ा अच्छा रहेगा।"

दोनों जवान समझौता तोड़ने के लिए तैयार हो गए। वह समझौता जो सारे क़ुरैश का समझौता था। अब वे दोनों किसी तीसरे को ढूँढने लगे। अल्लाह ने मदद की। न केवल एक बल्कि तीन-तीन बहादुर उनके साथ हो गए। ये तीनों क़ुरैश के बाइज़्ज़त सरदार थे। एक अदी के बेटे मुतइम थे। दूसरे हिशाम के बेटे अबुल-बख़्तरी और तीसरे थे असवद के बेटे ज़मआ।

सुबह हुई तो हिशाम, मुतइम, अबुल-बख़्तरी और ज़मआ घर से निकले। काबा के निकट ही क़ुरैश बैठे हुए थे। ये चारों सरदार भी जाकर बैठ गए। फिर ज़ुहैर वहाँ पहुँचे। उन्होंने पहले काबा का तवाफ़ किया फिर आकर बोले—

"मक्कावालो! हम तो मज़े से खाते-पीते हैं और बनी-हाशिम एक-एक टुकड़े को तरस रहे हैं। न किसी से लेन-देन कर सकते हैं, न ख़रीद-बेच सकते हैं। क्या यह उचित है? क्या मानवता और सज्जनता इसी का नाम है? ख़ुदा की क़सम, मैं बैठ नहीं सकता, जब तक इस समझौते की धज्जियाँ न उड़ जाएँ।"

यह सुनकर अबू-जहल तन कर उठा और कड़क कर बोला, "तूने ग़लत कहा। ख़ुदा की क़सम, यह हरगिज़ न होगा।"

उसी दम ज़ुहैर के सब साथी एक साथ बोल उठे, "हाँ बिलकुल ठीक है। यह होगा, ज़रूर होगा, होकर रहेगा।"

अबू-जहल समझ गया कि यह सोची समझी स्कीम है। इसमें बोलना बेकार है। वह कलेजा मसोस कर रह गया।

मुतइम समझौता नामा फाड़ने के लिए आगे बढ़ा, देखा तो उसे पहले ही दीमक चाट गई थी। केवल एक शब्द बाक़ी बचा था, जो समझौते के शुरू में था। वह शब्द था, "ऐ अल्लाह! तेरे नाम से।"

समझौता तोड़ दिया गया तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* और आपके सच्चे

साथी घाटी से बाहर आ गए और दिल से फिर इस्लाम के प्रचार में लग गए।

यह नुबूवत का दसवाँ साल था, जब प्यारे नबी *(सल्ल.)* और आपके सच्चे साथियों को इस क़ैद से छुटकारा मिला।

(5)

नज़र बन्दी की बला तो टल गई, लेकिन यहीं पर बस न था। जो मुसीबतें अभी आनेवाली थीं, इससे भी ज़्यादा सख़्त और जान लेवा थीं। अभी कुछ ही दिन गुज़रे थे कि अबू-तालिब बीमार पड़ गए। उनकी हालत बहुत नाज़ुक हो गई। क़ुरैश समझे कि अब उनके चल-चलाऊ के दिन हैं। अब उनका बचना मुश्किल है। उन्होंने तय किया कि फिर अबू-तालिब के पास चलें और उनसे कहें कि अपनी ज़िन्दगी ही में हमारे और मुहम्मद के बीच कोई फ़ैसला कर दें। क्योंकि अगर मौत के बाद हम उसको सताएँगे तो अरब के लोग हमें शर्म दिलाएँगे। कहेंगे, ज़िन्दगी में तो हिम्मत न हुई, अब चचा मर गया तो शेर बन गए।

अबू-तालिब मौत के बिस्तर पर पड़े थे। ज़िन्दगी की आख़िरी साँस ले रहे थे। उसी समय क़ुरैश के कुछ सरदार पहुँचे और बोले—

"अबू-तालिब! हमारे दिल में आपका क्या स्थान है, इसे आप अच्छी तरह जानते हैं। हमारी इच्छा है कि भतीजे के बारे में आप न्याय करें, उससे कह दें, न वह हमारे दीन को कुछ कहे, न हम उसके दीन को।"

अबू-तालिब ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* को बुलवाया। आपके सामने क़ुरैश की बात रखी। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"आप लोग केवल एक वाक्य कह दें और बस। मैं और कुछ नहीं चाहता।"

क़ुरैश : "कौन सा वाक्य? एक क्या, हम दस वाक्य कह दें।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "आप लोग 'ला इला-ह इल्लल्लाह' (अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं) कह दें, इसके अलावा मैं कुछ नहीं चाहता।"

यह सुनते ही वे ग़ुस्से से तिलमिला उठे और आपस में यह कहते

हुए चल दिए—

"यह आदमी तुम्हारी कोई बात मानने का नहीं। अब इसके साथ जो चाहो, तुम कर सकते हो, अब किसी को भी यह हक़ न होगा कि वह हमें भला-बुरा कह सके।"

क़ुरैश के सरदारों के इस रवैये से अबू-तालिब को बहुत दुख हुआ बोले—

"प्यारे भतीजे! तुमने कोई ग़लत बात तो कही नहीं, फिर ये लोग इतने क्या उखड़ गए?"

चचा की यह बात को सुनकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* को कुछ उम्मीद बँधी। मौक़े से फ़ायदा उठाते हुए आप (सल्ल.) ने कहा, "चचा! क़ुरैश ने तो मेरी बात ठुकरा दी, मगर आप तो न ठुकराइए।

चचा! बस एक ही वाक्य कह दीजिए ताकि क़ियामत के दिन मैं आपके हक़ में गवाही दे सकूँ। मेरे प्यारे चचा! केवल ला इला-ह इल्लल्लाह कह दीजिए।"

चचा : "अरब के लोग ताने देंगे। कहेंगे, अबू-तालिब मौत से डर गया। भतीजे! अगर यह अन्देशा न होता तो मैं तेरी बात मान लेता। मैं बाप-दादा ही के धर्म पर मरूँगा।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को चचा से बहुत प्रेम था। आपके दिल में उनकी बड़ी चाह थी। आप जहाँ उनके लिए दुनिया की कामियाबी चाहते थे, वहीं उनके लिए आख़िरत की सफलता भी चाहते थे। उन्होंने इस्लाम क़बूल नहीं किया तो आप *(सल्ल.)* तड़प कर रह गए। दिल को बड़ा धक्का लगा और फिर ग़म और फ़िक्र में घुलने लगे। आप *(सल्ल.)* की यह हालत हुई तो यह आयत उतरी—

> "तुम जिसको चाहो, हिदायत नहीं दे सकते, अल्लाह ही जिसको चाहता है, हिदायत देता है।"
>
> (क़ुरआन, 28:56)

अबू-तालिब चल बसे। हाँ वही अबू-तालिब, जो आप *(सल्ल.)* के सहारा और मददगार थे, जो आपसे हमदर्दी रखते थे और आपके लिए बड़े संवेदनशील थे। आप *(सल्ल.)* क़ुरैश के ज़ुल्म व सितम का निशाना

बनने के लिए अकेले रह गए!![1]

इस दुर्घटना को अभी कुछ ही दिन हुए थे कि एक दूसरी दुर्घटना आप *(सल्ल.)* का दिल चीर गई। वह दुर्घटना क्या थी? बीबी ख़दीजा *(रज़ि.)*..........आह ......! बीबी ख़दीजा *(रज़ि.)* की मौत!

हाँ, वही ख़दीजा *(रज़ि.)*, जो आप *(सल्ल.)* की वफ़ादार बीवी थीं। आपके दुख-दर्द की शरीक थीं।

हाँ वही ख़दीजा, जो आप *(सल्ल.)* के लिए प्यार-मुहब्बत का दरिया थीं। स्नेह और दिलसोज़ी की प्रतिमूर्ति थीं।

हाँ, वही ख़दीजा *(रज़ि.)* जिन्होंने हमेशा आप *(सल्ल.)* के वुजूद को सीने से लगाए रखा। प्रेम और श्रद्धा से नयनों में बिठाए रखा।

हाँ, वही ख़दीजा *(रज़ि.)* जिन्होंने पहले दिन से आप *(सल्ल.)* का साथ दिया, मायूसी में ढाढ़स बँधाई। उदासी में शान्ति पहुँचाई और फिर इसी हाल में जान दे दी।

हाँ, वही ख़दीजा *(रज़ि.)* जो सबसे पहले रब पर ईमान लाईं।

हाँ, वही ख़दीजा *(रज़ि.)* जिनको रब ने ...... हाँ, ख़ुद रब ने सलाम भिजवाया और जन्नत में मोतियों के महल की ख़ुशख़बरी सुनाई।

अबू-तालिब और ख़दीजा *(रज़ि.)*[2] की मौत क्या थी? एक सहारा था जो टूट गया, एक क़िला था जो ढह गया।

लेकिन अब इस्लाम का प्रकाश मक्का से बाहर फैलना शुरू हो गया था। अब नामुमकिन था कि मुशरिकों की फूँकों से यह चिराग़ बुझ जाता, चाहे वे कम हों या अधिक, ताक़तवर हों या कमज़ोर। यह अल्लाह का फ़ैसला था। चाहे अधर्मी कितने ही तिलमिलाएँ।

> "अल्लाह अपने दीन का प्रकाश फैलाकर रहेगा चाहे अधर्मी कितना न चाहें।" (क़ुरआन)

---

1. यह सन दस नबवी का ज़माना है, जो इस्लाम का अत्यन्त कठिन ज़माना है। इस ज़माने में प्यारे नबी *(सल्ल.)* बहुत ग़मग़ीन और बेक़रार रहते और फ़रमाते भी कि यह ग़म का साल है।
2. ख़दीजा *(रज़ि.)* का इन्तिक़ाल रमज़ान के महीने में हुआ। उस समय उनकी उम्र 65 साल थी। हजून नामक जगह पर दफ़न हुईं। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ख़ुद उनकी क़ब्र में उतरे।

नाज़ुक दौर

(1) दयालु पैग़म्बर ज़ुल्म व सितम के घेरे में

(2) आइशा *(रज़ि.)* और सौदा *(रज़ि.)* प्यारे नबी के निकाह में

(3) ताइफ़ की यात्रा

(4) ताइफ़वालों का शर्मनाक सुलूक

(5) पाक नबी *(रज़ि.)* की दर्दमन्दाना फ़रियाद

(6) जिन्नों का एक गरोह इस्लाम के दामन में

(7) क़ुरैश की साज़िश

(8) मुतइम की अमान में

(9) फ़र्श से अर्श तक

(10) अबू-जहल की शरारतें

(11) मेराज के प्रभाव

(12) अबू-बक्र *(रज़ि.)* को 'सिद्दीक़' का ख़िताब

(13) मेराज यात्रा की एक झलक

(1)

अधर्मियों ने बहुत कोशिश की कि मुहम्मद *(सल्ल.)* अल्लाह का पैग़ाम पहुँचाना छोड़ दें। इस्लाम का प्रचार बन्द कर दें, लेकिन उन्हें इसमें ज़रा भी कामियाबी न हुई। इस्लाम की ज्योति बुझाने की मुसलसल कोशिश और फिर निरन्तर नाकामी! दुश्मनों के लिए यह एक दुःखद बात थी। उनकी अक़्ल हैरान थी, क्या करें? आप *(सल्ल.)* के मुक़ाबले में कौन सी चाल चलें..........! लेकिन ...... अफ़सोस! अबू तालिब जा चुके थे। हाँ, वही अबू-तालिब जो आप *(सल्ल.)* का सहारा और मददगार थे। बलाओं के तूफ़ान में एक मज़बूत दीवार थे और जो पूरे क़बीले को आपस में जोड़े हुए थे। सारे ख़ानदान के वे बुज़ुर्ग थे कि उन्ही की वजह से लोग आप *(सल्ल.)* के साथ थे। आपके पास जमा थे।

अब! मैदान ख़ाली था, रास्ता साफ़ था। मुशरिकों के लिए दिल का बुख़ार निकालने का अच्छा मौक़ा था। अब नर्मी और दया का कोई सवाल ही न था। अब तो ज़ुल्म और सितम के तेज़ झोंके थे। अब आप *(सल्ल.)* को सताने में हर एक शेर था। इसमें जो जितना ही ज़्यादा आगे था, उसको उतना ही ज़्यादा गर्व था। हद तो यह हो गई कि एक दिन आप *(सल्ल.)* काबा में नमाज़ पढ़ रहे थे। एक बदक़िस्मत को शरारत सूझी। आप *(सल्ल.)* पर बकरी की ओझड़ी लाकर डाल दी। इस बदतमीज़ी पर आप *(सल्ल.)* ने क्या रवैया अपनाया? क्या उसको बुरा-भला कहा? क्या उसको कोई बद्दुआ दी? नहीं, आप *(सल्ल.)* ने केवल इतना कहा—

"ऐ मनाफ़ के लोगो! पड़ोसी के साथ यह कैसा बर्ताव?"

इसी प्रकार एक बार आप *(सल्ल.)* कहीं जा रहे थे। किसी बदक़िस्मत ने आपके मुबारक सिर पर मिट्टी डाल दी। आप इसी हाल में घर आए। बेटी फ़ातिमा (रज़ि.) ने यह देखा तो दौड़कर पानी लाईं और आपके सिर को धोने लगीं। बाप के साथ यह बदसुलूकी देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गए। दिल तड़प उठा। आप *(सल्ल.)* ने तसल्ली देते हुए कहा—

"बेटी! रोओ मत! ख़ुदा तुम्हारे बाप की मदद करेगा।"

अबू-तालिब के इन्तिक़ाल के बाद अबू-लहब कुछ दिनों तो ख़ामोश रहा। फिर पहले से भी ज़्यादा बेदर्दी से सताने लगा। उसने और उसकी बीवी ने तो इतना तंग किया कि ख़ुदा की पनाह! नाक में दम कर दिया।

रहा अबू-जहल! तो वह रात-दिन घात में रहता। कभी गुण्डों को पीछे लगा देता और वे ख़ूब सताते। कभी लम्पटों को इशारा कर देता और वे अपनी बदतमीज़ियों का प्रदर्शन करते। कभी कुछ कमीनों को लेकर बैठ जाता। जब आप *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ने आते या तवाफ़ का इरादा करते तो वे बदक़िस्मत आपको मारने की सोचते। आपकी हत्या करने की स्कीम बनाते। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* उनको रोकते। उनकी हरकतों पर अपनी बेज़ारी और नफ़रत ज़ाहिर करते। बहुत ही दुःख के साथ कहते—

"क्या किसी को केवल इस बात पर क़त्ल करोगे कि वह कहता है, मेरा रब अल्लाह है और वह अल्लाह के पास से खुली निशानियाँ भी लेकर आया है?"

इसपर वे अबू-बक्र *(रज़ि.)* को भी सताने लगे। वे सब चारों ओर से टूट पड़ते और इतना मारते कि फिर उन्हें कभी कुछ कहने की हिम्मत न हो सके और उन ज़ालिमों को अपनी बुरी हरकतें करने की आज़ादी रहे। मगर अबू-बक्र *(रज़ि.)* माननेवाले कब थे। जानते-बूझते वे अपनी जान ख़तरे में डाल देते, क्योंकि उन्हें तो अपनी जान से ज़्यादा अपने रसूल की जान प्यारी थी। दोस्त के लिए हर चोट उनके लिए प्रिय थी और उनकी रूह के लिए सुकून और शान्ति का सामान थी।

और नबी *(सल्ल.)* का हाल यह था कि आप बहुत दुःख के साथ फ़रमाते—

"ख़ुदा की क़सम! जब तक अबू-तालिब ज़िन्दा रहे, क़ुरैश मुझ पर हाथ न डाल सके।"

(2)

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* क़ुरैश के ज़ुल्म व सितम का निशाना बने हुए हैं, वे अपनी ज़ुबानों के तीरों से आपके जिगर को छलनी कर रहे हैं, यह सोचकर आप *(सल्ल.)* के प्यारे साथी बेक़रार हो जाते। आपको दो मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा था। चचा अबू-तालिब और हज़रत ख़दीजा *(रज़ि.)* की जुदाई का ग़म और फिर क़ुरैश की बदसुलूकी का रंज।

अधिकतर मुसलमान तो हब्शा में थे। मक्का में तो बहुत थोड़े थे। बस गिनती के कुछ और मुक़ाबले में दुश्मनों का एक ठाठें मारता समुद्र था। भला वे बेचारे कर भी क्या सकते थे? अत्याचारों की बाढ़ को रोक ही कैसे सकते थे? वे तो बिलकुल बे-बस थे। हाँ, केवल यही एक उपाय था कि धैर्य और सब्र से काम लें और अल्लाह पर भरोसा करते हुए जहाँ तक हो सके आपका बचाव करते रहें।

मुसलमान औरतें भी आप *(सल्ल.)* को बलाओं में घिरा देखतीं तो बहुत दुःखी होतीं और कलेजा मसोस कर रह जातीं। एक दिन हज़रत ख़ौला *(रज़ि.)* आपकी सेवा में पहुँचीं। ये हुकैम की बेटी और उस्मान-बिन-मज़ऊन *(रज़ि.)* की बीवी थीं। बोलीं—

"आप शादी क्यों नहीं कर लेते कि कोई आपके ग़मों को बाँट सके, आपके दिल का बोझ हल्का कर सके? कोई ख़दीजा जैसी न मिले न सही। लेकिन कुछ तो सुकून मिलेगा। कुछ तो मन का बोझ हल्का होगा।"

प्यारे नबी : "हुकैम की बेटी! किसकी तरफ़ इशारा है?"

ख़ौला *(रज़ि.)* : "कुँआरी भी मिल सकती है और चाहें तो बेवा भी।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "कुँआरी कौन?"

ख़ौला *(रज़ि.)* : "आपकी सबसे बड़ी हक़दार अबू-बक्र की बेटी है।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "और बेवा कौन?"

ख़ौला *(रज़ि.)* : "ज़मआ की बेटी सौदा। वे आपको नबी मान चुकी हैं और आपके पैग़ाम को क़ुबूल कर चुकी हैं। हब्शा हिजरत करनेवालों में उनके शौहर भी थे। वहाँ से वापसी के बाद उनका इन्तिक़ाल हो गया।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "अच्छा जाओ। दोनों के लिए बातचीत तो करो।"

ख़ौला *(रज़ि.)* सौदा *(रज़ि.)* के पास गईं। बोलीं—

"अल्लाह! अल्लाह! तुम्हारी क़िस्मत का क्या कहना! तुम पर कितनी ही बरकतों की छाया है!"

सौदा *(रज़ि.)* को बड़ा ताज्जुब हुआ। बड़ी बेचैनी के साथ कहा—

"आप क्या कह रही हैं? मैं कुछ समझ न सकी।"

ख़ौला *(रज़ि.)* : "अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* तुमसे शादी करना चाहते हैं, उसी सिलसिले में बात करने आई हूँ।"

सौदा *(रज़ि.)* का चेहरा ख़ुशी से चमक उठा। कुछ झिझकती और शर्माती हुई बोलीं, "सुब्हानल्लाह!! ज़रा जाइए, अब्बा से भी बात कीजिए। देखिए वे क्या कहते हैं।"

ख़ौला *(रज़ि.)* ने जाकर सौदा *(रज़ि.)* के बाप से बात की। उन्होंने यह मुबारक ख़बर सुनी तो खुद-ब-खुद उनके मुँह स निकला—

"इस जोड़े का क्या कहना!"

फिर ख़ौला *(रज़ि.)* उम्मे-रूमान *(रज़ि.)* के पास गईं। ये आइशा *(रज़ि.)* की माँ और अबू-बक्र की बीवी थीं। बोलीं—

"क्या अच्छी क़िस्मत पाई है आपने! यह बरकत और रहमत की बारिश! खुदा के रसूल *(सल्ल.)* आइशा से शादी का इरादा रखते हैं।"

उम्मे-रूमान *(रज़ि.)* : "अहो भाग्य! कितनी मुबारक बात होगी यह! तनिक ठहरो, अबू-बक्र भी आ जाएँ।"

अभी ज़्यादा देर नहीं हुई थी कि अबू-बक्र *(रज़ि.)* आ गए।

आख़िरकार आप *(सल्ल.)* की शादी सौदा *(रज़ि.)* और आइशा *(रज़ि.)* से हो गई। इस तरह दो घरानों के मुसलमानों से आप *(सल्ल.)* का सम्बन्ध और अधिक मज़बूत हो गया।

शादी के बाद सौदा *(रज़ि.)* विदा होकर आप *(सल्ल.)* के घर चली आईं। आइशा *(रज़ि.)* की विदाई बाद में हुई।

(3)

सत्य-धर्म के विरोधी अब नबी *(सल्ल.)* और आपके माननेवालों पर पूरे ज़ोर-शोर से ज़ुल्म के पहाड़ तोड़ रहे थे। क्योंकि अबू-तालिब के इन्तिक़ाल के बाद क़ुरैश ने यह प्रतिज्ञा की थी कि मुहम्मद को उस समय तक सताते रहेंगे, जब तक वह इस्लाम के प्रचार से न रुक जाएँ या हमारी तलवारें उसके ख़ून से न रंग जाएँ। और आप *(सल्ल.)* के साथियों का भी जीवन दूभर कर देंगे, जब तक कि वे इस्लाम को

छोड़कर फिर अपने बाप-दादा के धर्म को न अपना लें।

नुबूवत का दसवाँ साल था। जमादुल-उख़रा या शव्वाल का महीना था। मुहम्मद *(सल्ल.)* क़ुरैश के ज़ुल्मों से जब तंग आ गए और उनकी ज़्यादतियाँ बर्दाश्त से बाहर हो गईं तो आप *(सल्ल.)* ने ताइफ़ जाने का फ़ैसला किया। उस समय आप बहुत ज़्यादा दुखी थे और फिर इस दुख के साथ में तन्हाई भी आपको बेचैन किए दे रही थी। आपके दिल पर क्या बीत रही थी, इसे शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता।

केवल इसलिए गए कि शायद वहाँ वाले आप *(सल्ल.)* का साथ दें और आप हर ओर सत्य के दीप जला सकें।

नबी *(सल्ल.)* ताइफ़ पहुँचे तो मामला ही कुछ और था। मदद करना तो अलग रहा, उन्होंने आपको अपने यहाँ ठहराना भी पसन्द न किया। पूरी हठधर्मी से नुबूवत का इनकार कर दिया। आपके पैग़ाम को झुठलाया और बड़ी बेशर्मी के साथ आपकी ओर से मुँह फेर लिया। क्योंकि क़ुरैश की तरह वे भी इस्लाम को अपने लिए ख़तरा समझते थे। ताइफ़ की जलवायु बहुत अच्छी थी। वहाँ की धरती हरी-भरी थी। अंगूर और दूसरे फलों की पैदावार वहाँ बहुत होती थी। इसलिए क़ुरैश के बड़े लोग गर्मियाँ वहीं गुज़ारते थे। अरब का मशहूर बुत "लात" भी वहीं स्थापित था। काबा की तरह उसकी भी हर एक ज़ियारत करता था। अपनी इन्ही ख़ुसूसियतों की वजह से ताइफ़ भी अरब का एक महत्त्वपूर्ण नगर था। ताइफ़वासियों को डर था कि अगर आप *(सल्ल.)* को पनाह दी गई तो सारा क़ुरैश हमारा दुश्मन हो जाएगा और ताइफ़ की सारी विशेषता और लोकप्रियता ख़त्म हो जाएगी।

आप *(सल्ल.)* चाहते थे कि मक्कावालों को पता न चले कि ताइफ़ के लोगों ने हमारे साथ क्या सुलूक किया है। आपको डर था कि अगर वे जान गए तो और ज़्यादा हमारा मज़ाक़ उड़ाएँगे और ज़ुल्म व सितम में पहले से अधिक निडर हो जाएँगे। आप जब वहाँ से वापस होने लगे तो ताइफ़ के क़बीले सक़ीफ़ के एक सरदार से कहा–

"तुम लोगों ने मेरी बात तो नहीं मानी, लेकिन कम से कम मेरे मामले को छिपाए रखना।"

लेकिन वे इसपर भी राज़ी न हुए। बल्कि ताइफ़ के गुण्डों और लम्पटों को भी आप *(सल्ल.)* के ख़िलाफ़ उभार दिया। इन ज़ालिमों ने

आपके पैरों पर इतने पत्थर बरसाए कि जूतियाँ ख़ून से भर गईं। जब आप *(सल्ल.)* ज़ख़्मों से निढाल हो जाते और पत्थर खाते-खाते बेदम हो जाते तो बैठ जाते। इन ज़ालिमों को फिर भी तरस न आता। वे आप *(सल्ल.)* का हाथ पकड़कर खड़ा कर देते। जब आप चलने लगते तो फिर पत्थरों की वर्षा शुरू हो जाती। साथ ही वे दुष्ट आपको गालियाँ देते, तालियाँ बजाते। अफ़सोस ....! मानव जगत् का कितना विकृत और दुखद दृश्य था यह......!

आप *(सल्ल.)* तो ऐसे दयामय बादल थे, जिसकी मानव उपवन को ज़रूरत थी। किन्तु लोग कितने नादान थे कि उन्हें आप *(सल्ल.)* को सताने ही में मज़ा आ रहा था।

ऐ मुहम्मद! पैग़म्बरी में जो-जो परेशानियाँ आपने उठाईं, इस्लाम के प्रचार में जो-जो सख़्तियाँ झेलीं, उनके बदले में अल्लाह आपका हो गया!!

आप *(सल्ल.)* इसी तरह बस्ती के किनारे पहुँच गए। वहाँ एक बहुत बड़ा बाग़ था। उसमें अंगूर की बहुत सी बेलें थीं। जगह-जगह ख़ुशनुमा गुच्छे लटक रहे थे। आप उसी बाग़ में दाख़िल हो गए, इस तरह कहीं जाकर जान छूटी।

निगाहें ख़ुद-ब-ख़ुद आकाश की ओर उठ गईं। आप *(सल्ल.)* अपने रब के सामने गिड़गिड़ाने लगे। अपनी बेबसी की फ़रियाद करने लगे कि उसकी रहमत को जोश आए और आपको अपने दामन में ले ले। आपके मुख से ये शब्द निकल रहे थे :

"ऐ रब! मैं अपनी बेबसी, बेचारगी और लोगों में अपनी रुस्वाई की फ़रियाद तुझी से करता हूँ। ऐ सबसे बड़े दयालु! तू कमज़ोरों का रब है। तू ही मेरा भी रब है!

तू मुझे किसके हवाले कर रहा है?— क्या किसी पराए के?— जो मुझे देखकर त्योरी चढ़ाए, या किसी ऐसे दुश्मन के, जिसे तूने मुझपर पूरा अधिकार दे दिया हो।

ऐ रब! अगर तू मुझसे नाराज़ नहीं तो फिर मुझे कोई परवाह भी नहीं। लेकिन अगर तेरी ओर से सलामती मिले तो उसमें मेरे लिए अधिक गुंजाइश है।

मैं पनाह लेता हूँ तेरे उस मुख-प्रकाश की, जिसने सारे अन्धकार दूर

किए हैं– और जिसके कारण लोक-परलोक के मामले दुरुस्त हुए हैं।

पनाह चाहता हूँ मैं इस बात से कि मुझ पर तेरा प्रकोप हो– या तू मुझ से नाराज़ हो जाए।

जब तक तू राज़ी न हो जाए, तुझे राज़ी करने की कोशिश किए जाना है।

जो ताक़त और तदबीर भी है वह तेरे ही हाथ में है।"

यह बाग़ जिसमें आकर आप *(सल्ल.)* ठहरे थे, दो सगे भाइयों का था। एक का नाम उत्बा था और दूसरे का शैबा। ये रबीआ के बेटे थे। दोनों ने अपनी आँखों से सारा माजरा देखा था। उन्होंने अपनी आँखों से देखा था कि आप *(सल्ल.)* ख़ून में नहाए हुए थे और क़ौम के गुण्डे आप पर पथराव कर रहे थे और बड़ी बेबसी और बेक़रारी की हालत में आगे बढ़ रहे थे। दोनों को बड़ा तरस आया। आपके साथ इस ज़ुल्म पर उनका दिल भर आया। तुरन्त अपने ईसाई ग़ुलाम को आवाज़ दी–

"अद्दास! बाग़ से अंगूर का गुच्छा तोड़ो और एक प्लेट में ले जा कर उस आदमी को दो और कहो कि इसे खा ले।"

अद्दास ने आदेश का पालन किया। वह अंगूर लेकर आप *(सल्ल.)* के पास आया और सामने रखते हुए बोला– "इसे खा लीजिए।" आप *(सल्ल.)* ने 'बिस्मिल्लाह' (अल्लाह के नाम से शुरू करता हूँ) कहते हुए हाथ बढ़ाया और अंगूर खाने लगे। अद्दास हक्का-बक्का सा हो गया, हैरत ज़ाहिर करते हुए बोला–

"खुदा की क़सम! यहाँ तो कभी किसी मुख से इस प्रकार का वाक्य सुना ही नहीं!"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कहा, "तुम्हारा वतन कहाँ है? तुम किस धर्म के माननेवाले हो? और तुम्हारा नाम क्या है?"

अद्दास ने जवाब दिया, "मैं नैनवा का रहनेवाला हूँ, ईसाई धर्म का माननेवाला हूँ, नाम मेरा अद्दास है।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कहा, "यूनुस-बिन-मत्ती की बस्ती के हो? वे तो बड़े बुज़ुर्ग इनसान थे।"

यह सुनकर अद्दास का ताज्जुब और बढ़ा। "आप कैसे जान गए कि यूनुस-बिन-मत्ती क्या थे?" उसने बड़ी बेक़रारी के साथ पूछा।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कहा, "यूनुस मेरे भाई हैं। वे भी नबी थे, मैं

भी नबी हूँ।"

यह सुनना था कि अद्दास बेक़ाबू हो गया। तुरन्त झुक कर आप *(सल्ल.)* के हाथ-पैर चूमे और फिर आपके सिर को भी चूमा।

उत्बा और शैबा यह सब देख रहे थे। वे बड़े हैरान थे कि आख़िर मामला क्या है? अद्दास लौटकर गया तो बोले—

"अरे अद्दास उस आदमी के हाथ पैर क्यों चूम रहे थे?"

अद्दास : "मेरे मालिक! धरती पर इससे अच्छा कोई आदमी नहीं। इसने एक ऐसी बात बताई, जिसे केवल वही बता सकता है, जो नबी हो।"

उत्बा और शैबा : "अरे अद्दास! इसकी बातों में आकर कहीं अपना धर्म मत छोड़ देना। तुम्हारा धर्म इसके धर्म से कहीं अच्छा है।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* क़बीला सक़ीफ़ से बिलकुल नाउम्मीद हो गए उनसे मदद मिलने की कोई उम्मीद न रही। अब आप *(सल्ल.)* ने ताइफ़ से कूच किया। अब आपके सामने रेगिस्तान था। आप तेज़-तेज़ चलने लगे। अब आप मक्का की ओर जा रहे थे। वही मक्का जिसको आपने वहाँ के लोगों के ज़ुल्म व सितम से मजबूर होकर छोड़ा था और इस आरज़ू में बाहर निकले थे कि कोई और पनाहगाह मिल जाए, कहीं और से मदद मिल जाए और यहाँ की मुसीबत और बेबसी से छुटकारा मिले, लेकिन आप *(सल्ल.)* की यह आरज़ू पूरी न हुई।

ताइफ़ और मक्का के बीच एक जगह है नख़ला। चलते-चलते जब आप *(सल्ल.)* थक गए तो वहीं दम लेने को ठहर गए। जब रात काफ़ी बीत गई और हर ओर सन्नाटा छा गया तो इस शान्तिपूर्ण तन्हाई में नमाज़ के लिए खड़े हो गए, और बड़ी मीठी और दर्द भरी आवाज़ से क़ुरआन पढ़ने लगे। इत्तिफ़ाक़ से जिन्नों का एक गरोह उधर से गुज़रा। क़ुरआन पढ़ने की आवाज़ उनके कानों में आई। यह वाणी उनको बड़ी अजीब मालूम हुई। ठहर कर सुनने लगे। ख़ुदा की उनपर मेहरबानी हुई। उनको हिदायत नसीब हो गई। उन्होंने जाकर अपनी ज़ातवालों से कहा—

> "हमने एक मनमोहक क़ुरआन सुना है। वह सही राह दिखाता है। तो हम उसपर ईमान ले आए। हम हरगिज़ किसी को अपने रब का साझी न ठहराएँगे।" (क़ुरआन, 72 : 1-2)

आप *(सल्ल.)* रात के सन्नाटे में क़ुरआन पढ़ रहे थे और जिन्नों का यह गरोह बड़ी दिलचस्पी से सुन रहा था और प्रभावित हो रहा था। आख़िरकार वह ईमान भी ले आया और अपनी क़ौम को जाकर होशियार भी किया, लेकिन आप *(सल्ल.)* को इसका पता उस समय चला जब अल्लाह की तरफ़ से यह आयत उतरी—

"और याद करो जब हमने कुछ जिन्नों का रुख़ तुम्हारी ओर फेर दिया कि वे क़ुरआन सुन लें। तो जब वे उसके पास पहुँचे तो आपस में कहने लगे, चुपके रहो और कान लगाकर सुनो। फिर जब क़ुरआन पढ़ा जा चुका तो वे अपनी क़ौम की तरफ़ होशियार करनेवाले बनकर लौटे।" (क़ुरआन, 46 : 29)

क़ुरैश को ताइफ़ का सारा हाल मालूम हो गया था। उन्हें ख़बर हो गई थी कि आप *(सल्ल.)* को वहाँ बुरी तरह नाकामी हुई। सक़ीफ़ के लम्पटों ने आपको ख़ूब-ख़ूब सताया। इसपर वे बड़े ख़ुश थे और आपका ख़ूब मज़ाक़ उड़ा रहे थे। उन्होंने आपस में क़समें खाकर तय किया कि "अगर मुहम्मद लौटकर मक्का आया तो जब तक उसको मार न देंगे, चैन से न बैठेंगे।" वे समझते थे कि ताइफ़ में भी नाकाम हो जाने के बाद आपका हौसला पस्त हो जाएगा और सारा जोश-जज़्बा ठण्डा पड़ जाएगा। ऐसे में आप पर क़ाबू पाना आसान होगा और मौत का मज़ा चखाना बाएँ हाथ का खेल होगा।

क़ुरैश की इन साज़िशों से बिलकुल बेख़बर आप नख़ला से मक्का के लिए रवाना हो गए। हिरा नामक एक स्थान पर पहुँचे तो वहाँ क़ुरैश के कुछ लोग मिल गए। उनसे मालूम हुआ कि क़ुरैश के क्या इरादे हैं? कैसी-कैसी स्कीमें हैं? आप ने उन्ही में के एक व्यक्ति से कहा—

"क्या मेरा एक पैग़ाम पहुँचा सकते हो?"

वह आदमी, "जी हाँ, ज़रूर।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)*, "शुरैक़ के बेटे अख़नस के पास जाकर कहो कि मुहम्मद ने पूछा है, "क्या आप पनाह दे सकते हैं कि मैं रब का पैग़ाम पहुँचा सकूँ?"

वह आदमी जाकर अख़नस से मिला। उसको आप *(सल्ल.)* का पैग़ाम सुनाया। अख़नस ने कहा, "मैं तो क़ुरैश का सहप्रतिज्ञ हूँ। उनसे मेरा समझौता है, भला उनके ख़िलाफ़ मैं कैसे पनाह दे सकता हूँ?"

वह आदमी लौटकर आप *(सल्ल.)* के पास आया। उस समय आप हिरा घाटी ही में थे। अख़नस से जो बात हुई थी, उसने आपसे दुहरा दी।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "क्या दोबारा तकलीफ़ उठाओगे?"

वह आदमी : "जी हाँ।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "अम्र के बेटे सुहैल के पास जाओ। उनसे कहो कि क्या मुहम्मद को अमान दे सकते हो कि वह आज़ादी से रब का सन्देश लोगों तक पहुँचा सके?"

वह व्यक्ति यह सन्देश लेकर सुहैल के पास गया, उसने जवाब दिया कि "क़बीला आमिर-बिन-लुई आले-काब के ख़िलाफ़ अमान नहीं दे सकता।"

वह आदमी लौटकर हिरा आया। सुहैल ने जो कहा था, आप *(सल्ल.)* को बताया।

प्यारे नबी : "अच्छा एक बार और कष्ट करोगे?"

वह व्यक्ति : "जी ज़रूर।"

प्यारे नबी : "इस बार अदी के बेटे मुतइम के पास जाओ। उनसे यही अर्ज़ करो।"

वह आदमी मुतइम के पास गया और पूछा, "क्या आप मुहम्मद को पनाह देंगे?"

मुतइम[1] : "हाँ, वे आएँ, ज़रूर आएँ, ख़ुशी से आएँ।"

सुबह हुई तो मुतइम ख़ुद तैयार हुआ। बेटों और भतीजों को तैयार किया कि मक्का में दाख़िल होते समय कोई छेड़-छाड़ करे तो आप *(सल्ल.)* की हिमायत कर सकें। सबने जंगी लिबास पहन लिए। कमर से तलवारें लटका लीं, हाथों में बर्छियाँ ले लीं और काबा की ओर चल दिए। उस समय क़ुरैश वहाँ मौजूद थे। अबू-जहल भी मौजूद था। देखते ही बोला, "पनाह दी है या ईमान ले आए?"

मुतइम : "पनाह दी है।"

अबू-जहल : "जिसको तुमने पनाह दी, उसको हमने भी पनाह दी।"

---

1. मुतइम का इन्तिक़ाल बद्र की लड़ाई से पहले हुआ। उस समय वह इस्लाम नहीं लाया था।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* मक्का में दाख़िल हुए। चूँकि मुतइम पनाह दे चुका था, इसलिए कोई कुछ न बोल सका।

आप *(सल्ल.)* तवाफ़ के लिए सीधे काबा गए। उस समय क़ुरैश भी वहाँ बैठे हुए थे, उनमें हाशिम परिवार के कुछ लोग भी मौजूद थे। अबू-जहल ने आप *(सल्ल.)* को देखा तो हँसी उड़ाते हुए बोला—

"ऐ मनाफ़ के कुटुम्बवालो! यह है, तुम्हारा नबी!"

रबीआ का बेटा उत्बा भी मौजूद था। यह भी हाशिमी ख़ानदान का एक व्यक्ति था और अभी तक क़ुरैश के ही धर्म पर क़ायम था। झट बोला—

"अगर हममें कोई नबी हो जाए या किसी को बादशाहत मिल जाए तो इसमें जलने की क्या बात है?"

आप *(सल्ल.)* ने ये बातें सुनी तो निकट आए और फ़रमाया—

"ताज्जुब है उत्बा! ख़ुदा और रसूल की आन का तो तुम्हें कुछ ख़याल न हुआ, लेकिन अपनी आन का ख़याल आ गया।"

फिर आप *(सल्ल.)* ने अबू-जहल से फ़रमाया—

"सुन लो, अबू-जहल! वह समय आ रहा है, हाँ बहुत तेज़ी से आ रहा है, जब सारी हँसी ग़ायब हो जाएगी और तुम ख़ून के आँसू रोओगे।"

फिर औरों को सम्बोधित करते हुए कहा—

"क़ुरैश के सरदारो! तुम भी सुन लो। कान खोलकर सुन लो। वह दिन दूर नहीं, जब तुम ख़तरनाक अंजाम से दो चार होगे।"

इन बातों से क़ुरैश कितना तिलमिलाए होंगे? इसका अन्दाज़ा लगाना मुश्किल है, लेकिन मुतइम आप *(सल्ल.)* को पनाह दे चुका था, इसलिए वे ख़ून के घूँट पीकर रह गए।

अब आप *(सल्ल.)* ने क़ुरैश की ओर से अपना ध्यान हटा लिया। उनको दावत देना छोड़ दिया और अब आपने अन्य क़बीलों की ओर रुख़ किया। उनके घरों पर गए। उनकी चौपालों में गए। उनकी बस्तियों और बाज़ारों में गए। जा-जाकर उन्हें अल्लाह की ओर बुलाया। अपने नबी होने का यक़ीन दिलाया। ईमान लाने और पैरवी करने पर उकसाया। मदद करने और साथ देने पर उभारा, ताकि आप *(सल्ल.)* अल्लाह का पैग़ाम पहुँचा सकें। भटके हुए लोगों को सीधी राह पर ला

सकें।

(4)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की एक चचेरी बहन थीं। उनका नाम हिन्द *(रज़ि.)* था। वे अबू-तालिब की बेटी थीं। लोग उन्हें उम्मे-हानी के नाम से याद करते थे। आप *(सल्ल.)* की नुबूवत का दसवाँ साल था। महीना रजब का था। एक रात आप उन्ही के घर सोए हुए थे। प्रातः उदय से पहले ही आँखें खुल गईं। आप उठ बैठे। आपको देखकर उम्मे-हानी भी उठ गईं। आपने वुज़ू किया और नमाज़ पढ़ी। फिर उनसे बोले—

"उम्मे-हानी! इशा की नमाज़ मैंने यहीं तुम्हारे साथ पढ़ी थी। तुमने तो देखा ही था। फिर मैं बैतुल-मक़दिस गया। वहाँ नमाज़ पढ़ी। फिर इस समय की नमाज़ तुम्हारे साथ पढ़ी।"

उम्मे-हानी *(रज़ि.)* यह सुनकर आश्चर्यचकित होकर रह गईं। इशा की नमाज़ आप *(सल्ल.)* ने हमारे घर पढ़ी। फिर बीच रात बैतुल-मक़दिस में पढ़ी! फिर इस समय हमारे साथ पढ़ी। आख़िर यह हुआ कैसे?

उम्मे-हानी *(रज़ि.)* हैरान थीं! वे आपके पास आकर बैठ गईं और बोलीं : "ज़रा तफ़्सील से बताइए, क्या-क्या हुआ? और कैसे हुआ?"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "उम्मे-हानी! मैं सो रहा था। अचानक मुझे ऐसा लगा जैसे कोई जगा रहा है। मेरी आँख खुल गई। क्या देखता हूँ कि हज़रत जिबरील *(रज़ि.)* छत पार करके मेरे पास आ गए हैं। यह मेरे लिए बिलकुल नई घटना थी। इससे पहले तो वे कभी इस तरह नहीं आए थे। वे जब कभी ज़ाहिर होते तो सामने से होते। उन्होंने मेरा हाथ पकड़ा। मुझको लेकर काबा के पास हतीम के स्थान पर आए और वहाँ मुझे लिटा दिया। फिर मेरा सीना चाक किया। उसके बाद सोने की एक थाली लाए। वह थाली ईमान और हिकमत से भरी हुई थी। उसे मेरे सीने में उड़ेल दिया। फिर सीना बन्द कर दिया। उसके बाद एक बहुत सफ़ेद जानवर आया। वह जानवर ख़च्चर से ज़रा छोटा और गधे से कुछ बड़ा था। उसपर हम दोनों सवार हो गए। पलक झपकते बैतुल-मक़दिस पहुँच गए। वहाँ पहुँचकर मैंने नमाज़ पढ़ी। मेरे पीछे दूसरे सारे नबियों ने भी नमाज़ पढ़ी।"

उम्मे-हानी *(रज़ि.)* बड़े ध्यान से ये सब अनोखी बातें सुनती रहीं। वे बड़ी हैरान और आश्चर्यचकित थीं। इससे उनके मन में आप *(सल्ल.)* की

महानता और बढ़ गई, लेकिन साथ ही एक अन्देशा भी हुआ। बोलीं—

"मेरे भाई! यह बात किसी और से बयान न कीजिएगा, वरना जो ईमान लाए हैं, वे भी कानों में उंगलियाँ डाल लेंगे।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "नहीं, नहीं। मुझे तो क़ुरैश से भी बयान करना है।"

वे बोलीं, "मेरे भाई! क़सम देकर कहती हूँ, क़ुरैश से बिलकुल मत कहना, वे तो तुरन्त झुटला देंगे और उलटा नुक़सान भी पहुँचाएँगे।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "नहीं, नहीं! उम्मे-हानी इतनी डरने की क्या बात है? अल्लाह की मदद हमारे लिए काफ़ी है!"

फिर आप *(सल्ल.)* उठे और क़ुरैश की मजलिसों की तरफ़ जाने लगे। उम्मे-हानी से और कुछ तो बन न पड़ा, उन्होंने अपनी एक दासी को आपके पीछे-पीछे भेज दिया कि जाकर देखे और जो कुछ हो आकर बताए।

काबा में क़ुरैश के कुछ लोग बैठे हुए थे। जाकर आप *(सल्ल.)* भी उनके पास बैठ गए कि जो कुछ आपने देखा था, उनसे बयान करें। लेकिन फिर सोचा तो कशमकश में पड़ गए—

यह घटना सुनाऊँगा तो इसका क्या अंजाम होगा?

क्या लोग मेरी बातें मान लेंगे? या मुझे झुटला देंगे?

और क्या पूरी घटना सुना दूँ? क्या उनसे कहूँ कि मैं रात बैतुल-मक़दिस गया था? और क्या यह भी बता दूँ कि वहाँ से फिर आकाश-लोक की सैर करने गया था? या केवल उतनी ही बात बताऊँ जितनी उम्मे-हानी को बताई है?

बहुत देर हो गई। आप *(सल्ल.)* इसी सोच-विचार में बैठे रहे। तरह-तरह के ख़याल आपके मन में आते रहे।

एक तरफ़ आप *(सल्ल.)* बड़े ख़ुश दिखाई दे रहे थे। आपका चेहरा ख़ुशी से दमक रहा था कि मेरे रब ने कैसी-कैसी नेमतें मुझे दी हैं! मेरा कितना मान बढ़ाया है!! एक ही रात में उसने काबा से बैतुल-मक़दिस की सैर कराई। फिर वहाँ से आकाश-लोक का सफ़र भी। जहाँ अल्लाह का सिंहासन है और जहाँ उसी की बादशाहत है।

दूसरी तरफ़ अन्देशों का एक तूफ़ान था जो उमड़ा आ रहा था। आप *(सल्ल.)* रह-रह कर सोचते—

"क़ुरैश को जब यह बात सुनाऊँगा तो वे मेरा मज़ाक़ उड़ाएँगे। मुझे झूठा समझेंगे। हालाँकि मेरी दिली ख़ाहिश यही है कि रब की जिस अज़मत और बड़ाई को मैंने ख़ुद देखा है, उनसे भी बयान कर दूँ। अल्लाह की जिन निशानियों को मेरी आँखों ने देखा है, उनसे उन्हें भी वाक़िफ़ कराऊँ।"

आप *(सल्ल.)* इसी उधेड़-बुन में सिर झुकाए चुप-चाप बैठे रहे, हालाँकि काबा में इस तरह आप कभी न बैठते थे।

दूसरे लोगों ने भी देखा कि आप *(सल्ल.)* आदत के ख़िलाफ़ चुप-चुप से बैठे हैं। उनमें अबू-जहल भी था और अदी का बेटा मुतइम भी था। अबू-जहल ने इस तरह उदास देखा तो उठकर क़रीब आया और बोला—

"मुहम्मद! क्या हुआ?! आज कोई नई बात तो नहीं?"

आप *(सल्ल.)* को अपनी बात कहने का मौक़ा मिल गया। फ़रमाया—

"हाँ, आज रात मुझको सैर कराई गई है।"

अबू-जहल : "कहाँ की?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "बैतुल-मक़दिस की।"

यह सुनकर अबू-जहल की हँसी फूटी पड़ रही थी। क़रीब था कि वह ज़ोर का ठट्ठा लगाता, लेकिन उसने अपने को रोका। क्योंकि एक कामियाब हथियार उसके हाथ आ रहा था, आप *(सल्ल.)* को नाकाम बनाने के लिए, आप *(सल्ल.)* के बारे में लोगों के दिलों में सन्देह डालने के लिए और आप *(सल्ल.)* की बातों को संदिग्ध बनाने के लिए।

वह आप *(सल्ल.)* का साहस बढ़ाते हुए बोला, "अच्छा अगर औरों को भी बुला लूँ तो क्या उनसे भी ऐसे ही बयान कर दोगे?"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "हाँ!"

अबू-जहल ने ज़ोर से आवाज़ लगाई, "ऐ, कअब-बिन-लुई के कुटुम्बवालो!"

झट-पट सारे लोग जमा हो गए। "अबुल-हकम! क्या बात है?" उसने आप *(सल्ल.)* की ओर इशारा किया कि "जो अभी सुनाया है, ज़रा इन लोगों को भी सुना दो।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "आज रात बुराक़ नामक एक जानवर आया। उसपर बैठकर मैंने बैतुल-मक़दिस की सैर की। वहाँ पहुँचा तो नबियों

की जमाअत आई। उनमें इबराहीम *(अलैहि.)* भी थे। मूसा और ईसा *(अलैहि.)* भी थे। मैंने उन सबको नमाज़ भी पढ़ाई।"

यह सुनकर अधिकतर लोग बेक़ाबू हो गए और एक ज़ोर का ठट्ठा लगा। अबू-जहल हँसी उड़ाते हुए बोला—

"अच्छा, तो सारे नबी ज़िन्दा करके तुम्हारे पास लाए गए थे?! ज़रा उनका रंग-रूप तो बयान करो!"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "ईसा *(अलैहि.)* न तो छोटे क़द के हैं और न ज़्यादा लम्बे। सीना चौड़ा है, शरीर लालिमा लिए हुए है। सिर के बाल भी कुछ लाली लिए हुए हैं। मूसा *(अलैहि.)* का शरीर भारी-भरकम और कुछ साँवला है और क़द लम्बा है और ख़ुदा की क़सम इब्राहीम*(अलैहि.)* सबसे ज़्यादा मुझसे मिलते-जुलते हैं। सूरत में भी और सीरत में भी।"

यह सुनकर सबने दाँतों तले उंगलियाँ दबा लीं! मुहम्मद यह क्या कह रहे हैं? ये जो कुछ कहे रहे हैं, क्या यह सच है? या झूठ और मनगढ़न्त है?

कुछ दिलों पर तो आप *(सल्ल.)* की बड़ाई और महानता का सिक्का बैठ गया। कुछ लोगों की अक़्लें हैरान और दिमाग़ परेशान हो गए। कुछ सन्देहों में पड़ गए, कुछ आप *(सल्ल.)* को झुठलाने और मज़ाक़ उड़ाने में लग गए और कुछ लोग आपके प्यारे दोस्त अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर पहुँचे कि उनको भी यह अजीब ख़बर सुना दें! उन्होंने अबू-बक्र *(रज़ि.)* से कहा—

"अबू-बक्र! ज़रा अपने नबी की तो सुनो। कहते हैं कि आज रात मुझे बैतुल-मक़दिस की सैर कराई गई है।"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* : "क्या उन्होंने यह बात कही है?"

मुशरिक : "जी हाँ।"

अबू बक्र *(रज़ि.)* : "अगर उन्होंने ऐसा कहा है तो बेशक सच कहा है।"

मुशरिक : "यह भी कोई यक़ीन में आने की बात है? वे बैतुल-मक़दिस गए और सुबह से पहले ही लौट भी आए?"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* : "बेशक। यही क्या? मुझे तो इससे भी बढ़कर अजीब बातों पर यक़ीन है। वे कहते हैं कि रात हो या दिन कोई भी

समय हो, आकाश से मेरे पास ज़रा-सी देर में ख़बरें आ जाती हैं। और मुझे इसमें कोई शक नहीं है। तुम तो बैतुल-मक्दिस तक ही आने-जाने पर हैरान हो। बताओ, यह कितनी अजीब बात है कि मिनटों और सेकेण्डों में आसमान से वह्य आ जाती है।''

फिर अबू-बक्र *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास आए। उस समय आप काबा में थे और मुशरिक लोग आपसे कह रहे थे—

''मुहम्मद! अब तक तो तुम्हारे बारे में हमें केवल शक ही था, लेकिन आज यक़ीन हो गया कि सचमुच तुम झूठे हो। अपनी ओर से गढ़-गढ़ के हर बात कहते हो। हम लोग तो ऊँटों पर बैतुल-मक़दिस जाते हैं तो एक महीना पहुँचने में लगता है और एक महीना वहाँ से वापस आने में, और तुम कहते हो कि एक ही रात में गए भी और वापस भी आ गए? लात और उज़्ज़ा की क़सम! हम तुम्हारी यह बात बिलकुल नहीं मान सकते। बिलकुल झूठ है, सरासर झूठ।''

अबू-बक्र *(रज़ि.)* : ''मुहम्मद झूठ नहीं बोलते। वास्तव में आप जो कुछ कह रहे हैं बिल्कुल सच कह रहे हैं।''

मुतइम : ''मुहम्मद! ज़रा बैतुल-मक़दिस का नक़्शा तो बयान करो।''

अबू-बक्र *(रज़ि.)* समझ गए कि मुतइम आप *(सल्ल.)* को बेबस करना चाहता है। इसलिए उनकी इच्छा हुई कि आप *(सल्ल.)* बयान कर दें, ताकि आपका सच्चा होना साबित हो जाए। उन्होंने आपसे अर्ज़ किया।

''अल्लाह के रसूल! बयान कर दीजिए। मैं तो बैतुल-मक़दिस देख चुका हूँ।''

आप *(सल्ल.)* बेझिझक वहाँ का नक़्शा बयान करने लगे, हालाँकि इससे पहले आप वहाँ कभी न गए थे। वहाँ जितने निशान थे, जितनी पहचानें थीं, सब बयान कर दीं। आप बयान कर रहे थे और लोग चुप-चाप ताज्जुब और हैरत के साथ गुमसुम सुन रहे थे।

लेकिन अभी बात ख़त्म भी न हुई थी कि उनकी हठधर्मी फिर जाग उठी। शक्की अन्दाज़ में सिर हिलाते हुए बोले—

''किसी ने तुम्हें यह सब बता दिया है। कोई और खुला सुबूत लाओ।''

आप *(सल्ल.)* रास्ते में जिन-जिन चीज़ों के पास से गुज़रे थे, उनको

बयान करते हुए आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि फ़ुलाँ-फ़ुलाँ क़ाफ़िलों से मेरी मुलाक़ात हुई। उन-उन बस्तियों से मैं गुज़रा। ये-ये-ऊँटनियाँ मैंने देखीं। इतने क़ाफ़िले जल्द ही पहुँचनेवाले हैं और इतने अभी कुछ फ़ासले पर हैं। फिर उन क़ाफ़िलों के साथ ये-ये सामान हैं और उनके जानवर ऐसे-ऐसे हैं।

मुशरिक : "तुम्हारी बातों पर हम ऐसे कैसे यक़ीन कर लें? ज़रा ठहरो, क़ाफ़िलों को आ जाने दो। उनसे भी पूछ लें कि उस रात कहाँ थे? और जो-जो निशानियाँ तुम बता रहे हो, उनकी जाँच भी कर लें।"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* बोल उठे : "अल्लाह के रसूल! आपने सच फ़रमाया।"

आप *(सल्ल.)* ने सिर झुका लिया। कुछ देर इसी हालत में रहे। फिर सिर उठाया और अबू-बक्र *(रज़ि.)* की ओर देखते हुए फ़रमाया : "अल्लाह ने तुमको 'सिद्दीक़' की उपाधि प्रदान की।"

सभा ख़त्म हो गई। लोग इधर-उधर फैल गए। लेकिन अब जहाँ देखिए यही चर्चा थी। जिधर देखिए, इसी का ज़िक्र था। जहाँ दो आदमी जमा होते इसी तरह की बातें करते—

"क्या यह घटना सही है? क्या यह बात अक़्ल में आती है? क्या इतनी देर में इतनी दूरी की सैर मुममिन है? क्या पता? मुहम्मद ने झूठ का पुल बाँधा हो?"

कुछ ही दिन बीते थे कि वे क़ाफ़िले आ गए, जिनका वर्णन नबी*(सल्ल.)* ने किया था। देखा गया तो सामान वही थे, जो आप *(सल्ल.)* ने बताए थे। जानवर भी बिलकुल वैसे ही थे।

तो क्या मुशरिकों ने अब आप *(सल्ल.)* के सामने सिर झुका दिए? आप (सल्ल.) को अल्लाह का नबी मान लिया? नहीं। उनकी हठधर्मी को और जोश आ गया, बोले—

"मुग़ीरा के बेटे वलीद ने कहा था कि मुहम्मद जादूगर है। उसने कोई ग़लत थोड़े ही कहा था। देखो, इन बातों से उसकी पुष्टि होती है। वास्तव में कितनी सच्ची बात कही थी उसने!"

यह तो था मुशरिकों का हाल। मुसलमानों के लिए भी यह घटना कुछ मामूली न थी। यह एक फ़ैसलाकुन मोड़ था, जिसने खरे-खोटे को अलग कर दिया। मालूम हो गया कि किसका ईमान मज़बूत है और

कौन अभी ईमान से दूर है। जिसका ईमान मज़बूत था, इस घटना के बाद और अधिक चमक उठा। उसमें और अधिक मज़बूती और ताज़गी आ गई, मगर जिनके दिल बीमार थे और ईमान बेजान, वे तरह-तरह के भ्रम और शक में पड़ गए। वे सन्देहों के भँवर में घिर गए और आख़िरकार दीन से फिर गए।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* अपने सच्चे साथियों के बीच बैठे। अल्लाह ने उनको जो बड़ी-बड़ी नेमतें दी थीं, उनका ज़िक्र करने लगे। बैतुल-मक़दिस से आकाश पर जाने का हाल भी सुनाया। वहाँ क़ुदरत के जो जलवे देखे थे, उनको भी बयान किया। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया कि इस-इस तरह हज़रत जिबरील *(अलैहि.)* मुझे पहले आकाश पर ले गए। वहाँ इनसानों के बाप हज़रत आदम *(अलैहि.)* मिले। उनका हाल यह था कि जब दाईं ओर देखते तो खिल उठते और हँसने लगते और बाईं ओर देखते तो मारे ग़म के आँसू भर लाते, क्योंकि दाईं ओर उनकी नेक औलाद के कर्म थे और बाईं ओर बुरी औलाद के।

हज़रत आदम *(अलैहि.)* ने आप *(सल्ल.)* को देखा तो बोले—

"तुम्हारा आना मुबारक, ऐ नेक नबी! ऐ नेक बेटे!"

आप *(सल्ल.)* ने पूछा : "जिबरील! यह कौन हैं?"

उन्होंने जवाब दिया : "ये आदम *(अलैहि.)* हैं। सारे इनसानों के बाप।"

फिर जिबरील *(अलैहि.)* आप *(सल्ल.)* को दूसरे आकाश पर ले गए। फिर तीसरे पर, इसी तरह आगे बढ़ते गए। आप *(सल्ल.)* जिस नबी के पास से गुज़रते, ये मनमोहक शब्द कानों में गूँजते—

"तुम्हारा आना मुबारक, ऐ नेक नबी! ऐ नेक भाई!"

इसी तरह आप *(सल्ल.)* सातवें आकाश पर पहुँच गए। वहाँ हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* मिले। देखते ही बोले—

"तुम्हारा आना मुबारक, ऐ नेक नबी! ऐ नेक बेटे!"

आप *(सल्ल.)* आगे बढ़े, और आगे बढ़े, और बढ़ते ही गए। रास्ते में सौन्दर्य के रूप भी देखे और प्रकोप के दृश्य भी। हज़ारों फ़रिश्ते भी नज़र आए जो सजदे में पड़े हुए रब का गुणगान कर रहे थे। बढ़ते-बढ़ते आप *(सल्ल.)* अल्लाह के सिंहासन के क़रीब पहुँच गए। वहाँ आप *(सल्ल.)* पर और आप *(सल्ल.)* की उम्मत पर पचास नमाज़ें फ़र्ज़ हुईं। वापस हुए

तो हज़रत मूसा *(अलैहि.)* के पास से गुज़र हुआ।

"कहिए, क्या फ़र्ज़ हुआ, उम्मत पर?" उन्होंने देखते ही पूछा।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "पचास नमाज़ें।"

मूसा *(अलैहि.)* : "लौटकर जाइए और रब से कमी करने की दरख़ास्त कीजिए।"

आप *(सल्ल.)* वापस गए और कमी करने की दरख़ास्त की। अल्लाह ने आधी नमाज़ें कम कर दीं। वापसी पर फिर हज़रत मूसा *(अलैहि.)* से मुलाक़ात हुई। उन्होंने सुना तो फ़रमाया :

"फिर जाइए और कमी की दरख़ास्त कीजिए। इतनी नमाज़ें भी उम्मत पर कठिन होंगी।"

आप *(सल्ल.)* फिर लौट गए और कमी का अनुरोध किया। अल्लाह ने दरख़ास्त क़बूल कर ली और कुछ नमाज़ें फिर कम कर दीं। वापसी में मूसा *(अलैहि.)* को बताया तो उन्होंने आप *(सल्ल.)* से फिर कहा कि "जाइऐ और कमी की फिर गुज़ारिश कीजिए।"

आप *(सल्ल.)* फिर तशरीफ़ ले गए। अल्लाह ने इस बार पाँच नमाज़ें कर दीं और फ़रमाया–

"ये पाँच नमाज़ें हैं। लेकिन सवाब इनका पचास ही का है। मेरे फ़ैसले बदला नहीं करते।"

पूरी रात बीत गई और आप *(सल्ल.)* के प्यारे साथी बैठे रहे। आप *(सल्ल.)* ने आकाश पर जो-जो दृश्य देखे थे, ख़ुदा की क़ुदरत के जो-जो जलवे नज़र आए थे, उन्हें आप पूरी दिलचस्पी के साथ सुना रहे थे। साथी मज़े ले-लेकर सुन रहे थे। आपने जन्नत में जो-कुछ देखा वह भी बयान किया और नेक साथियों को ख़ुश ख़बरी भी दी कि 'जन्नत में ये-ये नेमतें तुम्हारा इन्तिज़ार कर रही हैं।'

लेकिन जो दीन से फिर गए उनका क्या हुआ? उनके बारे में ख़ुद अल्लाह ने फ़रमाया–

"और जो कुछ हमने तुम्हें दिखाया है उसे तो बस उन लोगों के लिए एक आज़माइश बना दिया है।" (क़ुरआन, 17:60)

☆☆☆

कारवाँ बनता गया

(1) मेराज की घटना और कमज़ोर मुसलमान
(2) अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की क़ाफ़िलों से मुलाक़ात
(3) कुछ ख़ुशक़िस्मत आत्माएँ इस्लाम के प्रकाश में
(4) ईसाइयों का एक प्रतिनिधिमण्डल और उसकी प्रतिक्रिया
(5) क़बीलों में आप *(सल्ल.)* का दौरा
(6) औस और ख़ज़रज का गृह-युद्ध
(7) इस्लाम की किरणें ख़ज़रज क़बीले में
(8) अक़्बा की पहली बैअत
(9) मदीना में इस्लाम चन्द्र का प्रकाश
(10) चचा अब्बास *(रज़ि.)* का भाषण
(11) मदीनावासियों का उल्लास
(12) अक़्बा की दूसरी बैअत
(13) मुशरिकों की बौखलाहट
(14) मदीना में नई ज़िन्दगी की सुबह

(1)

"बुराई का जवाब भलाई से दो। फिर अचानक तुममें और जिस व्यक्ति में दुश्मनी थी, वह ऐसा हो जाएगा जैसे कोई जिगरी दोस्त।" (क़ुरआन)

अँधेरे जब घेर लें तो एक मोमिन को क्या करना चाहिए? दुश्मनों के साथ क्या सुलूक करना चाहिए? बेज़ार दिलों में इस्लाम को कैसे बसाना चाहिए? क़ुरआन की यह आयत इन्ही सवालों का जवाब है। अल्लाह कहता है कि ऐ नबी! ऐसे नाज़ुक वक़्त में आपको बड़ी होशियारी और सूझ-बूझ से काम करना है। दुश्मनों से बात कीजिए तो बड़े मीठे अन्दाज़ में। एतिराज़ों का जवाब दीजिए तो बड़े ही अच्छे अन्दाज़ में, किसी को कुछ समझाइए तो बड़े प्रेम-भाव से। अगर वे ज़ुल्म व सितम के पहाड़ तोड़ें तो सब्र से काम लें, क्योंकि जो सब्र करता है, अल्लाह उसकी मदद करता है।"

बहुत से लोग अक़्ल के कोरे थे। दिल उनके अन्धे थे और सूझ-बूझ से वे बिलकुल महरूम थे। इसलिए मेराज की हैरतनाक घटना सुनकर ये लोग अल्लाह की हिकमत को न समझ सके और शैतान के फंदे में आकर दीन का विरोध करने लगे। इससे मुसलमानों को बड़ा दुख पहुँचा। किन्तु मुशरिकों के हाथ मज़बूत हो गए और दिमाग़ आसमान पर जा पहुँचे। उन्होंने आप *(सल्ल.)* के ख़िलाफ़ जंग का खुला एलान कर दिया। तय कर लिया कि किसी के साथ ज़रा भी रिआयत न करेंगे। मुसलमानों से हमेशा लड़ते रहेंगे, उन्हें घेर-घेर कर सताते रहेंगे, यहाँ तक कि वे घबरा कर मुहम्मद का साथ छोड़ दें और उनके सन्देश और शिक्षाओं से बेज़ार हो जाएँ।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* ये सारी तकलीफ़ें झेलते रहे और जवाब में हमेशा भलाई का नमूना बने रहे। अरब में तीन बहुत मशहूर बाज़ार उकाज़, मिजन्ना और ज़िलमजाज़ थे। हाजी लोग हर साल मक्का जाने से पहले इन बाज़ारों में जाते। आप *(सल्ल.)* भी वहाँ पहुँचते। उनसे मुलाक़ातें करते और मिना और अक़्बा जाते हुए हाजियों के क़ाफ़िले

जहाँ ठहरते, आप वहाँ जाकर उनसे मिलते। उनको दीन का पैग़ाम सुनाते। क़ुरआन की आयतें उनके सामने पेश करते। इन आयतों में शिर्क के बुरे अंजाम के डरावे होते। ईमान के अच्छे जंजाम के वादे होते। फिर आप उनसे सहयोग की अपील करते। आपकी ख़्वाहिश थी कि क़ुरैश की बदसुलूकी से छुटकारा मिल जाए, ताकि आज़ाद होकर दीन की दावत दे सकें और रब का भेजा हुआ सन्देश पहुँचा सकें।

लेकिन क़ुरैश इसे कैसे सहन कर सकते थे कि आप *(सल्ल.)* इसी तरह दीन फैलाते रहें। लोगों को इस्लाम की ओर बुलाते रहें। उन्हें यह भी बर्दाश्त न था कि आपके जाँनिसारों और मददगारों की तादाद बढ़े, इसी लिए जब आप कहीं जाते तो अबू-लहब या दूसरे ग़ुण्डे पीछे हो लेते और जब आप किसी को इस्लाम की दावत देते तो वे तुरन्त आपकी बात को ग़लत साबित करने के लिए कहते—

"भाइयो! यह तो झूठा है, जादूगर है। खुद भटका हुआ है, औरों को भी भटकाता है। देखो, इसकी बातों में हरगिज़ न आना। इसकी एक न सुनना।"

यह सुनकर क़ाफ़िलेवालों ने कानों पर हाथ धर लिए। आप *(सल्ल.)* को बुरा-भला कहा और मुँह फेर लिया। सैकड़ों इनसानों में कुछ ही थे, जिन्होंने आपकी बातें सुनीं और क़बूल कीं। इन्ही खुशक़िस्मतों में तुफ़ैल दौसी भी थे। ये बहुत ऊँचे घराने के शाइर थे। बड़े होशियार और अक़्लमन्द व्यक्ति थे। जब ये हज करने के मक़सद से काबा आए तो क़ुरैश ने कान भर दिए और आप *(सल्ल.)* से दूर रहने की ताकीद की। उन्होंने क़ुरैश की बातों पर यक़ीन कर लिया और तवाफ़ करने गए तो इस अन्देशे से अपने कान बन्द कर लिए कि कहीं आप *(सल्ल.)* की कोई बात कानों में न पड़ जाए, काबा के निकट आए तो उस समय आप नमाज़ पढ़ रहे थे। तवाफ़ करते हुए आपके पास से गुज़र होता तो कानों में कोई न कोई आयत पड़ ही जाती। वे आयतें उन्हें बहुत भली मालूम हुईं। उन्होंने दिल में सोचा—

"उफ़, मेरी बेवक़ूफ़ी! मैं तो एक मशहूर शाइर हूँ। अक़्ल और समझ की दौलत से मालामाल हूँ। भले-बुरे में ख़ूब अन्तर कर सकता हूँ। फिर उसकी बातें मैं क्यों न सुनूँ। अच्छी हुई तो ठीक है, वरना

ठुकरा दूँगा?"

आप *(सल्ल.)* घर लौटने लगे तो वे भी साथ हो लिए। उन्होंने आपको पूरी दास्तान सुनाई। आपने उनको क़ुरआन सुनाया। क़ुरआन सुनना था कि दिल पिघल गया। एक अजीब तरह की ठण्डक और राहत उन्हें महसूस हुई। फिर आपने उनके सामने इस्लाम का पैग़ाम रखा। उन्होंने बड़ा साहस दिखाया। तुरन्त इस्लाम क़बूल कर लिया और कहा—

"अल्लाह के रसूल! मेरे क़बीले का दिल मेरे हाथ में है। हर एक मुझपर जान देता है। कोई बात कहूँ तो उस पर अमल करना अपने लिए गर्व समझता है। जाता हूँ, उनको भी इस्लाम की दावत दूँगा।"

वे लौटकर आए। घरवालों को दावत दी। सबको उनपर यक़ीन और भरोसा था। वे फ़ौरन तैयार हो गए और इस्लाम क़बूल कर लिया। बाद में उनकी क़ौम भी मुसलमान हो गई।

सारे अरब में आप *(सल्ल.)* की चर्चा हो गई। ईसाइयों को मालूम हुआ तो उन्होंने छान-बीन के लिए एक नुमाइन्दा दल भेजा। आप *(सल्ल.)* ने उनको क़ुरआन की कुछ आयतें सुनाईं। सुनते ही उनके दिल दहल गए और आँखों में आँसू आ गए। अब क्षण भर की देरी भी उन्हें पसन्द न थी, वे तुरन्त ईमान ले आए। जो कुछ आप *(सल्ल.)* ने बताया, उसे क़बूल कर लिया और मुसलमान होकर वापस हुए।

रास्ते में अबू-जहल और कुछ क़ुरैशी मिल गए। देखते ही ग़ुर्राए—

"अल्लाह तुम्हारा नाश करे! क़ौम ने भेजा था कि सच्चाई का पता लगाओ। सही बात मालूम करो, लेकिन तुम्हारा यह हाल! तुम तो बे पेंदी के लोटे निकले। बैठे भी नहीं कि उसके जादू में आ गए। अरे अपना धर्म भ्रष्ट कर बैठे!"

उन नुमाइन्दों ने उनकी ओर कोई ध्यान न दिया। सब सुनी-अनसुनी कर दी। ईमान की दौलत पाकर उनका दिल ख़ुशी से भरा हुआ था। वे बेक़रारी के साथ बढ़े चले जा रहे थे कि क़ौम को नए धर्म की मुबारक ख़बर दें।

आप *(सल्ल.)* की ख़बर सुनकर जो लोग इस्लाम की ओर आकृष्ट हुए, और फिर उससे मालामाल भी हुए, उनमें सामित के बेटे सुवैद *(रज़ि.)*

भी हैं। ये मदीना के बाइज़्ज़त लोगों में से थे। शाइरी में बड़े माहिर थे। बहादुरी में भी अपनी मिसाल आप थे। ख़ानदान की हैसियत से भी ऊँचा दर्जा रखते थे। इसलिए लोग उनको 'कामिल' (परिपूर्ण) कहते। ये भी हज करने के मक़सद से मक्का आए। आप *(सल्ल.)* को मालूम हुआ तो उनके पास गए, उनके सामने इस्लाम की शिक्षाएँ रखीं और उन्हें खुदा की बन्दगी की ओर बुलाया। सुवैद बोले, "शायद जो मेरे पास है, वही आपके पास भी है।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "क्या है आपके पास?"

सुवैद : "हकीम लुक़मान की हिकमतें।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "ज़रा कुछ सुनाइए तो।"

सुवैद को जितनी बातें मालूम थीं सब सुना दीं। आप *(सल्ल.)* ध्यान से सुनते रहे। फिर फ़रमाया "ये तो बहुत अच्छी बातें हैं, लेकिन जो चीज़ मेरे पास है, वह और भी बेहतर है। मेरे पास क़ुरआन है। खुदा की आख़िरी किताब। वह नूर और हिदायत की किताब है।"

आप *(सल्ल.)* ने उनको क़ुरआन सुनाया और इस्लाम क़बूल करने की दावत दी। सुवैद तैयार हो गए और बोले, "यह तो वास्तव में बहुत उत्तम है!"

फिर सुवैद मदीना वापस चले गए। उन्होंने जो कुछ सुना था दिमाग़ में महफ़ूज़ था। उसे बार-बार सोचते रहे। बाद में मुसलमान की हालत में शहीद हुए। क़िस्सा यह हुआ कि मदीना में यहूदी भी आबाद थे। ये लगाने-बुझाने और चालें चलने में बड़े माहिर थे। इसी का करिश्मा था कि औस और खज़रज क़बीले एक दूसरे के दुश्मन हो गए। उनमें बड़े ज़ोर का गृह-युद्ध छिड़ा। सुवैद *(रज़ि.)* उसी में क़त्ल हुए।

मदीना से आकर जो लोग इस्लाम लाए, उनमें अयास *(रज़ि.)* भी हैं। ये मुआज़ के बेटे थे। अभी बहुत ही कम उम्र थे। औस और खज़रज में लड़ाई तो चल ही रही थी। हर एक की यही कोशिश थी कि अरब के जितने क़बीले मिल सकें, उनको अपना सहयोगी बना ले। इस तरह दूसरे पक्ष पर विजय प्राप्त कर ले। अतः औस के कुछ लोग आए कि क़ुरैश को अपना सहयोगी बनाएँ। इन्ही में अयास भी थे। आप *(सल्ल.)* को पता चला तो उनके पास गए और उन्हें इस्लाम की ओर बुलाया।

क़ुरआन की कुछ आयतें भी सुनाईं। अयास ने ये बातें सुनीं तो बोले—

"ऐ मेरी क़ौम! ख़ुदा की क़सम, जिसके लिए आप लोग आए हैं, उससे यह कहीं बेहतर है।"

अयास की क़ौम को तो लड़ाई की धुन थी और रात-दिन इसी की फ़िक्र। क़ाफ़िले का सरदार अबुल-हैस था। उसने ज़मीन से कंकरियाँ उठाईं और उनके मुहँ पर मारते हुए बोला—

"चुप भी रह। हम कोई इसलिए थोड़े ही आए हैं।"

लेकिन अयास *(रज़ि.)*[1] ने उसी समय इस्लाम क़ुबूल कर लिया। फिर कुछ ही दिन बीते कि औस और खज़रज में युद्ध की आग भड़क उठी।

आप *(सल्ल.)* खुद बहुत से क़बीलों में गए। उनको इस्लाम की तरफ़ बुलाया। बड़ी दिल-सोज़ी से मदद और सहयोग की अपील की, लेकिन लोगों के कानों पर जूँ तक न रेंगी। हर एक ने सुनी-अनसुनी कर दी। इसके कई सबब थे—

किसी ने तो सोचा कि हमारा नगर हर एक को पसन्द है। अगर मुहम्मद का साथ दिया तो डर है कि लोगों को नापसन्द हो और फिर यहाँ आना-जाना बन्द हो जाए। क़बीला सक़ीफ़ के लिए रुकावट यही बात थी। ताइफ़ की जलवायु बहुत अच्छी थी। हर एक को पसन्द थी। अतः गर्मियाँ आतीं तो वहाँ रईसों की चहल-पहल होती। सक़ीफ़ को ख़तरा था कि अगर मुहम्मद का साथ दिया तो वे ताइफ़ आना छोड़ देंगे। अरब का मशहूर बुत 'लात' भी वहीं स्थापित था, जो तमाम लोगों की ज़ियारत का केन्द्र था। ईमान लाने से उसके लिए भी ख़तरा था।

कुछ क़बीले ऐसे भी थे, जिन्हें सरदारी की लालसा थी। क़बीला बनू-आमिर का यही हाल था। उन्होंने आप *(सल्ल.)* से कहा—

"हम इस्लाम तो क़बूल कर लेंगे परन्तु आपके बाद सरदारी हम करेंगे।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया "हुकूमत और सरदारी अल्लाह के हाथ में है, जिसको चाहता है, प्रदान करता है।"

यह सुना तो उन्होंने गर्दनें फेर लीं और कहा, "हम तो आपके लिए

---

1. अयास *(रज़ि.)* का प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हिजरत से पहले ही इन्तिक़ाल हो गया। लोगों ने देखा कि आख़िरी वक़्त उनकी ज़ुबान पर तकबीर जारी थी।

गर्दनें कटवाएँ और जब विजय प्राप्त हो जाए तो सरदारी दूसरे करें। जाइए आपकी हमें कोई ज़रूरत नहीं।"

किन्दा, कल्ब, बनू-हुनैफ़ा बनू-मुज़र अरब के मशहूर क़बीले थे। ये और इनके अलावा न जाने कितने क़बीले थे, इन सबने कानों पर हाथ धर लिए। किसी ने भी आप*(सल्ल.)* की मदद न की। वे कहते कि आदमी का हाल घरवाले ही ज़्यादा जानते हैं। अगर इसमें ज़रा भी भलाई होती तो घरवाले क्यों भगाते? इस तरह आपको हर जगह नाकामी हुई। किसी ने भी आपकी हिमायत न की। बहुतों ने तो बड़ी बे रहमी का सुलूक किया और सख़्ती के साथ इनकार कर दिया। अगर कुछ क़बीले इनसानियत के साथ पेश भी आते और शराफ़त के साथ बातें सुनने के लिए तैयार भी होते तो अबू-लहब आ पहुँचता। उनको आपके ख़िलाफ़ भड़काता और कहता—

"यह चाहता है कि तुम 'लात' और 'उज़्ज़ा' को छोड़ दो और इसकी फ़ुज़ूल बातों में फंस जाओ। तो देखो इसकी बातें हरगिज़ न मानना। इसके धोखे में कभी न आना।"

अबू-लहब की बातें सुनकर वे लोग बिदक जाते और फिर उनके भी तेवर बिगड़ जाते।

(2)

औस और ख़ज़रज मदीना के दो मशहूर क़बीले थे। उनमें एक ज़माने से दुश्मनी चली आ रही थी। आप *(सल्ल.)* जब नबी बनाए गए तो यह अनबन पूरे ज़ोरों पर थी और पहले से ज़्यादा ऊँचे पैमाने पर। आपस में तो थी ही, पड़ोसी यहूदियों से भी हो गई। इसी लिए उनमें हमेशा लड़ाई छिड़ी रहती। कभी औस और ख़ज़रज में, कभी औस और यहूद में, कभी ख़ज़रज और यहूद में। कभी औस, ख़ज़रज और यहूद में। इस प्रकार मदीना में किसी न किसी रूप में लड़ाई होती रहती। एक की आग बुझने भी न पाती कि दूसरी भड़क उठती।

यहूदी बड़े मक्कार और साज़िशें करने में बहुत माहिर थे। उन्होंने सोचा कि औस और ख़ज़रज दोनों एक होकर लड़ते हैं। इसमें तो हमारे लिए बड़ा ख़तरा है। हमारे सारे आदमी कटे जा रहे हैं। सारी दौलत डूबती जा रही है। मदीना के हम सरदार थे। अब यह सरदारी भी दम

तोड़ रही है। कोई ऐसी चाल चलनी चाहिए कि दोनों के दिल आपस में बिलकुल ही फट जाएँ। वे एक-दूसरे से कट जाएँ और फिर जुड़ने का नाम न लें। आपस ही में लड़ते-मरते रहें और हमारी तरफ़ रुख़ न करें।

यहूद अपनी इस चाल में सफल हो गए और जो उन्होंने चाहा वही हुआ। औस और ख़ज़रज दोनों एक-दूसरे के नाम तक से जलने लगे। अब हर एक की यही तमन्ना थी कि दूसरे को मिटा कर दम ले। ज़रा-ज़रा सी बात पर जंग के शोले भड़क उठते और फिर महीनों और सालों बुझने का नाम न लेते। इसका अंजाम यह हुआ कि भाईचारे का रिश्ता तार-तार हो गया और स्वयं वे भी थक कर चूर हो गए। उनकी बेशुमार दौलत बर्बाद हो गई और न जाने उनके कितने आदमी मारे गए, लेकिन फिर भी वे बाज़ न आए और ख़ून की होली खेलते ही रहे।

यहूदियों की पॉलिसी कितनी गहरी थी। वे हारे हुए पक्ष का विरोध करते और जीतनेवाले की पीठ ठोंकते, ताकि आख़िरकार दोनों ही बिलकुल कमज़ोर हो जाएँ और इस प्रकार यहूद को अपनी शक्ति और ताक़त को बढ़ने का मौक़ा हासिल हो सके। वे दोनों क़बीलों पर अपनी सरदारी क़ायम रखने की भी कोशिश करते। ख़ुद अपने लिए तो बड़े और फ़ायदेमन्द काम चुन लेते। कारोबारी मण्डियों पर क़ब्ज़ा कर लेते और उनके लिए छोटे और कम लाभवाले काम छोड़ देते।

यहूदी मूसा *(अलैहि.)* के अनुयायी थे। उनके पास ईश-ग्रन्थ और ईश्वरीय क़ानून मौजूद था, जबकि औस व ख़ज़रज मूर्तिपूजक थे। उनके पास कोई किताब न थी। इसलिए यहूद को इस पर भी गर्व था। वे अपनी बड़ाई जताने के लिए उन्हें शर्म दिलाते। उनके सामने उनके अंजाम का बड़ा भयंकर नक़्शा खींचते। एक आनेवाले नबी *(सल्ल.)* के बारे में अपनी पुस्तकों की भविष्यवाणियाँ सुनाते और कहते–

"एक नबी आएगा। उसका समय बस क़रीब ही है। ज़रा वह आ जाए, तब देखना कि हम किस प्रकार तुम्हारे छक्के छुड़ाते हैं। हम उसके साथ हो जाएँगे और फिर तुम आद क़ौम की तरह तबाह व बर्बाद होकर रहोगे।"

काफ़ी दिनों तक मदीनावालों का यही हाल रहा। उस समय भी यही हालात थे, जबकि औस का नुमाइन्दा दल क़ुरैश को अपना

सहयोगी बनाने आया था। उसी अवसर पर प्यारे नबी *(सल्ल.)* की उससे मुलाक़ात हुई थी और आपने उसे इस्लाम की ओर बुलाया भी था। अयास-बिन-मुआज़ ने उसी दम इस्लाम क़बूल कर लिया था और बाक़ी लोगों ने मानने से इनकार कर दिया था, क्योंकि उस समय वे लड़ाई की धुन में थे और इसी के नशे में चूर थे। किसी और बात की तरफ़ वे ध्यान नहीं दे सकते थे।

औस क़बीले के लोगों ने हालाँकि आप *(सल्ल.)* की बातों में कोई दिलचस्पी न ली थी और बड़े रूखेपन से इनकार कर दिया था, परन्तु जब घर लौटे तो उनके मन पर इसका काफ़ी असर था और दिमाग़ में बार-बार आपकी बातें गूँज रही थीं।

एक बार फिर औस और ख़ज़रज में युद्ध के तेज़ और भयंकर शोले भड़क उठे। क़रीब था कि पूरी आबादी उनकी लपेट में आ जाती और सारे लोग भस्म होकर रह जाते, लेकिन इत्तिफ़ाक़ की बात कि यहूदी औस से मिल गए। इस प्रकार उनकी विजय हो गई और लड़ाई थम गई।

अब दोनों क़बीलों को अपनी-अपनी हालत पर विचार करने का मौक़ा मिला और उन्होंने अंजाम का जायज़ा लिया। जब सही आँकड़े सामने आए तो दोनों ही के होश उड़ गए। उन्हें पता चला कि उसमें अनगिनत लोगों की जानें गईं और बेहिसाब धन बर्बाद हो गया। सारी ताक़त ख़त्म हो गई और उनकी शान व शौकत का महल धरती पर आ रहा। उन्होंने महसूस किया कि अब तो हम दोनों ही यहूदियों के ग़ुलाम और अधीन हैं, हारनेवाले भी और जीतनेवाले भी।

यही वे भयंकर लड़ाइयाँ हैं, जो 'बुआस की लड़ाई' के नाम से मशहूर हैं। जिनकी तबाहियों और बर्बादियों के क़िस्से अब तक भुलाए नहीं जा सके हैं।

लड़ाई का यह भयंकर अंजाम देखकर दोनों क़बीले चौंक गए। दोनों ने मिलकर यह अहद किया कि 'अब हम एकता के साथ मुहब्बत और प्यार से रहेंगे। और समय पड़ने पर एक-दूसरे की मदद करेंगे।'

सन्धि और सुलह के बाद दोनों ने तय किया कि औस और ख़ज़रज का सरदार एक ही हो। इसके लिए उनकी नज़रें अब्दुल्लाह-बिन-उबई

पर पड़ीं। यह ख़ज़रज का आदमी था। सूझ-बूझ और होशियारी में मशहूर था। अच्छी तदबीर के लिए हर ओर उसकी चर्चा थी। असर व रुसूख़ में भी सबसे आगे था। अतः सबने इस फ़ैसले का समर्थन किया और तय हो गया कि उसे ही सरदार बनाया जाए। ताजपोशी के लिए तारीख़ भी तय हो गई, लेकिन अचानक हालात का रुख़ बदला। यह काम होते-होते रह गया। ईश्वर की ओर से उनके सम्मान के लिए कुछ और ही सामान हो रहा था, जो उनके लिए ज़्यादा बेहतर था, और उनके अपने सोचे हुए उपाय से कहीं ज़्यादा प्रभावकारी था। अर्थात तौहीद का वह पैग़ाम जो उन्हें आपस में जोड़ देनेवाला था और अल्लाह का वह रसूल जिसकी रहनुमाई क़बूल करके वे दुनिया और आख़िरत में सफल होनेवाले थे।

(3)

नुबूवत का दसवाँ साल था। बुआस की लड़ाई के बाद प्रतिष्ठित महीने आए तो ख़ज़रज क़बीले के छः आदमी हज के इरादे से निकले। उनके साथ बनू-नज्जार क़बीले के भी दो आदमी थे। ये रिश्ते में अब्दुल-मुत्तलिब के मामूं थे। वही अब्दुल-मुत्तलिब जो प्यारे नबी *(सल्ल.)* के दादा थे। ये लोग मक्का जाते हुए अक़्बा नामक एक स्थान पर पहुँचे तो नबी *(सल्ल.)* से मुलाक़ात हो गई। देखते ही आपने पूछा—

"आप लोग कौन हैं? किस क़बीले के हैं? कहाँ से आ रहे हैं?"

"हम ख़ज़रज क़बीले के हैं और मदीना से आ रहे हैं।"

"क्या यहूदियों के पड़ोसी हैं? यहूदी भी तो वहीं रहते हैं?"

"हाँ, यहूदी हमारे पड़ोसी हैं। हम वहीं रहते हैं?"

"मौक़ा हो तो बैठिए कि कुछ बातें की जाएँ।"

"जी हाँ, क्यों नहीं। हमें आप से बातें करके बड़ी ख़ुशी होगी।"

वे आप *(सल्ल.)* के पास बैठ गए। आपने उनको दीन की दावत दी। इस्लाम की बातें उनके सामने रखीं। क़ुरआन से भी कुछ पढ़कर सुनाया और बताया कि मैं अल्लाह का रसूल हूँ। आपकी बातें सुनकर वे बड़े हैरान हुए। आपकी बातों ने उनके दिल को बड़ा प्रभावित किया। वे आपस में कहने लगे—

"ख़ुदा की क़सम! ये वही नबी हैं, जिनके बल पर यहूदी हमको

धमकी दे रहे थे। ख़ुदा की क़सम, अब वे ईमान में हमसे बाज़ी नहीं ले जा सकते।"

वे लोग उसी समय इस्लाम में दाख़िल हो गए। जो कुछ आप *(सल्ल.)* ने कहा, कानों ने सुना और मन में वह महफ़ूज़ हो गया। फिर वे बोले—

"अल्लाह के रसूल! हमारी क़ौम में जितनी बुराइयाँ और आपसी बैर है, उतना किसी भी क़ौम में नहीं। हो सकता है कि अल्लाह आपकी बरकत से हमारे दिलों को जोड़ दे और सब आपकी रहनुमाई में जमा हो जाएँ। क्योंकि आपसे ज़्यादा सर्वप्रिय तो कोई और हो ही नहीं सकता।"

इस्लाम क़बलू करने के बाद उन लोगों ने ख़ुशी-ख़ुशी हज किया, फिर अपनी क़ौम की ओर वापस लौटे। वे अपनी क़ौम को नए नबी की मुबारक ख़बर देने के लिए बेचैन हो रहे थे। वही नबी, जिसके आने की यहूदी बातें किया करते थे। वहाँ पहुँचे तो मालूम हुआ कि औस पहले ही यह ख़ुश-ख़बरी सुन चुके हैं। उन्होंने यह भी देखा कि न जाने कितने दिल नए धर्म को अपनाने के लिए मचल रहे हैं और न जाने कितने सीने उसको अपने अन्दर बसाने के लिए सरापा इन्तिज़ार बने हुए हैं।

अगले साल जब हज के दिन आए तो औस और ख़ज़रज के बारह आदमी घर से निकले। अक़्बा में उनकी आप *(सल्ल.)* से मुलाक़ात हो गई। वहीं पर उन लोगों ने इस्लाम क़बूल कर लिया और आपके सामने यह प्रतिज्ञा की कि अब हम किसी को अल्लाह का साझीदार न बनाएँगे। चोरी से दूर रहेंगे। औलाद को क़त्ल नहीं करेंगे। किसी पर तोहमत न लगाएँगे।

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "अगर तुमने इस वचन को निभाया तो अल्लाह तुम्हें जन्नत देगा और अगर इनमें से कोई बुराई तुमसे हो गई तो रब की मर्ज़ी पर होगा। वह चाहेगा तो माफ़ कर देगा और चाहेगा तो सज़ा देगा।"

यही प्रतिज्ञा 'बैअते-अक़्ब-ए-ऊला' (अक़्बा की पहली प्रतिज्ञा) के नाम से मशहूर हुई। यह घटना नुबूवत के ग्यारहवें साल की है।

जब वे लोग मदीना लौटे तो नबी *(सल्ल.)* ने मुसअब-बिन-उमैर *(रज़ि.)* को भी उनके साथ कर दिया, ताकि वे मदीनावालों को क़ुरआन पढ़ाएँ। उन्हें इस्लाम की बातें बताएँ और दीन की शिक्षाओं से वाक़िफ़ कराएँ।

मदीना में इस्लाम बहुत तेज़ी से फैला। लोग पहले ही से सत्य के प्यासे थे और मुद्दत से उसके लिए तड़प रहे थे। इस्लाम को पाकर उनकी प्यास बुझी और दिल की बेचैनी दूर हुई। हज़रत मुसअब *(रज़ि.)* पूरे जोश और उमंग से उनको दीन की बातें सिखा रहे थे। कुछ लोग जो झूठी इज़्ज़त में डूबे हुए थे और इस्लाम की तरफ़ देखना भी अपने लिए शर्म की बात समझते थे, उन्होंने भी जब दीन की बरकतें देखीं और क़ुरआन की आयतें सुनीं, तो वे भी पत्थर से मोम हो गए। ऐसे लोग यही नहीं कि ख़ुद इस्लाम की ओर आए, बल्कि वे दूसरों को भी इस्लाम की ओर बुलाते।

हज़रत मुसअब *(रज़ि.)* मदीनावालों को इस्लाम सिखाते रहे। नमाज़ें पढ़ाते रहे, यहाँ तक कि घर-घर दीन की रौशनी फैल गई। गली-गली में इस्लाम की चर्चा होने लगी। बस कुछ ही बद क़िस्मत थे, जो शिर्क पर अड़े रहे और माँ-बाप का धर्म छोड़ने पर तैयार न हुए।

अल्लाह मदीनावालों का भला करे, एक ही साल में वहाँ इतने मुसलमान हुए कि मक्का में सालों में न हो सके।

मदीना के लोगों ने मुहम्मद *(सल्ल.)* के नाम का झण्डा लहराया। हर तरफ़ आपका बोल-बाला किया। और यह ठीक उस समय हुआ जबकि आपकी क़ौम आपको मिटा देन पर तुली हुई थी। इसलिए कोई हैरत की बात नहीं, अगर मुसलमानों के दिल मदीनावालों के प्रेम से भर गए। उनसे क़रीब होने के लिए बेचैन हो गए और उन तक पहुँचने के लिए इस तरह तड़पने लगे, जैसे पिंजरे का क़ैदी कोई पक्षी तड़पता है।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* भी इस बारे में बहुत फ़िक्रमन्द थे, क्योंकि अब आपको ऐसे जाँनिसार मिल गए थे, जो आपका साथ देने के लिए तैयार थे। ऐसे मददगार मिल गए थे, जो आपकी हिमायत के लिए इन्तिज़ार कर रहे थे। और ऐसे सहयोगी मिल गए थे, जो आप पर न्योछावर होने के लिए बेक़रार थे।

फिर निरन्तर ऐसी ख़बरें भी मदीना से आ रही थीं, जो आप *(सल्ल.)* के लिए बड़ी आनन्ददायी, अत्यन्त सुन्दर और उज्ज्वल भविष्य की सूचक थीं।

मदीनावासियों ने दिल-जान से आप *(सल्ल.)* की बातें क़बूल की थीं।

उन्होंने ठान लिया कि आपकी मदद करेंगे और जान पर खेल कर भी आपकी हिफ़ाज़त करेंगे। उनकी बड़ी ख़ाहिश हुई कि काश! उन्हें आपकी सहायता करने का सौभाग्य प्राप्त हो जाए। काश! आप *(सल्ल.)* का साया उन्हें नसीब हो जाए। आपस में उन्होंने कहा—

"ख़ुदा के रसूल मक्का में परेशान हैं। मदद के लिए पुकारते हैं, लेकिन कोई नहीं सुनता। आख़िर यह शर्मनाक मंज़र हम कब तक देखते रहेंगे?"

अतः उन्होंने तय किया कि अब की बार जब हज के दिन आएँगे तो हम मक्का जाएँगे और नबी *(सल्ल.)* को मदीना बुलाएँगे। और उनसे हर प्रकार की हिफ़ाज़त और मदद का वादा करेंगे।

हज़रत मुसअब *(रज़ि.)* मदीना से मक्का लौट आए। जो-जो बातें आप जानना चाहते थे, सब उनसे मालूम कर लीं। हज का ज़माना आया तो मदीना से बहुत बड़ा क़ाफ़िला हज के लिए रवाना हुआ। क़ाफ़िले में मुसलमान भी थे और ग़ैर-मुस्लिम भी। मुसलमानों की तो नीयत थी कि आप *(सल्ल.)* से मिलेंगे और वफ़ादारी व जाँनिसारी का अहद करेंगे। मगर यह एक राज़ था, जिससे उनके मुशरिक साथी बिलकुल बेख़बर थे।

नुबूवत का बारहवाँ साल था। काबा में उन लोगों की आप *(सल्ल.)* से मुलाक़ात हुई और वहीं प्रतिज्ञा के लिए सही जगह भी चुनी गई।

तिहाई रात बीत गई। हर ओर अँधेरा छा गया। सारे हंगामे ख़ामोश हो गए। क़ुरैश नींद के नशे में मस्त हो गए। बाहर से आए हुए हाजी लोग भी सो गए। उस समय मदीना के मुसलमान चुपके से उठे। उनमें तिहत्तर मर्द थे और दो औरतें। ये लोग छिप-छिपाकर वहाँ से चल पड़े। अक़्बा पहुँच गए जो मक्का से कुछ ही फ़ासले पर था। वहाँ टीलों और चट्टानों की आड़ में आप *(सल्ल.)* का इन्तिज़ार करने लगे।

कुछ देर में आप *(सल्ल.)* भी आ गए। साथ में आपके चचा अब्बास *(रज़ि.)* भी थे। ये अभी तक बाप-दादा के धर्म पर ही थे, परन्तु आप *(सल्ल.)* के राज़दार थे। उनकी भी ख़ाहिश थी कि इस अहम मौक़े पर मौजूद रहें और मदीनावालों के क्या इरादे हैं? क्या हौसले हैं? इसका अच्छी तरह अन्दाज़ा कर लें। उन्होंने ही कार्यवाई शुरू की और बोले—

"ख़ज़रजवालो! मुहम्मद का हमारे दिलों में जो स्थान है, उसे तुम जानते ही हो। इन्हें हमने दुश्मनों से बचाया है। हमेशा डटकर दुश्मनों का मुक़ाबला किया है। सुन लो, ये अपने वतन में बिलकुल महफ़ूज़ हैं। दुश्मनों से इन्हें कोई ख़तरा नहीं। मगर ये तुम्हारे यहाँ जाने के लिए बेक़रार हैं। तुम्हारे पास रहने के इच्छुक हैं। तुममें अगर अपने वादों को निभाने का और दुश्मनों से इन्हें बचाने का साहस हो, तब तो ठीक है, ख़ुशी से ले जा सकते हो, लेकिन अगर इन्हें परेशानी हुई तो ज़िम्मेदारी तुम्हारी होगी। अगर वादा पूरा न करना हो तो फिर अभी से छोड़ दो। ये यहाँ इज़्ज़त से हैं। इन्हें यहाँ कोई डर नहीं।"

चचा अब्बास (रज़ि॰) अपनी बात कह चुके तो मदीनावाले बोले, "आपकी बातें हमने सुन लीं। अल्लाह के रसूल! अब आप कुछ कहें। जिस बात पर चाहें, हम से क़सम ले लें।"

आप *(सल्ल॰)* ने क़ुरआन की कुछ आयतें पढ़ीं। फिर कहा, "जिस तरह तुम अपने बाल-बच्चों को बचाते हो, क्या उसी तरह मुझको भी बचाओगे? मैं बस इतना ही इत्मीनान चाहता हूँ।"

मदीनावालों में एक व्यक्ति बरा *(रज़ि॰)* थे। ये मारूर के बेटे थे। क़ौम के बड़े सरदारों में थे। सभी उनकी इज़्ज़त करते थे। उन्होंने बेझिझक हाथ बढ़ाया और यह कहते हुए आप *(सल्ल॰)* के हाथ पर प्रतिज्ञा की—

"हाँ, क़सम है उस ज़ात की, जिसने आपको सत्य के साथ भेजा है, हम आपको बचाएँगे। अल्लाह के रसूल! हमसे आप वचन ले लें। ख़ुदा की क़सम, हम तो बड़े योद्धा हैं। अगर ज़रूरत हुई तो हम आपकी ओर से जंग के लिए भी तैयार हैं। बस आपके हुक्म की देरी है। जंग से भागना तो हमारे लिए शर्म की बात है। जंग में डटे रहना ही हमारे बाप-दादा का तरीक़ा रहा है।"

बरा *(रज़ि॰)* ने अभी अपनी बात ख़त्म भी न की थी कि यत्हान के बेटे अबुल-हैसम *(रज़ि॰)* बोल उठे। ये भी मदीना के बाइज़्ज़त लोगों में थे। उन्होंने कहा—

"अल्लाह के रसूल! यहूदियों से हमारे बड़े सम्बन्ध हैं। आपसे प्रतिज्ञा के बाद ये सम्बन्ध टूट जाएँगे। ऐसा तो न होगा कि जब

अल्लाह आपको विजय प्रदान करे तो आप हमको छोड़कर अपनी क़ौम की ओर लौट आएँ।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* मुस्करा पड़े और बोले :

"नहीं, तुम्हारा ख़ून मेरा ख़ून है। तुम्हारी इज़्ज़त मेरी इज़्ज़त है। तुम्हारी अमान मेरी अमान है। तुम मेरे और मैं तुम्हारा हूँ। जिसको तुम माफ़ करोगे उसको मैं भी माफ़ी दूँगा। जिससे तुम्हारी जंग होगी, उससे मेरी भी जंग होगी। जिससे तुम्हारी सुलह होगी, उससे मेरी भी सुलह होगी।"

लोग बैअत (प्रतिज्ञा) के लिए बढ़ना ही चाहते थे कि एक साहब बोल उठे। ये उबादा के बेटे अब्बास *(रज़ि.)* थे। उन्होंने कहा–

"भाइयो! तुम्हें मालूम भी है कि किस बात पर प्रतिज्ञा करने जा रहे हो? (आवाज़ें "हाँ ख़ूब मालूम है।") सुन लो, इस व्यक्ति से बैअत करना सारी दुनिया से लड़ाई मोल लेना है। तो अगर तुम्हारा यह विचार हो कि जब माल-दौलत को ख़तरा हुआ या तुम्हारी क़ौम के सरदार मारे गए तो मुहम्मद *(सल्ल.)* को छोड़ दोगे, तब इन्हें अभी छोड़ दो, बाद में छोड़ोगे तो दोनों जग में हँसाई होगी, लेकिन अगर मुहम्मद *(सल्ल.)* की वजह से आर्थिक नुक़सान सहन करने का साहस तुम में है और अपने सरदारों के मारे जाने पर अपना धीरज न खोने का हौसला है, तब अल्लाह के रसूल को अवश्य मदीना ले चलो। दुनिया और आख़िरत दोनों की सफलताएँ तुम्हें हासिल होंगी।"

सब एक आवाज़ होकर बोले–

"माली नुक़सान और सरदारों का क़त्ल हो जाना हमें मंज़ूर है, पर अल्लाह के रसूल को छोड़ना मंज़ूर नहीं। ऐ अल्लाह के रसूल! हम अपने वादे पर क़ायम रहें तो इसका हमें अल्लाह के यहाँ क्या बदला मिलेगा?"

आप *(सल्ल.)* ने कहा, "जन्नत।"

सब लोगों ने कहा, "अच्छा तो अपना हाथ बढ़ाइए।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अपना हाथ बढ़ा दिया और सब लोगों ने बारी-बारी बैअत (प्रतिज्ञा) की।

यही बैअत है, जो 'बैअते-अक़बा-ए-सानिया' (अक़्बा की दूसरी

प्रतिज्ञा) के नाम से मशहूर हुई।

इधर यह प्रतिज्ञा हुई और उधर एक आवाज़ बुलन्द हुई जो ख़ामोशी को चीरती हुई सारे वातावरण में फैल गई।

"क़ुरैश के लोगो! ये औस और ख़ज़रज तुमसे लड़ाई की योजना बना रहे हैं। देखो, ये मुहम्मद पर अपनी जान न्योछावर करने की क़समें खा रहे हैं।"

यह आवाज़ नहीं बल्कि वास्तव में एक ख़तरे की घण्टी थी। किन्तु यह भी मुसलमानों के हौसलों और इरादों को न हिला सकी। इससे किसी प्रकार की चिन्ता या भय तो क्या होता, बल्कि उबादा के बेटे अब्बास *(रज़ि.)* को और जोश आ गया। बोले—

"अल्लाह के रसूल! क़सम है उस ज़ात की जिसने आपको सत्य के साथ भेजा है, इजाज़त हो तो कल हम मिनावालों पर चढ़ाई कर दें।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "हमें इसकी इजाज़त नहीं है। तुम सब अपने ख़ेमों में चले जाओ।"

मुसलमान तुरन्त अपने ख़ेमों में चले गए और बे फ़िक्र होकर सो गए।

सुबह हुई तो क़ुरैश ने मदीनावालों के कैम्पों का रुख़ किया। वहाँ पहुँचकर उन्हें बुरा-भला कहा और आँखे लाल पीली करते हुए बोले—

"मदीनावालो! ख़ुदा गवाह है कि हर क़बीले से जंग करना हमें मंज़ूर है, पर तुमसे नहीं। फिर तुम ये क्या योजनाएँ बना रहे हो? मुहम्मद को अपने यहाँ क्यों ले जाना चाहते हो? क्यों हमारे मुक़ाबले में तलवारें उठाना चाहते हो?"

मदीना के मुशरिकों को रात की कार्यवाई मालूम न थी, इसलिए क़ुरैश की बातें सुनकर वे बहुत चकराए। वे क़समें खा-खा कर उन्हें यक़ीन दिलाने लगे कि मुहम्मद से तो हमारी कोई बात हुई ही नहीं है।

मुसलमान इस बारे में कुछ न बोले, लेकिन कोशिश करते रहे कि किसी प्रकार बात का रुख़ बदल जाए। कोई और बात छिड़ जाए।

क़ुरैश ने यह सूरत देखी तो बड़े हैरान हुए कि आख़िर बात क्या है? वे वहाँ से लौट तो आए, लेकिन उनके दिमाग़ परेशान थे। बार-बार सोचते कि क्या सचमुच रात ऐसी घटना घटी? क्या मुख़बिर ने हमको

सही ख़बर दी? और मदीनावाले झूठ बोल रहे हैं? या यह ख़बर ही ग़लत है और मदीनावाले सच्चे हैं?

अब उन्हें सही स्थिति जानने की धुन थी और बस। उन्होंने हक़ीक़त की छानबीन शुरू कर दी। और इसमें अपनी सारी शक्ति और दिमाग़ लगा दिया।

उधर मदीनावालों ने झट सफ़र का सामान बाँधा और अपने वतन को चल दिए कि कहीं क़ुरैश को पता चल गया तो जान छुड़ाना मुश्किल हो जाएगा।

(4)

अनसार[1] का अन्दाज़ा सही निकला। क़ुरैश बहुत जल्द सारी बातें जान गए। रात में जो कुछ हुआ था, सबकी ख़बर पा गए। फिर तो उनके होश उड़ गए। ग़ुस्से से वे बौखला गए। तुरन्त अनसार का पीछा किया कि वे हाथ से जाने न पाएँ।

लेकिन उन्हें निराश होना पड़ा। अनसार उनके हाथ न आए। किन्तु एक अनसारी[2] घिर गए। ये उबादा के बेटे सअद *(रज़ि.)* थे। अब क्या था। ज़ालिमों ने ख़ूब-ख़ूब दिल की भड़ास निकाली। उनकी मुश्कें (दोनों हाथ) बाँध दीं। उन्हें मारते-पीटते, बाल पकड़कर घसीटते मक्का लाए। वहाँ पहुँचकर उन्हें बराबर सताते रहे।

मक्का ही में दो व्यक्ति जुबैर और हारिस थे ये दोनों सौदागर थे, इसलिए सीरिया भी जाया करते थे। रास्ते में मदीना से गुज़रते तो सअद *(रज़ि.)* ही उनको पनाह देते और उनका माल लुटने से बचाते। इस एहसान के बदले में दोनों ने सअद *(रज़ि.)* को पनाह दे दी। इस तरह कहीं जाकर उनकी जान छूटी।

क़ुरैश ने सभाओं पर सभाएँ कीं। घण्टों सिर जोड़कर बैठते रहे और आपस में मशवरे करते रहे कि मुहम्मद के बारे में क्या किया जाए? उसे

1. अनसार-नसीर का बहुवचन है, जिसके मायने होते हैं, सहायक और मददगार। 'अनसार' इस्लामी परिभाषा में मदीना के उन मुसलमानों को कहते हैं, जिन्होंने प्यारे नबी *(सल्ल.)* और उनके उन साथियों की हर तरह से मदद की, जो अपना घर-बार छोड़कर मक्का से मदीना पहुँचे।
2. अनसार के गरोह से सम्बन्ध रखनेवाले को अनसारी कहते हैं

किस प्रकार नाकाम किया जाए?

अब तक मुहम्मद हमारे बीच था, लेकिन फिर भी हम बेबस रहे। बल्कि उलटा हमको नुक़सान ही हुआ। लेकिन अब क्या होगा, अब तो औस और ख़ज़रज क़बीले भी उसके साथ हो गए हैं?

क्या मुहम्मद का हम पर अधिकार क़ायम हो जाएगा? उसका धर्म मदीना में तो फैल गया, क्या अन्य क़बीलों में भी फैल जाएगा? और इस तरह वह हमें मिटा देगा। हमारे प्यारे नगर को वीरान कर देगा, हमारे सारे बुतों को तोड़ डालेगा, जबकि हम इनके लिए सालों लड़ते रहे, जान लड़ाकर सालों मुक़ाबला करते रहे?

क़ुरैश की सभाएँ होती रहीं। बैठकें होती और समाप्त होती रहीं, लेकिन...... बेकार। इस समस्या से वे बराबर परेशान रहे। लेकिन हल...... मालूम न था।

रहे मदीना के मुसलमान तो अब उनकी हालत ही कुछ और थी। मक्का की प्रतिज्ञा उनके लिए एक नई ज़िन्दगी की शुरूआत थी। अब उनके दिल में शान्ति और सन्तोष की ठण्डक थी और ईमान व यक़ीन का जज़्बा। अब उनका रूहानी विकास हो रहा था और इरादे में मज़बूती आ रही थी। अब तो वे इस्लाम के जोशीले सिपाही थे। वे जहाँ होते इस्लाम के नारे लगाते और जिससे मिलते उसी की बातें करते।

इस प्रकार मदीना का माहौल तैयार हो गया कि जब प्यारे नबी *(सल्ल.)* मदीना पहुँचे तो सिर आँखों पर बिठाए जाएँ।

इसी प्रकार आप *(सल्ल.)* के सच्चे साथियों का भी इज़्ज़त के साथ स्वागत किया जाए।

और फिर? एक नए युग का आरम्भ हो सके।

अल्लाह का हुक्म आ गया। आप *(सल्ल.)* ने सारे मुसलमानों को हिजरत की इजाज़त देते हुए कहा—

"तुम लोग होशियारी के साथ मदीना चले जाओ और एक-एक, दो-दो करके यहाँ से निकलो। क़ाफ़िलों की शक्ल में मत निकलना कि क़ुरैश की नज़रें उठें और वे तुम्हारे इरादों को भाँप लें।"

बहुत से मुसलमान मदीना की ओर कूच कर गए और क़ुरैश को पता भी न चला। लेकिन यह बात छिपनेवाली कब थी? आख़िरकार

उन्हें मालूम हो ही गया और उन्होंने सारी स्थिति समझ ली। इससे उनका ग़ुस्सा और बढ़ा और इन्तिक़ाम की आग भड़क उठी। वे हाथ धोकर मुसलमानों के पीछे पड़ गए। दिन-रात घात में रहने लगे कि मुसलमान मक्का से न निकलने पाए और हिजरत की उनकी सारी स्कीम फ़ेल हो जाए।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने हिजरत की, तब भी यही हालात थे। उनके साथ दो व्यक्ति और थे। एक रबीआ के बेटे अय्याश *(रज़ि.)*, दूसरे आस के बेटे हिशाम *(रज़ि.)*। इन तीनों ने तय किया कि जिसको जब मौक़ा मिले, मक्का से निकल जाए, फिर एक जगह सब मिल जाएँ। अगर कोई न आए तो समझ लें कि वह क़ुरैश के हाथ आ गया। फिर बाक़ी लोग सफ़र शुरू कर दें।

तयशुदा जगह पर उमर *(रज़ि.)* और अय्याश *(रज़ि.)* तो पहुँच गए, किन्तु हिशाम न आए। दोनों समझ गए कि हिशाम *(रज़ि.)* मुशरिकों के पंजे में आ गए। अतः वे दोनों मदीना के लिए चल दिए।

हिशाम *(रज़ि.)* वास्तव में क़ुरैश के हाथ लग गए। अब उनकी जान पर बन आई। मुशरिकों ने ख़ूब दिल का बुख़ार निकाला। उन्हें इतना-इतना सताया कि दीन पर क़ायम रहना उनके लिए मुशकिल हो गया।

क़ुरैश का रवय्या न बदला। दिन-रात का उनका यही सुलूक था। बदक़िस्मती से जो भी उनके हाथ लग जाता, बेदर्दी से उसे पीसकर रख देते। आख़िरकार तड़प-तड़प कर वह दम तोड़ देता। इस तरह कितनी ही औरतें बेवा हुईं और कितने ही बच्चे यतीम!

इसपर भी क़ुरैश मुत्मइन न थे। वे मुहम्मद *(सल्ल.)* के सिलसिले में बड़े फ़िक्रमन्द थे। वे स्वयं भी यही सोचते और जिससे मिलते, यही सवाल करते—

"मुहम्मद ने अपने साथियों को तो मदीना भेज दिया, लेकिन...... क्या वह ख़ुद भी...... जाएगा!

हब्शा की हिजरत में तो ऐसा हुआ है कि उसके साथी चले गए थे, लेकिन ख़ुद वह यहीं रहा है!"

क़ुरैश के दिल और दिमाग़ पर यही सवाल छाए हुए थे। वे बड़ी

बेचैनी से इसी के बारे में आपस में बातें करते रहते थे, लेकिन उन्हें इसका पता न था कि भविष्य में क्या होनेवाला है।

तो क्या क़ुरैश आपस में बात-चीत ही करके रह गए? नहीं, ऐसा न था। वे बराबर परेशान रहे। निरन्तर सोचते रहे कि मुहम्मद के मुक़ाबले में कौन सी चाल चली जाए? कौन सी कामियाब तदबीर की जाए? कहीं ऐसा न हो कि साथियों की तरह वह भी हाथ से निकल जाए। अगर ऐसा हो गया तो बड़ी आफ़त आ जाएगी। सारा मदीना तो उसपर जान न्योछावर करता ही है, मक्का के लगभग सारे मुसलमान भी वहीं पहुँच चुके हैं। इन सबको लेकर वह हम पर चढ़ाई कर देगा।

मुसलमानों पर क़ुरैश की बड़ी सख़्त निगरानी थी। हर क्षण पहरा था कि कहीं कोई हिजरत न कर जाए। लेकिन ये सारी कोशिशें बेकार साबित हुईं। कड़ी निगरानी के बावुजूद मक्का मुसलमानों से ख़ाली हो गया। सारे मुसलमान एक-एक करके मदीना चले गए। हमज़ा *(रज़ि.)*, उस्मान *(रज़ि.)*, ज़ुबैर-बिन-अव्वाम सभी चले गए। जो जाता किसी को अपने माल और जायदाद का ज़िम्मेदार बना जाता और अपने रिश्तेदारों से घर-बार की रखवाली के लिए कह जाता। अब प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ केवल अली *(रज़ि.)* और अबू-बक्र सिद्दीक़ *(रज़ि.)* रह गए और मक्का के केवल वे मुसलमान रह गए, जो बदक़िस्मती से घेर लिए गए थे और तड़प-तड़प कर मज़लूमी के दिन काट रहे थे।

आख़िर में अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी प्यारे नबी *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर हुए और हिजरत की इजाज़त चाही। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"जल्दी न करो शायद अल्लाह तुम्हें कोई साथी दे दे।"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* समझ गए कि आप *(सल्ल.)* की हिजरत भी क़रीब है। बस अब अल्लाह के हुक्म का इन्तिज़ार है। वे ख़ुशी-ख़ुशी घर आए और सफ़र की तैयारियों में लग गए।

विदा! ऐ वतन

(1) प्यारे नबी *(सल्ल.)* को हिजरत का आदेश
(2) एक साज़िशी कानूफ्रेंस
(3) पवित्र रक्त में हाथ रंगने की अपवित्र स्कीम
(4) घर का घेराव
(5) क़ुरैश के अमानतदार *(सल्ल.)* की बेमिसाल अमानतदारी
(6) सौर गुफा में ठहरना
(7) क़ुरैश की बौखलाहट
(8) आप *(सल्ल.)* को पा लेने की नाकाम कोशिश
(9) मदीना के लिए रवानगी
(10) क़ुरैश की निराशा और ग्लानि
(11) सुराक़ा की आँखें खुल गईं
(12) हज़रत अली *(रज़ि.)* की विकल अभिलाषा
(13) क़ुबा में पड़ाव
(14) मदीना में आप *(सल्ल.)* की प्रतीक्षा
(15) मदीना की गलियों ने कभी ऐसा दृश्य न देखा था
(16) अनसार और मुहाजिरों में भाई-चारा
(17) यहूदियों की जोड़-तोड़

(1)

हिजरत का हुक्म आ गया। इस मौक़े पर अल्लाह ने मुहम्मद *(सल्ल.)* को एक दुआ भी सिखाई कि जब हिजरत करें तो यह दुआ करते रहें। कितनी प्यारी है यह दुआ–

> 'और दुआ करो, मेरे रब! तू मुझे जहाँ कहीं ले जा सच्चाई के साथ ले जा और जहाँ कहीं से निकाल सच्चाई के साथ निकाल और अपनी ओर से मुझे सहायक सत्ता प्रदान कर।'
>
> (क़ुरआन, 17: 80)

मुसलमान अत्याचार सहते-सहते तंग आ चुके थे। हालात का यह रंग देखा तो प्यारे नबी (सल्ल.) ने मुसलमानों को मदीना चले जाने की इजाज़त दे दी। ताकि दिन-रात की इन परेशानियों से छुटकारा मिल जाए। दीन और ईमान को जो हर समय ख़तरा लगा हुआ है, वह ख़तरा भी टल जाए। अतः मुसलमानों ने चोरी-छिपे मदीना का रुख़ किया। परन्तु कुछ लोग क़ुरैश की घात में आ गए और हिजरत न कर सके। क़ुरैश ने उन्हें बन्दी बना लिया। फिर बड़ी बेरहमी से सताया और ख़ूब-ख़ूब ज़ुल्म की भट्टी में तपाया, ताकि वे परेशान होकर इस्लाम से फिर जाएँ। ईमान से उनका मन खट्टा हो जाए और भूले से भी मुहम्मद *(सल्ल.)* का नाम न लें।

खुद प्यारे नबी *(सल्ल.)* भी, जो ज़ालिमों का असली निशाना थे, अपने लिए अल्लाह के हुक्म का इन्तिज़ार कर रहे थे कि अल्लाह का हुक्म हो तो मक्का को त्याग दें और अपने साथियों से जा मिलें। वे सच्चे साथी, जिन्होंने अल्लाह के लिए वतन छोड़ा था। वे सच्चे साथी, जिन्होंने अनसार से मिलने के शौक़ में न अपने माल की परवाह की और न औलाद की।

वे अनसार कौन थे? वही खुश नसीब जिन्होंने आप *(सल्ल.)* की मदद की थी, आपको सुरक्षा की सेवाएँ पेश की थीं और जिन्होंने आपके मुबारक हाथों में हाथ देकर अल्लाह की राह में जान न्योछावर करने की प्रतिज्ञा की थी।

अल्लाह मुहाजिरों का भला करे! उन्होंने केवल अल्लाह के लिए किन-किन नेमतों से हाथ धोया। कैसी-कैसी चीज़ों पर सब्र कर लिया! अनसार का भी अल्लाह भला करे कि उन्होंने दीनी भाइयों को अपने यहाँ बुलाया। अपने घरों में ठहराया। केवल अल्लाह की ख़ुशी के लिए।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हिजरत का हुक्म भी आ गया। आप *(सल्ल.)* ने मदीना जाने का इरादा कर लिया। उस समय क़ुरैश की साज़िश का नक़्शा भी पूरी तरह तैयार था।

बात वास्तव में यह थी कि मुसलमानों की हिजरत से बड़े अच्छे नतीजे सामने आए। इस्लाम के प्रचार के लिए एक बड़ा इलाक़ा हाथ आ गया। लोग इस्लाम की बरकतें देखकर बहुत प्रभावित हुए और बड़ी तेज़ी से उसकी ओर बढ़ने लगे। हर ओर इस्लाम की चर्चा होने लगी। मुसलमानों का ज़ोर बढ़ने लगा। क़ुरैश ने यह देखा तो बड़े घबराए। उन्होंने महसूस कर लिया कि अब शामत सिर पर मंडरा रही है और तरह-तरह के ख़तरे सिर उठा रहे हैं। क़ुरैश और अनसार में ज़बरदस्त लड़ाई की आशंका भी होने लगी। इससे उनके होश और उड़ने लगे। उन्होंने सोचा कि इस प्रकार तो हमारा सीरिया जाना भी बन्द हो जाएगा। हमारा कारोबार बिलकुल ठप होकर रह जाएगा और हम दाने-दाने को तरस जाएँगे। अतः एक दिन क़ुरैश अपने 'दारुन्नदवा' (मंत्रणा-गृह) में जमा हुए। यहाँ सब लोग सिर जोड़कर बैठे और कोई ऐसी तरकीब सोचने लगे जिससे इस्लाम की रफ़्तार रुक जाए और उसका नाम लेनेवाला कोई न हो। लोगों ने इस सिलसिले में विभिन्न राएँ पेश कीं—

एक व्यक्ति ने कहा, "मुहम्मद के हाथ-पाँव ज़ंजीरों से जकड़ दिए जाएँ और फिर उसे किसी मकान में बन्द कर दिया जाए।"

दूसरा बोला, "ख़ुदा की क़सम! अगर मुहम्मद को बन्दी बनाया तो हर तरफ़ इसकी चर्चा हो जाएगी। फिर तो बहुत बुरा होगा। मुसलमान तुरन्त हम पर चढ़ाई कर देंगे और जब तक मुहम्मद को हमसे छुड़ा नहीं लेंगे, दम नहीं लेंगे।"

तीसरे ने राए दी, "मुहम्मद का यहाँ रहना अच्छा नहीं। उसे कहीं दूर-दराज़ इलाक़े में छोड़ आया जाए। फिर वह जहाँ चाहे जाए और

जिस जगह चाहे रहे।"

चौथा बोला, "यह राय तो बड़ी बोदी है। देखते नहीं, वह कैसी मीठी-मीठी बातें करता है। कितने सुन्दर ढंग से बातें करता है। मिनटों में आदमी का मन मोह लेता है। ऐसा करने में तो ख़तरा ही ख़तरा है। अगर उसे कहीं छोड़ आया गया तो या तो वह किसी दूसरे क़बीले में पहुँच जाएगा और उसे अपनी जादू-बयानी से अपना सहयोगी बना लेगा। वरना फिर मदीना पहुँच जाएगा और उसका मदीना पहुँचना तो और अधिक ख़तरनाक साबित होगा। वहाँ पहुँचते ही वह अपने साथियों को साथ लेगा और हमको पीस कर रख देगा।"

"फिर हम क्या करें?" सब एक साथ बोल उठे। आवाज़ों से घबराहट और निराशा टपक रही थी।

अबू-जहल खड़ा हुआ और बोला, "एक उपाय और है, जो अब तक किसी ने नहीं सोचा।"

सबने बड़ी बेचैनी से पूछा, "अरे, वह क्या अबुल-हकम?"

वह बोला, "मेरी राए में प्रत्येक क़बीले से एक-एक पहलवान और शेर दिल जवान चुना जाए। फिर हर एक के हाथ में तेज़ तलवार दे दी जाए और ये सब एक साथ मुहम्मद पर टूट पड़ें। इस तरह उसका काम तमाम हो जाएगा और हमको हमेशा के लिए आराम हो जाएगा। इस प्रकार क़त्ल करने से होगा यह कि ख़ून बँट जाएगा और ज़ाहिर है कि हाशिम कुटुम्बवाले तमाम क़बीलों का मुक़ाबला तो कर न सकेंगे। मजबूरन उन्हें ख़ूँ बहा (हत्या-अर्थदण्ड) के रूप में सौ ऊँट लेने ही पर तैयार होना पड़ेगा।"

यह राए सबको पसन्द आई। सब ख़ुशी से उछल पड़े। सबने अबू-जहल को मुबारकबाद दी और बोले—

"अबुल-हकम! सच-मुच राए तो इसे कहते हैं।"

सभा समाप्त हो गई। प्रत्येक ख़ुशी में मग्न था। मानो मुहम्मद *(सल्ल.)* दुनिया से चले ही गए हों। उनके धर्म का नाम व निशान मिट ही गया हो और उनकी याद के चिन्ह भी लोगों के ज़ेहन से मिट गए हों। उनका सन्देश दुनिया के लिए अजनबी बन गया हो और वह भूली-बिसरी चीज़ बनकर रह गया हो। लोग गए और उन जवानों का

चयन करने लगे जो मुहम्मद *(सल्ल.)* का काम तमाम करेंगे। उन तलवारों का इन्तिज़ाम करने लगे, जिन्हें वे मुहम्मद (सल्ल.) के पवित्र शरीर पर चलाएँगे।

> "और वह समय याद करो जब अधर्मी लोग तुम्हारे सिलसिले में चालें चल रहे थे कि तुम्हें बन्दी बना लें या तुम्हें क़त्ल कर दें या तुम्हें देश निकाला दे दें। वे अपनी चालें चल रहे थे और अल्लाह अपनी तदबीर कर रहा था और अल्लाह सबसे अच्छी तदबीर करनेवाला है।" (क़ुरआन, 8:30)

मुशरिकों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* को क़त्ल करने की स्कीम बना ली। उसके लिए हर एक ने कमर कस ली, क्योंकि अब तो ख़ून सारे क़बीलों में बँट रहा था। हर क़बीले का उसमें हिस्सा लेना ज़रूरी था और चूँकि सारे क़बीले शामिल हो रहे थे, इसलिए हाशिम कुटुम्बवाले बदला भी नहीं ले सकते थे।

उधर अल्लाह का फ़ैसला था कि आप *(सल्ल.)* पर ज़रा भी आँच न आए। अतएव अल्लाह ने आप *(सल्ल.)* की मदद की और वे अपना सा मुँह लेकर रह गए।

(2)

वह भयानक रात आ गई, जिसे मुशरिकों ने प्यारे नबी मुहम्मद*(सल्ल.)* की हत्या के लिए चुना था। उन्होंने आप *(सल्ल.)* के घर को घेर लिया। उनके हाथों में तेज़ तलवारें थीं, जिनकी धारों में मौत छिपी हुई थी।

अरब में ज़नाना मकान के अन्दर घुसना एक ऐब समझा जाता था, इसलिए ये मुशरिक घर के बाहर ही बैठे रहे और इस ताक में रहे कि कब मुहम्मद *(सल्ल.)* बाहर निकलें और उनकी तिक्का-बोटी कर दें।

अल्लाह ने इस पूरी साज़िश की ख़बर नबी *(सल्ल.)* को दे दी। आप*(सल्ल.)* ने अली *(रज़ि.)* से कहा, जो आपके साथ ही रहते थे कि "मुझको हिजरत का आदेश मिल चुका है और दुश्मन आज हमारे घर को घेरे हुए हैं और मेरी हत्या पर तुले हैं।" इसके बाद फिर फ़रमाया, "अली! मैं आज मदीना चला जाऊँगा। तुम मेरे बिस्तर पर सो जाओ और मेरी चादर भी ओढ़ लो। अल्लाह ने चाहा तो कोई तकलीफ़ न

पहुँचेगी। सुबह जाकर सब की अमानतें वापस कर देना। फिर तुम भी मदीना चले आना।"

बात क्या थी? क़ुरैश हालाँकि आप *(सल्ल.)* की जान के दुश्मन थे, परन्तु आप ही उनके 'अमीन' (अमानतदार) भी थे। जिसको कोई अमानत रखनी होती वह आप ही के पास रखता। उस समय भी आप*(सल्ल.)* के पास लोगों की बहुत सी अमानतें थीं। यही वजह थी कि आप अली*(रज़ि.)* को अपने साथ न ले गए। बल्कि लोगों की अमानतें वापस करने के लिए मक्का ही में छोड़ गए।

शायद धरती और आकाश ने ऐसा अनोखा दृश्य कभी न देखा हो कि एक ओर ख़ून के प्यासे दुश्मन हैं, उनके हाथों में तेज़ तलवारें हैं, वे घर को घेरे हुए हैं कि आप *(सल्ल.)* बाहर निकलें और वे पवित्र शरीर पर वार करें। दूसरी ओर 'अमीन' की यह ईमानदारी है कि अमानतों का उसके पास ढेर है। ये अमानतें किसकी हैं? इन्हीं दुष्टों की जो आप*(सल्ल.)* के ख़ून के प्यासे हैं। अगर चाहें तो सारी अमानतें लेकर आप चले जाएँ। न कोई आपका कुछ कर सके और न आपको कोई कुछ कह सके। फिर उस समय आप निर्धन भी हैं। दौलत की आपको सख़्त ज़रूरत है। लेकिन यह सब कुछ एक तरफ़ और 'अमीन' की अमानतदारी एक तरफ़। आपको उसमें से एक कौड़ी लेना हराम। और केवल यही नहीं, बल्कि अपने प्यारे भाई अली को भी वहीं छोड़ देते हैं। हाँ उन्ही ख़तरों के मुँह में। क्यों? केवल इसलिए कि इन ज़ालिमों की अमानतें उन तक पहुँचा दें।

हज़रत अली *(रज़ि.)* ने आप *(सल्ल.)* के सफ़र के लिए नेक तमन्नाएँ ज़ाहिर कीं और आप *(सल्ल.)* रवाना हो गए। जुदा होते समय दोनों ने अत्यन्त प्रेम भरे स्वर में कहा, "अल्लाह को मंज़ूर हुआ तो फिर मदीना में मिलेंगे।"

हज़रत अली *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* के बिस्तर पर लेट गए और आपकी हरी चादर ओढ़ कर सो गए।

रात काफ़ी बीत चुकी थी। दुश्मन आप *(सल्ल.)* का बड़ी बेचैनी से इन्तिज़ार कर रहे थे कि आप बाहर निकलें और वे सब एक साथ आप*(सल्ल.)* पर टूट पड़ें। हुआ यह कि जब आप *(सल्ल.)* का बाहर

निकलने का समय हुआ तो उन दुश्मनों पर ऊँघ तारी हो गई और जब आप *(सल्ल.)* बाहर निकले तो वे सब सो रहे थे।

दुश्मनों को आप *(सल्ल.)* का इन्तिज़ार तो था ही। एक-एक क्षण उनपर कठिन गुज़र रहा था। जब बहुत देर हो गई तो अन्दर झाँकने लगे। जब आप *(सल्ल.)* के बिस्तर पर नज़र पड़ी तो आपस में बोले—

"वह देखो, मुहम्मद चादर ओढ़े सो रहा है।"

वे फिर सोनेवाले का इन्तिज़ार करने लगे। हालाँकि मुहम्मद *(सल्ल.)* जा चुके थे।

इस घटना से दो-तीन दिन पहले प्यारे नबी *(सल्ल.)* अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर गए थे। दोपहर का समय था। आप *(सल्ल.)* ने उनके दरवाज़े पर दस्तक दी। अबू-बक्र *(रज़ि.)* बाहर आए। आप (सल्ल.) को इस समय अपने यहाँ देखते ही उन्होंने सोचा कि ज़रूर कोई ख़ास बात है कि आप *(सल्ल.)* ने इस वक़्त आने की तकलीफ़ की।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* उनके साथ अन्दर घर में चले गए और फ़रमाया—

"यहाँ कौन लोग हैं? थोड़ी देर के लिए उन्हें हटा दो। कुछ मशवरा करना है।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "ऐ अल्लाह के रसूल! यहाँ आपकी बीवी आइशा के सिवा और कोई नहीं है"

आप *(सल्ल.)* ने कहा, "हिजरत का हुक्म आ चुका है। मक्का से अब हमें भी चलना है।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने (बड़ी बेक़रारी से) कहा, "मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान..........क्या मुझे भी आपके साथ चलने का सौभाग्य प्राप्त होगा? क्या मैं भी आपके साथ रहूँगा?"

फ़रमाया, "हाँ, तुमको भी चलना है। तैयार हो जाओ। हम दोनों साथ चलेंगे।"

यह सुनना था कि उनकी आँखों में ख़ुशी के आँसू तैरने लगे। उन्होंने कहा, "अल्लाह के रसूल! मैंने कुछ सामान तैयार कर रखा है, जो हमारे काम आएगा। सफ़र के लिए दो ऊँटनियाँ भी तैयार कर ली हैं और अब्दुल्लाह-बिन-अरक़त से भी बात कर ली है। सफ़र में उससे भी

आसानी होगी।''

आप *(सल्ल.)* ने कहा, ''अभी ऊँटनियों की ज़रूरत नहीं। पहले तो हम दक्षिण की ओर जाएँगे और 'सौर' पहाड़ी की गुफा में कुछ दिन ठहरेंगे।''

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* समझ गए कि इसमें क्या मसलहत है? इससे पहले भी वे कई बार आप *(सल्ल.)* की हैरतनाक सूझ-बूझ का तजरिबा कर चुके थे। वे ख़ूब जानते थे कि आप कितनी समझदारी से काम लेते हैं कि दुश्मन अपना-सा मुँह लेकर रह जाते हैं।

सौर पहाड़ी मक्का से दक्षिण में पाँच मील के फ़ासले पर यमन के रास्ते पर है। आप *(सल्ल.)* को यक़ीन था कि जो व्यक्ति भी सुनेगा कि मुहम्मद मक्का से चले गए तो वह यही समझेगा कि वे मदीना की ओर गए होंगे और इसलिए वह उत्तर की ओर दौड़ेगा, क्योंकि मदीना मक्का से उत्तर की ओर ही पड़ता है। अतः आपने ऐसा नक़्शा बनाया कि पीछा करनेवाले नाकाम लौट जाएँ। उनको पता भी न चले कि आप *(सल्ल.)* किधर गए? कहाँ गए?

मक्का की आख़िरी रात, जबकि दुश्मनों ने आप *(सल्ल.)* के घर को घेर लिया था, आप घर से निकल कर सीधे अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर पहुँचे। उनको साथ लिया और घर के पीछेवाली खिड़की से निकलकर बाहर आए और रात के सन्नाटे में तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाने लगे। मक्का से निकल कर दक्षिण की ओर मुड़े और सौर गुफा की तरफ़ तेज़ी से चल पड़े।

सुबह सवेरे ही हज़रत अली *(रज़ि.)* की आँख खुल गई। वे बिस्तर से उठ बैठे। आहट पाकर दुश्मन भी चौकन्ने हो गए कि अब काम करने का समय आ गया।

लेकिन............यह मुहम्मद के बिस्तर से कौन उठा?

लोग बार-बार बेचैनी से रोशनदान से अन्दर झाँकते और हैरान होकर वहाँ से हट जाते। यह सोकर उठनेवाला मुहम्मद तो नहीं! यह तो अबू-तालिब का लड़का अली है!

''अरे यह क्या हुआ?............और मुहम्मद कहाँ उड़ गया............? घर तो हर ओर से हमारे घेराव में था। फिर वह किधर निकल गया!?''

ये वे शब्द थे जो ख़ुद ब ख़ुद उनके मुख से निकल रहे थे। वे बिलकुल हैरत की मूर्ति बन गए थे।

क्या हम रात भर अली के लिए बैठे रहे? क्या हमने अली को मुहम्मद समझ लिया था? अली आज मुहम्मद के बिस्तर पर क्यों सोया? और मुहम्मद कहाँ है?

हर एक बदहवासी में एक दूसरे से पूछ रहा था, लेकिन जवाब देने वाला कोई न था। कुछ ही देर में बस्ती के और आदमी भी आ पहुँचे। देखते ही लोगों की एक भीड़ जमा हो गई। लोग बेचैनी के साथ चले आ रहे थे कि देखें मुहम्मद का क्या हश्र हुआ? यहाँ पहुँचे तो पता चला कि मुहम्मद तो कहीं छिप गए!

सारे लोग हैरान और परेशान थे। ग़म और ग़ुस्से से बदहाल हो रहे थे। वे सब घर में घुस गए और अली *(रज़ि.)* से पूछने लगे, "तुम्हारा साथी कहाँ है?"

अली *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "मुझे नहीं मालूम!"

वे बार-बार पूछते ही रहे और अली *(रज़ि.)* नहीं में जवाब देते रहे। जब वे बिलकुल निराश हो गए तो अली *(रज़ि.)* को ले जाकर काबा में बन्द कर दिया। इसपर भी बस न किया और वहाँ भी बेरहमी से निरन्तर सताते रहे। आख़िरकार कुछ रिश्तेदार बीच में पड़े और इस प्रकार कहीं जाकर उनकी जान छूटी।

जिस दिन मुशरिकों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हत्या की स्कीम बनाई उसी रोज़ आप *(सल्ल.)* उनके हाथ से निकल गए। इसपर मुशरिकों को बड़ा दुख हुआ। ग़ुस्से में वे पागल हो गए और हताश होकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। कोई मदीना की ओर दौड़ा और कुछ लपक कर अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर गए। क्योंकि वे जानते थे कि अबू-बक्र *(रज़ि.)* आप *(सल्ल.)* के गहरे दोस्त हैं। आपको उनसे ख़ास ताल्लुक़ है। अबू-बक्र *(रज़ि.)* के घर जानेवालों में अबू-जहल भी था। इन लोगों ने दरवाज़े की कुण्डी खटखटाई तो अबू-बक्र *(रज़ि.)* की बड़ी बेटी असमा *(रज़ि.)* निकलकर आईं। दुश्मनों ने उनसे पूछा, "तुम्हारे बाप कहाँ हैं? देखो सही बताना। झूठ मत बोलना।"

"अल्लाह न करे कि मैं झूठ बोलूँ। झूठ बोलने की क्या बात? मुझे

कुछ पता नहीं कि कहाँ गए।" असमा *(रज़ि.)* ने निडर होकर जवाब दिया।

दुश्मन समझ गए कि अबू-बक्र *(रज़ि.)* भी मुहम्मद *(सल्ल.)* के साथ निकल गए। अबू-जहल ग़ुस्से से पागल तो था ही, उस बदक़िस्मत से बर्दाश्त न हुआ और उसने असमा *(रज़ि.)* के गाल पर इतने ज़ोर से एक चाँटा मारा कि कान से बाली छटक कर दूर जा गिरी। फिर दुश्मन वहाँ से लौट आए और किसी ऐसे व्यक्ति की खोज करने लगे जो पैरों के निशान पहचाने और मुहम्मद *(सल्ल.)* को पकड़ने में उनकी रहनुमाई करे।

तलाश के बाद उन्हें एक आदमी मिल गया, जो पैरों के निशान पहचानने में माहिर था, नाम था उसका सुराक़ा-बिन-मालिक। वह रसूल *(सल्ल.)* और अबू-बक्र *(रज़ि.)* के क़दमों के निशानों को देखता हुआ चला। पीछे-पीछे क़ुरैश की एक भीड़ भी हो ली। चलते-चलते ये लोग मक्का से बाहर आ गए। अब सुराक़ा दक्षिण की ओर चल पड़ा और सौर गुफा की तरफ़ बढ़ा। लोग बड़े हैरान थे। हर एक ताज्जुब से कह रहा था—

"आख़िर मुहम्मद गया किधर? दक्षिण की ओर या उत्तर की ओर?"

दुश्मनों की समझ में कुछ नहीं आ रहा था, लेकिन वे सुराक़ा के पीछे चलते रहे। इस उम्मीद में कि शायद वे सफल हो जाएँ। शायद मुहम्मद का पता चल जाए। सुराक़ा रेत पर पैरों के निशान देख-देखकर चलता रहा। फिर...... फिर वह सौर पहाड़ पर चढ़ने लगा।

अल्लाह ने रसूल *(सल्ल.)* से वादा किया था, "वह दुश्मनों की साज़िश को नाकाम कर देगा। आप पर ज़रा भी आँच न आने देगा।" भला उससे बढ़कर सच्चा कौन हो सकता है?

सुराक़ा पहाड़ पर चढ़ गया। दुश्मनों का गरोह भी साथ था। फिर यकायक उसके क़दम रुक गए। अब उसका चेहरा बड़ा उदास था। उससे बड़ी हैरानी और घबराहट झलक रही थी। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि अब कहाँ जाए और किधर जाए? दुश्मनों ने यह हालत देखकर पूछा—

"सुराक़ा! क्या बात है? रुक क्यों गए? ख़ैर तो है?"

सुराक़ा सामने एक पत्थर की ओर इशारा करते हुए बोला, "इस पत्थर तक तो वे दोनों आए, फिर नहीं मालूम, किधर गए?"

यह कहना था कि एक ठट्टा लगा। "अरे सुराक़ा! आज तुम्हें क्या हो गया? ख़ुदा की क़सम इस तरह तो तुम कभी नहीं बहके!"

फिर कुछ दूरी पर एक चरवाहा दिखाई दिया, जो अपनी बकरियाँ चरा रहा था। दुश्मनों ने उससे पूछा—

"क्या तुमने इस पहाड़ पर दो आदमियों को चढ़ते देखा है?"

"मैंने तो किसी को देखा नहीं है, लेकिन तुम देख लो। हो सकता है कि दोनों गुफा में हों।" चरवाहे ने जवाब दिया।

क़ुरैश तुरन्त पहाड़ पर चढ़े और फिर तेज़ी से गुफा की ओर लपके। तीर, तलवार और लाठी सब उनके पास थे। हर एक की यही इच्छा थी कि मुहम्मद *(सल्ल.)* को ख़त्म करने का श्रेय उसी को मिले।

क्या शान है मुहम्मद *(सल्ल.)* की......! मुहम्मद *(सल्ल.)* उस समय गुफा में खड़े नमाज़ पढ़ रहे थे— और उनके साथी हज़रत अबू बक्र *(रज़ि.)* पास बैठे थर-थर काँप रहे थे। दिल धक-धक कर रहा था कि कहीं ज़ालिमों की नज़र आप *(सल्ल.)* पर न पड़ जाए।

दुश्मनों की आवाज़ें भी कानों में आ रही थीं। उनके रुख़ का भी अन्दाज़ा हो गया था और अब तो पैरों की आहट, लाठियों की खट-खट और चीख़ पुकार की भयंकर आवाज़ें क़रीबतर होती जा रही थीं। अबू-बक्र *(रज़ि.)* चुपचाप बैठे थे। निगाहें आप *(सल्ल.)* पर लगी थीं। उनका दिल रह-रह कर चाह रहा था कि काश! मैं मुहम्मद *(सल्ल.)* को दिल के अन्दर छिपा सकता। काश! मैं आपको अपना शरीर उढ़ा सकता।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* नमाज़ पढ़ चुके। प्यारे नबी की जान ख़तरे में देखकर अबू-बक्र *(रज़ि.)* घबराहट और डर से बदहाल थे। चेहरा उतरा हुआ था और दिल बैठा जा रहा था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ये सब भाँप गए। तुरन्त ही उन्हें ढाढ़स बँधाते हुए फ़रमाया—

"घबराओ नहीं, अल्लाह हमारे साथ है।"

क़ुरैश का एक आदमी तेज़ी से गुफा की ओर बढ़ा। लेकिन कुछ दूर ही पर यकायक उसके क़दम रुक गए। फिर वह उलटे पाँव लौट पड़ा। उसका चेहरा दुख और अफ़सोस से पीला पड़ गया था। वह

निराश और हताश था।

उसके साथी भी पीछे-पीछे तेज़ी से बढ़ रहे थे। उसको देखकर वे भी ठहर गए।

"क्या बात हुई? गुफा में झाँके बिना क्यों लौट पड़े?" साथियों ने सवाल किया।

उसने कहा— और नाउम्मीदी से उसका मन डूबा जा रहा था— "अभी मुहम्मद पैदा भी न हुआ था, उस समय से उसपर मकड़ी का डेरा है। गुफा के मुख पर दो जंगली कबूतरों का घोंसला भी है। रास्ते ही में एक पेड़ भी खड़ा है। ज़ाहिर है कि उसके अन्दर किसी आदमी के होने का सवाल ही पैदा नहीं होता।"

यह आवाज़ अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने भी सुन ली। वे समझ गए कि अल्लाह अपने रसूल को बचाना चाहता है। उसी के ये सब इन्तिज़ाम हैं। दुश्मन गुफा के मुँह तक पहुँच गए थे। और वहीं इधर-उधर टहल रहे थे। अबू-बक्र *(रज़ि.)* उनके पैरों को भी देख रहे थे। लेकिन अल्लाह का करना, किसी ने झाँक कर भी गुफा के भीतर ने देखा। अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने आप के कान में चुपके से कहा—

"इनमें से किसी की निगाह अगर अपने पाँव पर पड़ जाए तो हमें देख लें।"

आप *(सल्ल.)* ने जवाब दिया, "अबू बक्र! उन दो के बारे में तुम्हारा क्या विचार है, जिनका तीसरा अल्लाह है?"

फिर दुश्मन गुफा के पास से चले गए। अब वे पहाड़ से नीचे उतरने लगे कि जाकर दूसरी जगहों पर भी तलाश करें। इतनी दौड़-धूप और खोजबीन के बावुजूद उन्हें नाकामी हुई फिर भी उनके हौसले पस्त न हुए। वे वैसे ही दौड़-धूप में लगे रहे। क्योंकि क़ुरैश ने एलान किया था कि जो मुहम्मद *(सल्ल.)* को पकड़ कर लाएगा, सौ ऊँट उसे इनाम स्वरूप दिए जाएँगे। हर व्यक्ति चाहता था कि वे ऊँट उसी को मिलें। इसी लालच के पीछे वे दीवाने थे। कैसी थकान और कैसी तकलीफ़? उन्हें इन सब की कोई फ़िक्र न थी।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* तीन दिन उसी गुफा में ठहरे रहे। अबू-बक्र *(रज़ि.)* के बेटे अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* दिन भर पता

लगाते रहते कि क़ुरैश क्या मशवरे कर रहे हैं? और क्या स्कीमें बना रहे हैं? जो कुछ बात उन्हें मालूम हो जाती उनसे रात में आकर आप *(सल्ल.)* को वाक़िफ़ करा जाते। उनके साथ उनकी बहिन असमा *(रज़ि.)* भी होतीं। वे घर से खाना पका कर लातीं। कुछ रात गए अबू-बक्र *(रज़ि.)* का ग़ुलाम आमिर-बिन-फ़ुहैरा बकरियाँ चराकर ले आता। आप *(सल्ल.)* और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* उनका दूध पी लेते। फिर ये तीनों मक्का वापस चले जाते। अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* और उनकी बहिन आगे-आगे होतीं। आमिर-बिन-फ़ुहैरा और उसकी बकरियाँ पीछे-पीछे, ताकि उन दोनों के पैरों के निशान मिटते जाएँ।

इसी प्रकार तीन दिन बीत गए। प्यारे नबी *(सल्ल.)* और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की तलाश अब रुक गई। जो लोग आपको ढूँढ़ने निकले थे, निराश होकर घरों को लौट आए। इन लोगों ने सोचा कि अब तो सफ़र का ज़्यादातर हिस्सा तय हो चुका होगा। अब तो मुहम्मद न जाने कहाँ पहुँच गया होगा। अब पीछा करना बेकार है।

अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* रोज़ाना प्यारे नबी *(सल्ल.)* और प्यारे बाप को क़ुरैश की सारी ख़बरें सुनाया करते, उन्होंने क़ुरैश की निराशा का भी हाल सुनाया। अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने सुना तो अब्दुल्लाह *(रज़ि.)* से कहा, मैंने जो दो ऊँटनियाँ तैयार की हैं, उन्हें लेते आना। लेकिन देखो, किसी को पता न चले। साथ में अब्दुल्लाह-बिन-अरक़त को भी बुलाते लाना।" अब्दुल्लाह-बिन-अरक़त एक ग़ैर-मुस्लिम था। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को उसपर भरोसा था। इसी लिए उसे मज़दूरी पर तय कर लिया था कि किसी ग़ैर आबाद रास्ते से मदीना पहुँचा दे।

शाम होते ही अब्दुल्लाह सौर गुफा की ओर चल दिए। साथ में उनकी बहिन असमा *(रज़ि.)* और आमिर-बिन-फ़ुहैरा भी थे। पीछे-पीछे अब्दुल्लाह-बिन-अरक़त भी था, जो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की दोनों ऊँटनियाँ और अपनी एक ऊँटनी लेकर आ रहा था।

कुछ देर में ये लोग ऊँटनियों के साथ गुफा पर आ पहुँचे। दोनों में जो ऊँटनी ज़्यादा अच्छी थी, उसे अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने आप *(सल्ल.)* को पेश किया और कहा, "अल्लाह के रसूल! आप इसपर सवारी करें।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* जो दूसरों के साथ हमेशा एहसान किया करते थे,

ख़ुद किसी का एहसान लेना कब पसन्द करते। उन्होंने फ़रमाया—

"मैं दूसरे की ऊँटनी पर नहीं बैठता।"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने कहा, "यह अब आपकी है, अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "नहीं! जितने में ख़रीदी है, उतनी ही क़ीमत मुझ से ले लो।"

अबू-बक्र *(रज़ि.)* को क़ीमत लेने पर मजबूर होना पड़ा। हज़रत असमा *(रज़ि.)* ने सफ़र का सामान ठीक-ठाक किया। वे घर से एक नाश्तेदान में खाना और पानी से भरा हुआ एक मशकीज़ा लाईं थीं। इन दोनों चीज़ों को ऊँटनी पर रखना था। बाँधने के लिए कोई रस्सी नहीं थी। वे परेशान हुईं कि क्या करें।

फिर एक तरकीब उनकी समझ में आ गई। अपने निताक़ (इसको औरतें कमर से लपेटती थीं) को फाड़ कर दो टुकड़े किए। एक से नाश्तेदान और मशकीज़े को बाँध दिया। यही वजह है कि वे 'ज़ातुन्निताक़ैन' (दो निताक़ोंवाली) के नाम से मशहूर हुईं।

आप *(सल्ल.)* और अबू-बक्र दोनों अपनी-अपनी ऊँटनी पर सवार हो गए। अब्दुल्लाह-बिन-अरक़त भी अपनी ऊँटनी पर बैठ गया। अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने पीछे अपने ग़ुलाम को भी बिठा लिया कि रास्ते में कोई ज़रूरत पड़े तो परेशानी न हो। फिर यह क़ाफ़िला अब्दुल्लाह-बिन-अरक़त की रहनुमाई में रवाना हो गया, और लाल सागर के तटवर्ती रास्ते से होता हुआ चला, जो बिलकुल सुनसान और ग़ैर-आबाद था।

(3)

क़ुरैश की हसरतों और तमन्नाओं का ख़ून हो गया। दिल के अरमान दिल ही में रह गए। इसपर उनको बड़ा दुख था। अब वे जहाँ इकट्ठा होते और जिस मजलिस में भी बैठते, इसी का रोना रोते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* उनके हाथ से निकल गए थे, इसपर वे हाथ मलते। क़ुरैश अपनी एक मजलिस में बैठे इसी तरह अपना दुखड़ा रो रहे थे कि एक आदमी अन्दर दाख़िल हुआ। यह किसी सफ़र से लौटकर अभी-अभी आया था। वह बोला, "मैं तटवर्ती रास्ते से आ रहा था। तीन आदमी

मेरे सामने ही से गुज़रे। मेरा ख़याल है, वे मुहम्मद और उनके साथी ही थे।"

उस मजलिस में सुराक़ा नामक एक आदमी भी मौजूद था। यह जोशम का बेटा था। बहुत ही दूररस और समझदार आदमी था। उसने यह बात सुनी तो समझ गया कि इस आदमी का अन्दाज़ा बिलकुल सही है। लेकिन उसकी तमन्ना थी कि मुहम्मद को पकड़ने का श्रेय मुझको हासिल हो। इनाम के सौ ऊँट भी मेरे ही दरवाज़े पर बँधें। इसलिए उसने लोगों को बहकाने के लिए फ़ौरन इस बात को ग़लत बताया, बोला–

"नहीं जी। अब वे कहाँ बैठे हैं। अभी-अभी कुछ आदमी मेरे सामने उस तरफ़ गए हैं। मैं तो उनसे अच्छी तरह वाक़िफ़ हूँ।"

सबको सुराक़ा की बात सही मालूम हुई और किसी ने उस आदमी की तरफ़ ध्यान न दिया। सुराक़ा कुछ देर वहाँ बैठा रहा, फिर उठा और घर की तरफ़ चल दिया।

घर पहुँचते ही वह हथियारों से सज कर तैयार हो गया। अपने एक नौकर से कहा, उसने घोड़े पर ज़ीन कसी और उसे मक्का से बाहर पहुँचा दिया। कुछ ही देर में सुराक़ा भी पहुँच गया। वह चाहता था कि मक्का से बाहर जाते हुए कोई उसे देखने न पाए। मक्का से बाहर पहुँचकर वह घोड़े पर सवार हो गया और घोड़े को ऐड़ लगा दी। घोड़ा टापें मारता, धूल उड़ाता तेज़ी से तट की तरफ़ बढ़ा।

क्या यह मुमकिन है कि सुराक़ा मुहम्मद *(सल्ल.)* को पा ले, जबकि अल्लाह ने उन्हें गुफा पर मँडरानेवाले ख़तरों से बचा लिया! नहीं, हरगिज़ नहीं। अल्लाह मुहम्मद *(सल्ल.)* की तरफ़ से अपनी नज़रें नहीं फेर सकता, जबकि वह वादा कर चुका है, दुश्मनों की सारी साज़िशें नाकाम करने का। घोड़ा अभी कुछ ही दूर बढ़ा था कि उसने ठोकर खाई। क़रीब था कि वह सुराक़ा को ज़मीन पर फेंक दे, लेकिन सुराक़ा जल्दी से संभला और फिर उसको एड़ लगाई। घोड़ा हवा से बातें करने लगा। ज़्यादा दूर नहीं गया था कि उसे फिर ठोकर लगी, लेकिन अब भी सुराक़ा की हिम्मत पस्त न हुई। उसने दोबारा घोड़े को सँभाला और ऐड़ लगाई, हालाँकि अब वह कुछ डर और भय महसूस कर रहा था। उसे कुछ

नाउम्मीदी भी हो रही थी। उधर घोड़ा भी सरपट भागा चला जा रहा था।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* का क़ाफ़िला एक दिन और एक रात बराबर चलता रहा। उसे न किसी दुश्मन का सामना हुआ और न कोई पीछा करनेवाला नज़र आया। अबू-बक्र *(रज़ि.)* को अब बिलकुल इत्मीनान था। उनके दिल की घबराहट और परेशानी दूर हो चुकी थी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* के बारे में अब किसी ख़तरे की आशंका नहीं थी।

दूसरे दिन दोपहर का समय था। धूप की गर्मी से शरीर भुना जा रहा था। अबू-बक्र *(रज़ि.)* की इच्छा हुई कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* कुछ आराम कर लें। उन्होंने हर तरफ़ नज़र दौड़ाई। एक चट्टान के नीचे साया नज़र आया। वे वहीं जाकर उतर गए। जल्दी से उन्होंने आपके लिए जगह ठीक की। बकरी की खाल बिछाई और फिर खाना पेश किया। सबने एक साथ बैठकर खाना खाया। आप थोड़ी देर आँख बन्द कर लेट गए और आराम फ़रमाने लगे।

सूरज अब ढल चुका था। पास ही एक चरवाहा बकरी चरा रहा था। अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उसके पास जा कर दूध दूहने को कहा। फिर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास आए और दूध में थोड़ा सा पानी मिलाकर पीने के लिए पेश किया। आप *(सल्ल.)* ने दूध पी लिया तो फ़रमाया, "क्या अभी चलने का वक़्त नहीं हुआ?" फिर आप वहाँ से रवाना होने के लिए तैयारी करने लगे। अचानक अबू-बक्र *(रज़ि.)* की नज़र दक्षिण की तरफ़ पड़ी। देखा एक सवार बहुत तेज़ी से चला आ रहा है। अबू-बक्र *(रज़ि.)* का दिल धक-धक करने लगा। उन्होंने कहा—

"अल्लाह के रसूल! अब तो हम धर लिए गए!" मगर आप *(सल्ल.)* के इत्मीनान का वही हाल था। बहुत ही सुकून के साथ फ़रमाया—

"अबू-बक्र! घबराओ नहीं। अल्लाह हमारे साथ है।" अल्लाह सचमुच उनके साथ था।

सुराक़ा का घोड़ा अब बहुत क़रीब आ चुका था। अब वह बिलकुल नज़रों के सामने था। उसकी टापों की आवाज़ कानों में आ रही थी। यकायक घोड़े को बहुत ज़ोर की ठोकर लगी। इस बार उसके पाँव घुटनों तक ज़मीन में थे और सवार लुढ़क कर ज़मीन पर। सुराक़ा का चेहरा

रेत से बिलकुल अट गया और हिम्मत ने भी बिलकुल जवाब दे दिया। सुराक़ा को यक़ीन हो गया कि हालात अच्छे नहीं। मैंने जिस काम का बीड़ा उठाया है, ख़ुदा उससे ख़ुश नहीं। वह वहीं पर रुक गया और ज़ोर से आप *(सल्ल.)* को और साथियों को आवाज़ दी—

"मैं जोशम का बेटा सुराक़ा हूँ। ज़रा ठहर जाओ। कुछ बातें करना चाहता हूँ। ख़ुदा की क़सम, कोई नुक़सान नहीं पहुँचाऊँगा। इत्मीनान रखो, मैं कुछ नहीं करूँगा।"

मुहम्मद *(सल्ल.)* : "अबू बक्र! पूछो, क्या चाहता है।"

अबू बक्र *(रज़ि.)* : "कहो, क्या चाहते हो?"

सुराक़ा : "अम्न की तहरीर।"

सरापा रहमत प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उसकी दरख़ास्त क़बूल कर ली और अबू-बक्र *(सल्ल.)* को लिखने का हुक्म दिया। चमड़े का टुकड़ा था, आप *(सल्ल.)* ने जो कुछ फ़रमाया, अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उसपर लिख दिया। फिर सुराक़ा को दे दिया। सुराक़ा ने उसको लिया और घोड़े पर सवार होकर मक्का लौट आया।

सुराक़ा के साथ जो कुछ हुआ उसके बारे में उसने किसी को कुछ न बताया। अब उसको आपसे बेहद मुहब्बत थी। बड़ा प्रेम और हमदर्दी थी। अब अगर वह देखता कि कोई आप *(सल्ल.)* का पीछा करने जा रहा है या आपको तलाश करने के लिए निकल रहा है तो उसे बहकाता और जिस तरह बन पड़ता उसे रोकने की कोशिश करता।

(4)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हिजरत फ़रमाई तो मक्का में अली *(रज़ि.)* के लिए कुछ न रहा। एक तो जान का ख़तरा था, फिर आपसे दूरी का सदमा। इसलिए वहाँ की एक-एक चीज़ उन्हें काटने लगी और प्यारे नबी *(सल्ल.)* की याद सताने लगी। अब वे हर वक़्त बेक़रार रहते और आपसे मिलने के लिए बेताब। अमानतों की वापसी से छुट्टी मिली तो मौक़ा पाते ही मक्का से निकल पड़े। सवारी के लिए न कोई ऊँटनी थी न कोई ख़च्चर। लेकिन आपसे जा मिलने के शौक़ में पैदल ही चल पड़े और बड़ी बेताबी से तेज़-तेज़ क़दम बढ़ाने लगे।

सुबहानल्लाह! अली *(रज़ि.)* की यह वफ़ादारी और सआदतमन्दी!

कितने ऊँचे इनसान थे वे! और कितनी नेक थी उनकी तबीअत!

उस ज़माने का लम्बा सफ़र...... वह भी तन्हा और ख़ाली हाथ...... और वह भी पैदल! कितनी बुलन्द थी उनकी हिम्मत और कितना मज़बूत था उनका इरादा!

रास्ता भी कैसा? भयानक रेगिस्तान! हर तरफ़ वीरान और सुनसान! न कहीं साया, न कहीं पानी। ऊपर से चिलचिलाती हुई धूप, नीचे तपती हुई रेत जैसे आग की चिंगारियाँ लेकिन ये सब चीज़ें एक तरफ़ और प्यारे नबी की मुहब्बत एक तरफ़। हज़रत अली *(रज़ि.)* बेइख़्तियार ख़तरों में कूद पड़े। रास्ते की परेशानियाँ झेलते रहे। ऊँचे-नीचे कठिन रास्ते तय करते और रात-दिन आगे बढ़ते रहे। उनको बस एक ही धुन थी, एक ही उनकी आरज़ू थी और एक ही तमन्ना, प्यारे नबी *(सल्ल.)* का साथ, सच्चे साथियों से मुलाक़ात और बस।

वे चलते रहे, चलते रहे, यहाँ तक कि तलवे लहूलुहान हो गए। पैर बेजान हो गए। चलने की ताक़त न रही। लेकिन हौसले अभी जवान थे। एक धुन थी जो उन्हें बेइख़्तियार खींचे लिए जा रही थी। उनके पैर – ख़ून में नहाए हुए पैर– तेज़ी से बढ़े चले जा रहे थे। अब उनको यह गवारा न था कि ज़रा ठहर कर दम ले लें। थकान से चूर शरीर को कुछ आराम दे लें। वे दर्द की टीस और थकान की तकलीफ़ पर सब्र करते रहे। और बेताबी के साथ प्यारे नबी *(सल्ल.)* की तरफ़ दौड़ते रहे।

मदीना से तीन मील के फ़ासले पर एक छोटी सी आबादी थी। यह ज़रा ऊँचाई पर थी। आलीया और क़ुबा के नाम से मशहूर थी। यहाँ मुसलमानों के कई ऊँचे घराने आबाद थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* उनके मेहमान हुए और चौदह दिन वहीं ठहरे रहे। आपने वहाँ ठहरने के दौरान ख़ुद अपने मुबारक हाथों से एक मस्जिद की बुनियाद डाली, जो 'क़ुबा मस्जिद' के नाम से मशहूर हुई। यहीं पर अली *(रज़ि.)* की आपसे मुलाक़ात हो गई और फिर छोटा मुजाहिद बड़े मुजाहिद के साथ हो गया। अब ख़ुशी का क्या ठिकाना था। एक ही साथ तीन-तीन ख़ुशियाँ जमा थीं। मुलाक़ात की ख़ुशी, दुश्मनों से छुटकारे की ख़ुशी और फिर जाँनिसार साथियों में पहुँचने की ख़ुशी। चौदह दिन गुज़र गए तो आपने साथियों के साथ मदीना शहर का रुख़ किया।

मदीना में आप *(सल्ल.)* के आने की ख़बर पहुँच चुकी थी। अब क्या था! हर तरफ़ एक अद्‌भुत दृश्य था। मुसलमान, मुशरिक और यहूदी सब ख़ुशी से उछल रहे थे और हर्ष के गीत गा रहे थे। सारे ही लोग बड़े शौक़, मुहब्बत और बेताबी से आपका इन्तिज़ार कर रहे थे। हर तरफ़ एक हमाहमी थी। नन्हें-नन्हें बच्चे तक ख़ुशी से नाच रहे थे और गलियों में कहते फिरते थे, "प्यारे नबी आ रहे हैं।" लोग हर रोज़ सुबह तड़के ही शहर से बाहर निकल जाते और बेताबी के साथ उफ़ुक़ (क्षितिज) पर नज़रें जमा देते। इसी तरह वे देर तक आपका रास्ता देखते रहते और फिर निराश होकर हसरत के साथ लौट आते। एक दिन इन्तिज़ार करके वापस आ चुके थे कि एक ऊँचे टीले से आवाज़ बुलन्द हुई और पूरे वातावरण में गूँज उठी—

"लोगो! जिसका इन्तिज़ार था वह आ गया।"

यह एक छोटा सा वाक्य था, जिसपर सारा मदीना बेताब हो उठा। सबके दिल बल्लियों उछलने लगे। मर्दों के सीने ख़ुशी से उमड़ आए और बच्चों और औरतों के चेहरे फूल की तरह खिल उठे।

यह आवाज़ एक यहूदी की आवाज़ थी, जो मुसलमानों की तरह बेताबी से मुहम्मद *(सल्ल.)* का इन्तिज़ार कर रहा था। उसने अपनी आँखों से देखा कि हर मुसलमान मुहम्मद *(सल्ल.)* के इन्तिज़ार में ख़ुशी से बेक़ाबू है। हर एक के घर मानो ईद है। हर ओर एक अजीब धूमधाम और चहल-पहल है। और यह सिर्फ़ इसलिए है कि मुहम्मद *(सल्ल.)* आ रहे हैं! इससे वह बहुत प्रभावित हुआ। अब वह भी सरापा इन्तिज़ार था। आज उसने देखा कि एक छोटा-सा क़ाफ़िला आ रहा है। समझ गया कि यह वही सब का प्यारा मेहमान है और ख़ुशी से पुकार उठा, "लोगो! जिसका इन्तिज़ार था वह आ गया।"

तमाम बूढ़े और जवान बेताबी के साथ आपके स्वागत के लिए घरों से निकल आए। अधिकतर लोग आपको पहचानते न थे, क्योंकि उन्होंने आपको कभी देखा न था। लेकिन उनके दिल आपको ख़ूब जानते थे। उनके सीनों में शौक़ और मुहब्बत का समुद्र ठाठें मार रहा था।

खजूर के पेड़ के नीचे प्यारे नबी और आपके साथियों से मुलाक़ात हुई। लोग शौक से बेताब थे। लेकिन पहचान न सकते थे। हज़रत

अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने धूप से बचाने के लिए आपके सिर पर चादर तानी, तब लोगों को मालूम हुआ कि यही अल्लाह का प्यारा रसूल है।

यह जुमा का दिन था। रास्ते में नमाज़ का वक़्त हो गया। उस समय आप *(सल्ल.)* बनी-सालिम के मुहल्ले में थे। आपने जुमा की नमाज़ यहीं पढ़ी। आपके साथ उन जाँनिसारों ने भी नमाज़ पढ़ी, जो आपको देखने से पहले ही मुसलमान हो चुके थे।

इसके बाद अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* मदीना में दाख़िल हुए......उस पाक इलाक़े में जिसने आपको हाथों-हाथ लिया, जबकि अपने वतन ने आपका साथ न दिया। आपके ननिहाली रिश्तेदार बनू-नज्जार हथियारों से सज-सज कर आए। क़ुबा से मदीना तक आपके दोनों तरफ़ जाँनिसारों की क़तारें थीं।

एक अद्भुत दृश्य था यह! न जाने कितने साल गुज़र गए थे। ख़ुशी और ग़म की हज़ारों घटनाएँ घटित हो चुकी थीं। बड़े से बड़े मेले और जश्न मनाए जा चुके थे। लेकिन ...... मदीना की गलियों ने कभी ऐसा नज़ारा न देखा था।

मदीना के हर ख़ानदान की तमन्ना थी कि वह अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* को अपना मेहमान बनाए। हर क़बीला सामने आकर अर्ज़ करता—

"अल्लाह के रसूल! आप हमारे यहाँ ठहरें। देखिए, यह घर है, यह माल है, यह जान है।" अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* मुस्कराते हुए उसका शुक्रिया अदा फ़रमाते और उनके लिए दुआ करते। उस समय आप ऊँटनी पर सवार थे। आपने उसकी महार ढीली कर दी और फ़रमाया— "मैं वहाँ ठहरूँगा जहाँ अल्लाह ठहराएगा।"

ऊँटनी मदीना की गलियों में चल रही थी और सहाबा *(रज़ि.)* आपके इर्द-गिर्द थे। लोगों का एक समूह था जो जोश में नारे लगा रहा था, "अल्लाहु-अक्बर! मुहम्मद आ गए। अल्लाहु-अक्बर! अल्लाह के रसूल आ गए।"

नन्हे-नन्हे लड़के और मासूम बच्चियाँ ढपली बजा रही थीं और ख़ुशी से गाती जा रही थीं :

"वदा की घाटियों से चौदहवीं का चाँद हमारे सामने निकल आया।

हम पर खुदा का शुक्र वाजिब है, जब तक दुआ माँगनेवाला दुआ माँगे। ऐ हम में आनेवाले! यहाँ तेरी बातें सुनी जाएँगी।"

औरतें घरों की छतों पर चढ़ गईं थीं। अपने प्यारे मेहमान को एक नज़र देख लेने के लिए। मर्द ऊँची जगहों पर चढ़ गए थे और इस तरह श्रद्धांजलि पेश कर रहे थे।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की ऊँटनी चलती रही, चलती रही। और फिर एक जगह आकर ठहर गई और वहीं बैठ गई। यह ख़ानदान नज्जार के दो यतीमों की ज़मीन थी। उसमें कुछ क़ब्रें थीं और कुछ खजूर के पेड़ थे।

ऊँटनी बैठी तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* उतर आए। फ़रमाया, "यह ज़मीन किसकी है?" (आप *(सल्ल.)* यहाँ मस्जिद बनाना चाहते थे)

अफ़रा के बेटे मुआज़ आगे बढ़े और अर्ज़ किया, "अल्लाह के रसूल! सहल और सुहैल दो बच्चे हैं। यह ज़मीन उन्ही की है। बाप का साया सिर से उठ चुका है। अब वे दोनों मेरी परवरिश में हैं। आप खुशी से यहाँ मस्जिद बनवाएँ, मैं उन्हें राज़ी कर लूँगा।"

आप *(सल्ल.)* ने उन यतीमों को बुलाया। दोनों ने अपनी यह ज़मीन आपको मुफ़्त देने की ख़ाहिश की। आपने इसे पसन्द नहीं किया और क़ीमत देकर उसे ख़रीद लिया। ज़मीन बराबर की गई और मस्जिद बननी शुरू हो गई।

आप *(सल्ल.)* हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी *(रज़ि.)* के मेहमान हुए। अब क्या था! वे ख़ुशी से निहाल हो गए। हज़रत अबू-अय्यूब अनसारी *(रज़ि.)* आपका बहुत ख़याल रखते। हर तरह का आराम पहुँचाने की कोशिश करते। सात महीने आप यहीं ठहरे रहे। इस मुद्दत में मस्जिद बनकर तैयार हो गई। फिर मस्जिद के क़रीब ही प्यारे नबी की नेक बीवियों के लिए कुछ कोठरियाँ बनीं, जिन्हें हुजरा कहते हैं। अब आप यहीं चले आए।

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* बनी-नज्जार क़बीले में ठहरे तो क़बीले वालों को कितनी ख़ुशी हुई, इसका अन्दाज़ा कौन करे? नज्जार की बच्चियाँ ख़ुशी से उछलती थीं और बेख़ुद होकर यह गीत गाती थीं—

"हम नज्जार ख़ानदान की लड़कियाँ हैं। ऐ है, मुहम्मद हमारे पास रहेंगे।"

(5)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* मदीना में रहने लगे। रहते-रहते काफ़ी दिन हो गए। ये दिन बहुत सुकून से गुज़रे। हर तरह का आराम था। किसी प्रकार का डर और ख़तरा न था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने नेक बीवियों को भी बुलवा लिया और प्यारी बेटियाँ भी आ गईं। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने अपने बेटे अब्दुल्लाह को लिख दिया। वे भी माँ और बहिनों को लेकर मदीना आ गए। दूसरे साथियों ने भी बाल-बच्चों को बुला लिया। जो मुसलमान मक्का में रह रहे थे, वे भी मदीना चले आए। साथ में बीवी-बच्चों को भी लाए। ये लोग मदीना आए तो बिलकुल ख़ाली हाथ थे। साथ में कुछ भी न था। बड़ी तंगी का सामना था। अनसार उनकी बहुत मदद करते। उनके आराम का ख़याल रखते। लेकिन फिर भी कोई बाक़ायदा इन्तिज़ाम न था।

अल्लाहु-अकबर! प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सुनीति को क्या कहिए! बस सुनिए और दाद दीजिए। आपने अनसार और मुहाजिरों को जमा किया। अनसार से फ़रमाया—

"ये मुहाजिर तुम्हारे भाई हैं।" इसके बाद आप *(सल्ल.)* एक अनसारी को बुलाते, फिर एक मुहाजिर को बुलाते और फ़रमाते, "यह और तुम भाई-भाई हो।"

अब वे सचमुच भाई-भाई थे। अनसार अपने-अपने भाइयों को अपने घरों पर ले गए। और उन्हें अपने यहाँ ठहराया। रहने के लिए घर दिया। माल और जायदाद में उनका हिस्सा तय किया और हर तरह के आराम का इन्तिज़ाम किया। अब मदीना उनका अपना वतन था। वहाँ हर तरह की सुहूलत थी।

इस भाई-चारे से बड़ा फ़ायदा हुआ। अनसार और मुहाजिरों के सम्बन्ध मज़बूत हो गए। दोनों में गहरी मुहब्बत और लगाव हो गया। हर एक दूसरे को दिल से चाहने लगा। हर एक जो अपने लिए पसन्द करता, वह भाई के लिए भी पसन्द करता। जो चीज़ ख़ुद को नापसन्द होती, वह भाई के लिए भी नापसन्द होती। यों समझिए, अब वे एक जान, दो जिस्म थे।

मुहाजिर तो हाथ-पैर मारने के आदी थे। मौक़ा पाते ही कारोबार में लग गए। कोई तो तिजारत में लग गया। कोई अनसार की ज़मीन में खेती करने लगा। हरकत में बरकत तो होती ही है, अल्लाह ने कारोबार में बरकत दी। बहुत जल्द वे अपने पैरों पर खड़े हो गए और फिर से अपने घर बसा लिए।

कुछ मुसलमान ऐसे भी थे, जो बहुत ज़्यादा ग़रीब थे। रहने के लिए कोई ठिकाना न था। किसी कारोबार के लायक़ न थे। तीन-तीन दिन फ़ाके में गुज़र जाते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* उनका बहुत ख़याल रखते थे। बैतुलमाल (ख़ज़ाने) से पैसे भी देते। मस्जिदे-नबवी के किनारे पर एक चबूतरा था, रात में बेचारे वहीं पड़े रहते थे।[1]

मदीना में यहूदियों की भी अच्छी—ख़ासी आबादी थी। ये अरब के महाजन थे। सीरिया तक उनका कारोबार फैला हुआ था। दौलत में ये सबसे बढ़े हुए थे। इसलिए मदीना पर इन्ही की हुकूमत थी। वहाँ अम्न और शान्ति की एक ही सूरत थी कि ये खुश रहें। सम्बन्ध इनसे खुशगवार रहें।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने सोचा, यहूदियों से समझौता हो जाए। मदीना में मुसलमान और यहूदी सब आज़ादी से रहें। कोई किसी के धर्म का निरादर न करे। कोई किसी के माल को हाथ न लगाए। कोई दुश्मन शहर पर हमला करे तो मुक़ाबले में दोनों एक हों। जंग में अगर कुछ माल हाथ लगे तो उसमें वे भी बराबर के शरीक हों। आप *(सल्ल.)* ने यहूदियों से बातचीत की। वे खुशी-खुशी समझौते के लिए राज़ी हो गए। सब एक जगह जमा हुए और एक समझौता लिखा गया।

कुछ यहूदी बड़े अच्छे थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* को देखा तो समझ गए कि ये अल्लाह के नबी हैं। हमारी किताबों में इन्ही के आने की खुशख़बरी है। अल्लाह के आख़िरी रसूल यही हैं। जिस दीन को हमने भुला दिया है, उसी दीन की दावत देते हैं। उनको पूरा यक़ीन हो गया और वे ईमान ले आए। लेकिन ज़्यादातर यहूदी इस बात के लिए कभी तैयार न थे कि मुहम्मद कोई नया दीन पेश करें, जिससे उनके दीन पर

1. अरबी भाषा में चबूतरे को "सुफ़्फ़ा" कहते हैं। इसलिए ये लोग असहाबे-सुफ़्फ़ा (चबूतरेवाले) कहलाए।

कोई असर पड़े।

शुरू में तो वे प्यारे नबी *(सल्ल.)* और मुसलमानों के आने से बहुत ख़ुश हुए। ख़ुशी-ख़ुशी समझौता करने पर भी राज़ी हो गए। इसकी एक वजह थी। वे चाहते थे कि आपको अपने में मिला लें। आपको भी अपने रंग में रंग लें। उन्होंने सोचा कि इस तरह ये सारे मुसलमान भी हमारे हम ख़याल हो जाएँगे। फिर तो हमारा धर्म ख़ूब फैलेगा। दिन दूनी रात चौगुनी तरक़्क़ी करेगा। हर तरफ़ उसका डंका बजेगा और ईसाई धर्म का नामोनिशान तक मिट जाएगा।

यहूदी मुद्दत से एक नबी के इन्तिज़ार में थे। जहाँ-जहाँ उन्हें 'नबी' के आने की उम्मीद थी, वहाँ-वहाँ जाकर बसते थे। उनका ख़याल था कि आनेवाला नबी हमारे धर्म का अनुयायी होगा और जब वह आएगा तो हमारे धर्म के पैर जम जाएँगे। हर तरफ़ उसी का बोलबाला होगा। मगर आप *(सल्ल.)* ने उनके दीन से अलग दीन पेश किया। नई-नई बातें बताईं। वे बातें यहूदियों के बिलकुल ख़िलाफ़ थीं। भला अब उनमें बर्दाश्त की कहाँ ताक़त थी? अब सब्र और ख़ामोशी का क्या सवाल था? अब तो आप *(सल्ल.)* उनके लिए हलक़ का काँटा बन गए। समझौते का उन्होंने कोई ख़याल न किया और विरोध में सारा ज़ोर लगा दिया। लगाने-बुझाने में तो माहिर थे ही। "दूसरों को लड़ाओ, फिर अपना काम बनाओ।" यह उनका उसूल था। इसी उसूल से उन्होंने यहाँ भी काम लिया और मुसलमानों में फूट डालने की कोशिश की। लेकिन इसमें उन्हें नाकामी हुई। फिर भी वे निराश न हुए और अब उन्होंने एक दूसरी चाल चली। अब वे मदीना के मुशरिकों के कान भरने लगे। वे उनकी बातों में आ गए और उनके साथ हो गए। लेकिन जो मुसलमान थे, वे तो एक दूसरे पर जान देते थे। ख़ुद दुख उठाते, मगर अपने भाई को आराम पहुँचाते। वे भला इन बदक़िस्मतों की बातों में कैसे आते। उन्होंने इन्हें बुरी तरह फटकार दिया और नफ़रत से मुँह फेर लिया और इस्लाम फैलाने में तन-मन-धन से लगे रहे।

सत्य का सन्देश तलवारों की छाँव में

(1) मुसलमानों के लिए जंग की इजाज़त

(2) मुसलमानों का सुरक्षा-प्रयास

(3) अबू-सुफ़ियान की शाम (सीरिया) की यात्रा

(4) आतिका का स्वप्न

(5) ज़मज़म का आग लगाना

(6) क़ुरैश की जंगी तैयारियाँ

(7) क़ुरैश के लश्कर की रवानगी

(8) अबू-सुफ़ियान का सन्देशवाहक

(9) अबू-जहल का अहंकार

(10) अबू-सुफ़ियान की चिन्ता

(11) प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सहाबा *(रज़ि.)* से सलाह

(12) सहाबा *(रज़ि.)* के वीरतापूर्ण भाषण

(13) मदीना से इस्लामी फ़ौज की रवानगी

(14) मैदाने-जंग में प्यारे नबी *(सल्ल.)* का ऐतिहासिक भाषण

(15) क़ुरैश के जासूस और उनकी प्रतिक्रिया

(16) बद्र के मैदान में सत्य और असत्य एक दूसरे के मुक़ाबिल

(17) असत्य के पुजारियों के यहाँ शोक छा गया

(18) प्यारे नबी *(सल्ल.)* के क़त्ल की दोबारा साज़िश और फिर नाकामी

(1)

'जिन मुसलमानों से लड़ाई की जाती है, उनको भी अब लड़ने की इजाज़त दी जाती है, क्योंकि उनपर अत्याचार किया जा रहा है और अल्लाह उनकी मदद करने की बेशक ताक़त रखता है।' (क़ुरआन, 22:39)

मक्का में मुसलमानों पर अत्याचार होते रहे और वे उन्हें सहते रहे। तरह-तरह की सख़्तियाँ उनपर होती रहीं, लेकिन वे सब्र करते रहे। जब पानी सिर से ऊँचा हो गया, अत्याचार बर्दाश्त से बाहर हो गए तो अल्लाह ने मुसलमानों को मदीना चले जाने का आदेश दिया। वहाँ पहुँचकर मुसलमानों की स्थिति बहुत मज़बूत होने लगी। यह देखकर मुशरिकों के दिल जलने लगे। उन्होंने मुसलमानों का ज़ोर तोड़ने का फ़ैसला कर लिया। वे मदीना पर चढ़ाई करने की योजनाएँ बनाने लगे। अल्लाह ने भी मुसलमानों को लड़ाई की इजाज़त दे दी। हुक्म हुआ कि अब ताक़त का जवाब ताक़त से दो। सख़्ती के मुक़ाबले में सख़्ती करो। अगर दुश्मन तुम्हारी ओर बढ़ें तो उनको पूरी ताक़त से जवाब दो।

उधर मदीना में भी एक गरोह पैदा हो गया था। यह था मुनाफ़िक़ों (कपटाचारियों) का गरोह और मुसलमानों का कट्टर दुश्मन। उनके ईमान के लिए सख़्त ख़तरा! यह गरोह खुलकर कभी सामने न आता। अन्दर ही अन्दर इस्लाम से कुढ़ता। दोस्त बनकर मुसलमानों को बहकाता। अल्लाह ने इस गरोह के साथ भी सख़्ती से निपटने का हुक्म दिया।

मक्का प्यारे नबी *(सल्ल.)* का अपना वतन था और बहुत से मुसलमानों का भी वतन था। अपने वतन से उन्हें बेहद प्रेम था, लेकिन वहाँ की ज़मीन उनपर तंग हो गई। साँस लेना तक दूभर हो गया। मजबूर होकर बे-वतन होना पड़ा। अपनी दौलत और जायदाद सबसे हाथ धोना पड़ा। हद तो यह है कि काबा भी छिन गया। हज और तवाफ़ पर पाबन्दी लग गई। इस बात का प्यारे नबी *(सल्ल.)* को बड़ा दुख था और मुसलमानों को भी। अब उनकी नज़रें मक्का की ओर उठने लगीं।

ज़ालिमों से जंग करने का हुक्म उन्हें मिल ही चुका था। इस्लाम

की हिफ़ाज़त के लिए तलवार इस्तेमाल करने की इजाज़त मिल चुकी थी। मुसलमानों ने तय किया कि अब ज़ुल्म की आग बुझाएँगे। मुशरिक और मुनाफ़िक़ जो दीन के लिए ख़तरा बने हुए हैं, उस ख़तरे को दबाएँगे। काबा को आज़ाद कराएँगे। हज की रुकावटों को ख़त्म करेंगे।

मक्कावालों में क्या बातें हो रही हैं? उनके क्या इरादे हैं? यह मालूम करने के लिए मुसलमानों ने दौड़ धूप शुरू कर दी। वे टोलियाँ बनाकर मदीना से बाहर निकल जाते। जहाँ क़ुरैश के क़ाफ़िले मिलते उनसे पूछ-ताछ करते और टोह लेते।

ये टोलियाँ, जिन्हें अरबी में 'सराया' कहते हैं, सौ-सौ पचास-पचास आदमियों की होतीं। इनमें पाँच टोलियाँ मशहूर थीं। एक के अमीर हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* थे। दूसरी के हज़रत उबैदा-बिन-हारिस *(रज़ि.)* थे। तीसरी के हज़रत सअद-बिन-अबी वक़्क़ास *(रज़ि.)* थे। चौथी के हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जुहश *(रज़ि.)* थे और पाँचवीं में खुद नबी *(सल्ल.)* शरीक थे। इन टोलियों से क़ुरैश से कभी जमकर मुक़ाबला न हुआ। झगड़े की नौबत आई तो कभी बीच बचाव हो गया, कभी बचकर निकल गए।

इन टोलियों ने एक काम और भी किया। वह यह कि आसपास के क़बीलों से उन्होंने दोस्ती कर ली। उनसे शान्ति के लिए समझौते कर लिए, क्योंकि उनके बिगड़ जाने से मदीना को ख़तरा पैदा हो सकता था। वहाँ अशान्ति फैल सकती थी। इन क़बीलों ने आसानी से समझौते कर लिए और ज़रूरत पड़ने पर मदद करने का भी वादा किया।

हिजरत से पहले जब क़ुरैश को ख़बर मिली थी कि अनसार ने अक़्बा में प्यारे नबी *(सल्ल.)* के हाथ पर बैअत की है। आप *(सल्ल.)* के लिए जान की बाज़ी लगा देने की क़समें खाई हैं। यह सुनकर वे काँप गए थे और समझ गए थे कि अब हमारी शामत आ गई है। जल्द ही एक भयंकर युद्ध का सामना है। वह युद्ध अब सिर पर मंडरा रहा था।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने जब हिजरत की तो क़ुरैश के कान खड़े हो गए और वे समझ गए कि अब बुरे दिन आनेवाले हैं। वे बुरे दिन आज सामने थे। क़ुरैश को अपने सीरिया के व्यापार के बारे में ख़तरा था। वह ख़तरा अब सिर उठा चुका था। क़ुरैश का एक बहुत बड़ा सरदार था, अबू-सुफ़ियान, यह हरब का बेटा था, मक्का से व्यापार के मक़सद

से निकला था। मुसलमानों को भी इसकी ख़बर मिल चुकी थी।

अबू-सुफ़ियान व्यापार के मक़सद से शाम (सीरिया) गया। क़ुरैश के और लोग भी साथ थे। जब वापस हुआ तो दौलत का ठिकाना न था। सामान भी बहुत था।

अबू-सुफ़ियान को डर हुआ कि माल बहुत है आदमी कम हैं। कहीं मुसलमानों का कोई दस्ता छापा न मार दे। अतः उसने क़ुरैश के पास एक आदमी दौड़ाया। यह था अम्र का बेटा ज़मज़म। अबू-सुफ़ियान चाहता था कि क़ुरैश को इस ख़तरे की ख़बर हो जाए, ताकि वे मदद के लिए आ जाएँ। ज़मज़म को भेजते हुए उसने कहा, "मक्का पहुँचते ही ऊँट के दोनों कान काट देना। कजावे का रुख़ बदल देना। अपनी कमीज़ को आगे पीछे से फाड़ देना, फिर ज़ोर-ज़ोर से चीख़ना मदद, मदद!"

मक्का क़ा दस्तूर था कि जब कोई ख़तरे की बात होती तो लोग ऐसा ही करते थे। इस प्रकार पूरे शहर में खलबली मच जाती। देखते-देखते सारे लोग जमा हो जाते।

(2)

हिजरत का दूसरा साल था। शाबान का महीना था। मक्का में अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी आतिका ने एक स्वप्न देखा। स्वप्न बड़ा ही डरावना था। आतिका घबरा गईं। भय से उनके रोंगटे खड़े हो गए। उन्होंने देखा कि एक आदमी ऊँट पर सवार है। वह तेज़ी से बढ़ा चला आ रहा है। फिर 'अबतह' पहुँचकर वह रुक गया और ज़ोर से चिल्लाया, 'क़ुरैश के लोगो! तीन दिन के अन्दर-अन्दर अपनी क़त्लगाहों पर पहुँच जाओ।' यह सुनकर सब लोग जमा हो गए। फिर वह आदमी काबा में दाख़िल हो गया। लोग भी पीछे-पीछे हो गए। सब लोग उसके इर्द-गिर्द खड़े थे। अचानक उसे लेकर ऊँट काबा की छत पर चढ़ गया। फिर वह ज़ोर से चिल्लाया, 'क़ुरैश के लोगो! तीन दिन के अन्दर-अन्दर अपनी क़त्लगाहों पर पहुँच जाओ।' फिर उसका ऊँट एक पहाड़ पर चढ़ गया, अबू-क़बीस नामक पहाड़ पर। वहाँ पहुँचकर वह आदमी फिर ज़ोर से चिल्लाया, 'क़ुरैश के लोगो! तीन दिन के अन्दर-अन्दर अपनी क़त्लगाहों पर पहुंच जाओ।'

फिर उसने एक चट्टान उठाई और पूरी ताक़त से ज़मीन की तरफ़ फेंकी, चट्टान ज़मीन पर गिरते ही चूरा-चूरा हो गई। उसके टुकड़े छटक कर मक्का के सारे घरों में पहुँचे। कोई भी घर उससे न बचा।

आतिका ने अपने भाई अब्बास को बुलाया। उनको अपना स्वप्न सुनाया। सुनकर वे बोले, "देखो बहिन! अब किसी से यह स्वप्न बयान न करना। यह स्वप्न किसी से कहने का नहीं।" लेकिन अब्बास से खुद ही न रहा गया। उन्होंने एक दोस्त से बयान कर दिया। दोस्त से कहना था, जंगल में आग की तरह यह बात पूरे मक्का में फैल गई। अबू-जहल और उसके साथियों को भी मालूम हो गई। उन्होंने सुना तो आतिका का ख़ूब मज़ाक़ उड़ाया। अबू-जहल ने मज़ाक़ उड़ाते हुए अब्बास से कहा, "वाह-वाह! अब तक तो हमारे यहाँ के मर्द ही नबी हो रहे थे, अब औरतें भी नबी होने लगीं।"

लेकिन आतिका का स्वप्न सच्चा निकला। ज़मज़म तीन दिन के बाद मक्का पहुँच गया। मक्का पहुँचकर उसने ऊँट के दोनों कान काट दिए। अपनी क़मीज़ फाड़ डाली। कजावे का रुख़ बदल दिया और चिल्लाया, "कुरैश के लोगो! लुई-बिन-ग़ालिब के सपूतो! तुम्हारा क़ाफ़िला आ रहा है, मुश्क और सुगन्धें ला रहा है, और भी बहुत सा सामान ला रहा है, बढ़कर उसे बचाओ। मुहम्मद और उसके साथी उसे लूट न लें। दौड़ो-दौड़ो मदद के लिए दौड़ो, अपना सामान बचाओ।"

(3)

अरब के स्वाभिमान का हाल किसे नहीं मालूम? अगर कोई व्यक्ति किसी के हाथ से क़त्ल होता तो एक हंगामा खड़ा हो जाता और देखते-देखते युद्ध की आग भड़कने लगती। दोनों तरफ़ से टिड्डी दल उमड़ आता और ख़ून की नदियाँ बह जातीं। फिर ये लड़ाइयाँ सालों तक चलती रहतीं। क़बीले के क़बीले कट जाते। कुटुम्ब के कुटुम्ब बर्बाद हो जाते, लेकिन ये लड़ाइयाँ बन्द होने का नाम न लेतीं।

अरब में लिखने-पढ़ने का रिवाज न था, लेकिन मक़तूल का नाम काग़ज़ पर लिखा जाता और नस्लों तक बच्चों को याद कराया जाता, ताकि वे बड़े हों तो उसका बदला लें। दाहिस और बसूस की तबाहकुन लड़ाइयाँ अरब में मशहूर थीं? चालीस साल तक क़ायम रहीं और

हज़ारों-लाखों जानें उनकी भेंट चढ़ गईं। इनका सबब भी यही था।

रजब सन् 2 हिजरी की बात है। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने बारह आदमियों को नख़ला की घाटी में भेजा, ताकि वहाँ ठहरकर क़ुरैश के इरादों का पता लगाएँ। इत्तिफ़ाक़ से क़ुरैश का एक छोटा सा क़ाफ़िला उधर से गुज़रा। इन लोगों ने उसे लूट लिया। एक आदमी को क़त्ल और दो को बन्दी बना लिया। क़त्ल होनेवाला आदमी अम्र-बिन-हज़रमी था, आमिर-बिन-हज़रमी का भाई। प्यारे नबी *(सल्ल.)* को जब यह मालूम हुआ तो आप बहुत नाराज़ हुए और फ़रमाया, "मैंने तुम्हें इसलिए तो नहीं भेजा था।"

उधर क़ुरैश को मालूम हुआ तो वे गुस्से से पागल हो गए। इन्तिक़ाम की आग उनके दिलों में भड़क उठी। अब वे युद्ध के लिए तत्पर थे और रात-दिन इसी की फ़िक्र में रहते। ज़मज़म की पुकार ने ज़ख़्म पर नमक का काम किया और गुस्से की आग को और भी भड़का दिया। अब वे जोश से बेक़ाबू हो गए और लड़ाई की तैयारी करने लगे। उन्होंने जल्दी-जल्दी बहादुर सिपाहियों को जमा किया। ऊँट घोड़ों का इन्तिज़ाम किया। सारे लोग जल्द से जल्द तैयार हो गए। जिसे देखिए गुस्से से बेताब था। मुहम्मद *(सल्ल.)* से टक्कर लेने पर दूसरों को उभार रहा था। उनके जोश का यह आलम था कि हर आदमी लड़ाई पर जाने के लिए बेताब था और जो नहीं जा सकता था, वह अपनी ओर से आदमी भेज रहा था।

क़ुरैश के सारे सरदार इस मुहिम में शरीक हुए। किन्तु अबू-लहब की हिम्मत न हुई। उसने चार हज़ार दिरहम पर एक आदमी को तैयार कर लिया और अपनी जगह उसे भेज दिया।

अगर कोई जाने से जी चुराता तो साथी बिगड़ते और उसे शर्म दिलाते। कहते, तुम तो औरत हो, घर में घुसे रहने के आदी हो, आख़िरकार उसे शर्म आ जाती और वह जाने के लिए तैयार हो जाता।

कुछ लोग जोश दिलाने और जज़्बात को भड़काने में आगे-आगे थे। सुहैल नामक एक सवार भी उन्ही में था। उसने क़ुरैश के लोगों से कहा, "ग़ालिब के बेटो! क्या तुम पसन्द करते हो कि मुसलमान हमारे क़ाफ़िलों को लूट लें? हमारे सारे सामान पर क़ब्ज़ा कर लें? तमाम ऊँटों

को हँका ले जाएँ? अगर किसी को माल की ज़रूरत हो तो माल हाज़िर है। किसी के पास हथियार न हों तो हथियारों की भी कमी नहीं।"

क़ुरैश साढ़े नौ सौ आदमियों के साथ निकले। साथ में सौ घोड़े और सात सौ ऊँट भी थे। पैदल फ़ौज लोहे में डूबी हुई थी। इसके अलावा सौ कवच थे। साथ में गानेवाली औरतें भी थीं। ये बदक़िस्मत प्यारे नबी *(सल्ल.)* की शान में अशिष्ट काव्य पढ़तीं और इस तरह सिपाहियों के ग़ुस्से की आग को और भड़कातीं।

दुश्मनों का यह लश्कर अकड़ता हुआ चला। हर एक प्यारे नबी *(सल्ल.)* पर दाँत पीस रहा था और ग़ुस्से से होंठ चबा रहा था। अब उनका मक़सद केवल यही नहीं था कि अपने क़ाफ़िले को बचा लाएँ, बल्कि उनका इरादा था कि इस आए दिन के ख़तरे को हमेशा के लिए दबा दें। मदीने में जो ताक़त जमा हो रही है, उसे कुचल डालें, ताकि कारोबारी मार्ग बिलकुल महफ़ूज़ हो जाए।

उधर अबू-सुफ़ियान क़ाफ़िले को लेकर आगे बढ़ा। बढ़ते-बढ़ते हिजाज़ से बहुत क़रीब हो गया। भयभीत तो वह था ही अब आगे की ख़बरें मालूम करने लगा कि कहीं मुसलमानों की पकड़ में न आ जाए।

फिर वह ज़मज़म का इन्तिज़ार करने लगा। उसका विचार था कि ज़मज़म आ रहा होगा और साथ में क़ुरैश भी मदद के लिए आ रहे होंगे। लेकिन कोई न आया।

जब वह रात आई, जिसमें उसे बद्र नामक जल-स्रोत पर पहुँचना था तो ऊँट तेज़ी से पानी की तरफ़ बढ़ने लगे, हालाँकि पानी की उन्हें कोई ज़रूरत न थी। वह एक ही दिन पहले ख़ूब पानी पी चुके थे।

क़ाफ़िलेवालों ने यह माजरा देखा तो घबरा गए। वे सोचने लगे कि अब तक तो ऊँटों ने कभी ऐसा नहीं किया था। आज क्या बात है? रात भी बड़ी अँधेरी थी। निगाह कुछ भी काम नहीं कर रही थी। इससे उनकी घबराहट और बढ़ी और डर से बुरा हाल हो गया।

अबू-सुफ़ियान ने अब रुख़ बदल दिया। उसको डर था कि मुसलमान ताक में होंगे। उसका ख़याल था कि वे बद्र के पास ही छिपे होंगे। उसने अब दूसरा रास्ता पकड़ा। बद्र से हटकर अब वह समुद्र के तट पर चलने लगा। बद्र अब बाईं ओर था और अबू-सुफ़ियान तेज़ी से

मक्का की तरफ़ बढ़ रहा था।

क़ुरैश मक्का से रवाना हो गए। रास्ते में जहाँ पानी देखते पड़ाव डाल देते। ठहर कर ऊँट ज़िब्ह करते, ख़ुद खाते, दूसरों को खिलाते। शराब के दौर चलते। फिर वे वहाँ से आगे चल देते।

इसी तरह वे खाते-पीते, ऐश मनाते, घमण्ड से अकड़ते चले जा रहे थे कि मक्का से एक आदमी उनके पास पहुँचा। उसने कहा—

"भाइयो! अब मक्का लौट चलो। क़ाफ़िला बिलकुल सुरक्षित लौट आया। मुहम्मद और उनके साथियों के हाथ नहीं लगा। भलाई इसी में है कि अब लौट चलो। मदीनावालों से टक्कर लेने की मत सोचो। वे हमें ककड़ी की तरह काट कर रख देंगे।

क़ुरैशी भाइयो! अब आगे न बढ़ो। क़ाफ़िला तो बच गया। इससे ज़्यादा क्या चाहिए। तुम तो क़ाफ़िले ही को बचाने निकले थे। अल्लाह ने उसे ख़ुद ही बचा लिया।"

उस आदमी ने ये बातें उन्ही के भले के लिए कही थीं। लेकिन वे यह सब सुनने के लिए बिलकुल तैयार न थे। ज़्यादातर लोगों ने साफ़ इनकार कर दिया। हाँ, बनी-हाशिम क़बीले की समझ में ये बातें आ गईं। उन्होंने वापस मक्का लौटना चाहा, मगर अबू-जहल बिगड़ गया। उसने कहा, "नहीं, ख़ुदा की क़सम, हम हरगिज़ नहीं लौटेंगे। हम तो बद्र तक जाएंगे।" बद्र एक गाँव है, जहाँ अज्ञान काल में हर साल मेला लगता था। मदीना से लगभग अस्सी मील की दूरी पर है।

वह आदमी अबू-सुफ़ियान के पास वापस मक्का लौट आया। और उसे सारा क़िस्सा सुनाया। जो कुछ बातें हुई थीं, सब बयान कर दीं। अबू-सुफ़ियान ने यह बात सुनी तो उसे बहुत अफ़सोस हुआ और ख़ुद-ब-ख़ुद उसके मुख से ये शब्द निकले—

"हाय मेरी क़ौम! यह सब अबू-जहल का किया-धरा है। वह लौटने पर तैयार न हुआ, क्योंकि वह आज लोगों का सरदार बना हुआ है। उसने लोगों के साथ ज़्यादती की है। उसने अपनी हठधर्मी से काम लिया। सबकी भलाई की बात थी, जो उसने ठुकरा दी। दूसरों की न सुनना बहुत बड़ा ऐब है। इसका अंजाम तबाही और बर्बादी है।"

(4)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को जब यह बात पता लगी कि अबू-सुफ़ियान अपने तिजारती क़ाफ़िले के साथ शाम (सीरिया) से लौटकर मक्का जा रहा है और दूसरी तरफ़ मक्का के क़ुरैश मदीना पर चढ़ाई करने के लिए आगे बढ़ रहे हैं तो आप *(सल्ल.)* ने समझ लिया कि फ़ैसले की घड़ी आन पहुँची है। अगर इस समय साहस से काम न लिया गया तो इस्लामी दावत हमेशा के लिए बेजान हो जाएगी और सिर उठाने का कोई मौक़ा न पाएगी। मदीना में आए अभी दो साल भी नहीं हुए हैं, मुहाजिरों के पास न सामान है, न दौलत। अलसार अभी ना-तजरिबेकार हैं। यहूदी विरोध करने पर तुले हैं। ख़ुद मदीना के मुशरिकों और मुनाफ़िक़ों से ख़तरा हर समय सिर पर मंडरा रहा है। ऐसे हालात में अगर क़ुरैश मदीना पर हमला करते हैं तो मुमकिन है कि मुसलमानों की मुट्ठी भर जमाअत का ख़ातिमा ही हो जाए। लेकिन अगर वे हमला न भी करें, केवल अपनी ताक़त से क़ाफ़िले ही को बचाकर ले जाएँ और मुसलमान छिपे बैठे रहें, तब भी मुसलमानों की ऐसी हवा उखड़ेगी कि अरब का बच्चा-बच्चा उनपर दिलेर हो जाएगा और फिर पूरे देश की धरती उनके लिए तंग हो जाएगी। आसपास के जितने क़बीले हैं, क़ुरैश के इशारों पर नाचने लगेंगे। मदीना के मुशरिक बिलकुल निडर हो जाएँगे और यहूदी व मुनाफ़िक़ खुल्लम-खुल्ला सिर उठाएँगे। फिर मदीना में जीना मुश्किल होगा। मुसलमानों का कोई असर और दबदबा बाक़ी न रहेगा। जो चाहेगा, उनको मारेगा और उनके माल और इज़्ज़त को बेझिझक लूटेगा। इन्ही वजहों से आप *(सल्ल.)* ने यह फ़ैसला कि किया उनके पास जो ताक़त है, उसे लेकर निकलेंगे और मैदान में पहुँच कर फ़ैसला करेंगे कि जीने का बल-बूता किस में है।

यह तय करके आप *(सल्ल.)* ने सबको जमा किया और सारी स्थिति उनके सामने रख दी कि एक ओर उत्तर में तिजारती क़ाफ़िला है और दूसरी ओर दक्षिण से क़ुरैश का लश्कर आ रहा है। बताओ कि किधर चलने का ख़याल है? आपकी इस बात के जवाब में एक बड़े गरोह ने कहा, "क़ाफ़िले की तरफ़।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* के सामने कुछ और चीज़ थी, इसलिए आपने अपना सवाल फिर दोहराया।

इसपर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* उठे। उन्होंने बड़ी ही बहादुराना तक़रीर की उनके बाद हज़रत उमर *(रज़ि.)* उठे। उन्होंने भी बहुत उम्दा और जोशीली तक़रीर की। इसके बाद अम्र के बेटे मिक़दाद *(रज़ि.)* खड़े हुए। उन्होंने कहा—

"अल्लाह के रसूल! जिधर रब का हुक्म है, उसी ओर चलिए। हम आपके साथ हैं। बनी-इस्राईल ने तो अपने नबी से कहा था कि आप और आपका खुदा जाएँ और जंग करें, हम तो यहाँ बैठ हैं। लेकिन हम ऐसा कहनेवाले नहीं। हम तो यह कहते हैं कि चलिए आप और आपका खुदा जंग कीजिए, हम भी आपके साथ होकर जंग करेंगे और जब तक हम में कोई एक आदमी भी ज़िन्दा है, हम आपका साथ न छोड़ेंगे।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यह भाषण सुना तो आप *(सल्ल.)* बहुत खुश हुए। आपने हज़रत मिक़दाद *(रज़ि.)* की तारीफ़ की और उन्हें दुआ दी। फिर फ़रमाया, "लोगो! तुम भी तो कुछ बोलो।"

अनसार समझ गए कि आप *(सल्ल.)* का इशारा हमारी ओर है। दरअसल अनसार के लिए यह पहला मौक़ा था। इससे पहले वे किसी मुहिम में शरीक न हुए थे।

हज़रत सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* मदीना के प्रतिष्ठित लोगों में से थे, वे उठे और कहा, शायद इशारा हमारी तरफ़ है? आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "हाँ, में मदीनावालों की ज़बान से भी कुछ सुन्ना चाहता हूँ।"

हज़रत सअद *(रज़ि.)* ने कहाँ, "मैं इस समय सारे अनसार की ओर से बोल रहा हूँ। अल्लाह के रसूल! हम आप पर ईमान लाए हैं। हमने आपको सच्चा समझा है। हमने गवाही दी है कि आपकी बातें हक़ हैं। हम आपकी फ़रमाँबरदारी का वचन दे चुके हैं। अल्लाह के नबी! अब आपने जिस काम का इरादा किया है, बेझिझक उसके लिए क़दम बढ़ाइए। खुदा की क़सम अगर आप हमें लेकर समुद्र में कूद पड़ें तो भी हम बखुशी तैयार हैं। हममें से कोई पीछे नहीं रहेगा। आप जिससे चाहें सन्धि कर लें, जिससे चाहें युद्ध करें। हमारी दौलत भी आपके क़दमों में है। जितनी चाहिए ले लीजिए। आप जितनी अधिक दौलत स्वीकार करेंगे, उतनी ही अधिक हमें खुशी होगी। मैं इस रास्ते पर कभी नहीं गया हूँ, न मुझे इसके बारे में कोई जानकारी है, लेकिन हम दुश्मन से

भागनेवाले नहीं। हम तो मैदाने-जंग के शेर हैं। मुक़ाबले में डट जानेवाले लोग हैं। आशा है कि हम बहादुरी के ऐसे-ऐसे कारनामे दिखाएँगे कि आप ख़ुश हो जाएँगे।"

यह प्रेम और निष्ठा से पूर्ण भाषण था, जिसे सुनकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* बड़े ख़ुश हुए। आपने हज़रत सअद (रज़ि.) का शुक्रिया अदा किया और उनके लिए दुआ की।

हज़रत सअद *(रज़ि.)* के भाषण के बाद आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया— "अल्लाह का नाम लेकर चल पड़ो। उसकी रहमतें तुम्हारे साथ हैं। उसने मुझसे बड़े गरोह का वादा किया है। ख़ुदा की क़सम, मुझे तो दुश्मनों की क़त्लगाहें नज़र आ रही हैं।"

फिर आप *(सल्ल.)* ने साथियों को दुश्मनों की क़त्लगाहें बताईं कि फ़ुलाँ आदमी इस जगह क़त्ल होगा, फ़ुलाँ आदमी उस जगह दम तोड़ेगा।

लोग समझ गए कि अब क़ाफ़िला हाथ नहीं आएगा। अब लड़ाई छिड़कर रहेगी।

हिजरत का दूसरा साल था। रमज़ान का महीना था। मदीना से एक मील के फ़ासले पर एक स्थान है। 'बीरे-अबी-इनबा'। आप *(सल्ल.)* वहाँ पहुँचे तो फ़ौज का जायज़ा लिया। जो कम उम्र थे, उन्हें वापस कर दिया। फिर वहाँ से जंग के लिए रवाना हो गए। बुद्ध की रात में रौहा पहुँचे। वहाँ पहुँचकर आपने वुज़ू किया और नमाज़ के लिए खड़े हो गए। आख़िरी रुकू करने के बाद दुश्मनों पर लानत भेजी। फिर फ़रमाया, "ऐ ख़ुदा, अबू-जहल इस उम्मत का फ़िरऔन है, उसे ज़िन्दा न छोड़।"

उसी दिन आप *(सल्ल.)* ने फ़ौजी उसूलों के मुताबिक़ फ़ौज को तैयार किया। मुहाजिरों का झण्डा हज़रत मुसअब-बिन-उमैर *(रज़ि.)* को प्रदान किया। ख़ज़रज का झण्डा हज़रत हुबाब-बिन-मुंज़िर *(रज़ि.)* को दिया और औस का झण्डा हज़रत सअद-बिन-मुआज़ को दिया गया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* साथियों को लेकर आगे बढ़े। उनकी तादाद सिर्फ़ तीन सौ तेरह थी। साथ में केवल सत्तर ऊँट और तीन घोड़े थे। बद्र के पास पहुँचकर आप *(सल्ल.)* रुक गए। अली *(रज़ि.)* ज़ुबैर और सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास *(रज़ि.)* को भेजा कि कुछ ख़बर लाएँ। एक

पहाड़ी की तरफ़ इशारा करते हुए फ़रमायाँ, इस पहाड़ी के पास एक कुआँ है। वहाँ जाकर देखो, शायद क़ुरैश के बारे में कुछ मालूम हो।"

ये लोग वहाँ पहुँचे तो क़ुरैश के कुछ आदमी पानी पी रहे थे। उनमें दो ग़ुलाम भी थे। ये लोग समझे कि वे अबू-सुफ़ियान के ग़ुलाम हैं। तुरन्त उन्हें गिरफ़्तार कर लिया। बाक़ी लोग फ़रार हो गए।

भागकर जब ये लोग अपनी फ़ौज में पहुँचे तो एक बोला, "क़ुरैश के लोगो! मुसलमानों ने तुम्हारे साथियों को गिरफ़्तार कर लिया है और अपनी फ़ौज में भगा ले गए हैं।"

यह सुनना था कि अधर्मियों पर बिजली गिर गई। ग़ुस्से से वे बौखला गए। पूरी फ़ौज में एक खलबली मच गई— उधर हज़रत अली *(रज़ि.)* आदि ने ग़ुलामों को साथ लिया और प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सेवा में लौट आए। वहाँ पहुँचकर मुसलमान उन दोनों से अबू-सुफ़ियान का हाल पूछने लगे। जब वे दोनों यह कहते कि हमें अबू-सुफ़ियान का पता नहीं, हम तो क़ुरैश को पानी पिलानेवाले हैं तो ये लोग उन्हें मारते। और जब वे दोनों कहते कि हम अबू-सुफ़ियान के ग़ुलाम हैं, तब उन्हें छोड़ देते।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* उस समय नमाज़ पढ़ रहे थे। नमाज़ पढ़ चुके तो फ़रमाया, "वे दोनों सच बताते हैं, तब तुम मारते हो और झूठ बोलते हैं तो छोड़ देते हो। ख़ुदा की क़सम, ये दोनों सच कह रहे हैं। ये दोनों वास्तव में क़ुरैश के हैं।" फिर आपने उन दोनों से फ़रमाया, "कुछ अबू-सुफ़ियान के बारे में बताओ।"

दोनों ग़ुलाम बोले, "अबू सुफ़ियान को हमने नहीं देखा। उसके बारे में हमें कुछ नहीं मालूम।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "अच्छा क़ुरैश कहाँ हैं?"

दोनों ग़ुलाम : "बस कुछ ही दूर हैं।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "लश्कर में कितने सिपाही हैं?"

दोनों ग़ुलाम : "ख़ुदा की क़सम, वे तो बहुत ज़्यादा हैं।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "रोज़ कितने ऊँट ज़िब्ह करते हैं?"

दोनों ग़ुलाम : "एक दिन नौ। एक दिन दस।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने साथियों से फ़रमाया, "दुश्मन नौ सौ और एक

हज़ार के बीच हैं।" फिर कहा, "मक्का ने अपने जिगर के टुकड़ों को तुम्हारी तरफ़ डाल दिया है।"

(5)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने बद्र नामक स्थान पर पहुँच कर अपने साथियों से कहा, "किस जगह ठहरना ठीक रहेगा?"

हुबाब-बिन-मुंज़िर *(रज़ि.)* ने कहा, "अल्लाह के रसूल! आगे बढ़कर पानी पर क़ब्ज़ा कर लिया जाए। वहाँ के बारे में मैं अच्छी तरह जानता हूँ। एक-एक कुआँ मेरी नज़र में है। एक कुआँ तो ऐसा है जो कभी सूखता ही नहीं। उसका पानी भी बहुत मीठा है। वहाँ हम एक हौज़ बनाकर पानी से भर देंगे। इससे हमें पानी भरपूर मिलेगा और हम डटकर लड़ सकेंगे और आसपास के जितने कुएँ हैं, सबको बेकार कर देंगे।"

वे चाहते थे कि पानी का पहले से इन्तिज़ाम कर लिया जाए। हो सकता है कि दुश्मन उसपर क़ब्ज़ा कर लें और फिर हमें परेशानी उठानी पड़े।

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "हुबाब! तुम्हारी राय बहुत अच्छी है।"

आप *(सल्ल.)* उसी समय उठे। आपके बहादुर साथी भी साथ थे। जा कर आपने पानी पर क़ब्ज़ा कर लिया और हुबाब *(रज़ि.)* ने जो राय दी, उसपर अमल हुआ।

ख़ुशक़िस्मती से उसी रात बारिश हो गई। ज़मीन रेतीली थी, सारी रेत जम गई। चलना-फिरना आसान हो गया। जगह-जगह पानी को रोक कर छोटे-छोटे हौज़ बना लिए गए। मुसलमान ख़ूब नहाए-धोए और बिलकुल ताज़ा दम हो गए।

क़ुरैश की तरफ़ ज़मीन नर्म और नीची थी। पानी वहाँ जमा होकर कीचड़ बन गया। चलना-फिरना तक वहाँ मुश्किल हो गया। इस तरह मुसलमानों के लिए यह बारिश रहमत साबित हुई और दुश्मनों के लिए अज़ाब।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अम्मार-बिन-यासिर *(रज़ि.)* और अब्दुल्लाह-बिन मसऊद *(रज़ि.)* को दुश्मनों की तरफ़ भेज दिया। दोनों जाकर वहाँ घूमे-फिरे, हालात का पता लगाया, फिर लौट आए। आकर उन्होंने

बताया कि दुश्मनों का भय से बुरा हाल है।

सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* ने कहा, "एक टीले पर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के लिए एक तम्बू लगा दिया जाए। इस प्रकार लड़ाई का पूरा मैदान आपकी नज़रों में रहेगा। ज़रूरत के समय साया भी मिल सकेगा। आराम को दिल चाहा तो आराम कर लेंगे। दुआ और नमाज़ के लिए भी मुनासिब रहेगा।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने इस राय को पसन्द फ़रमाया और एक तम्बू लगा दिया गया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* लड़ाई के मैदान में गए। ख़ास-ख़ास साथी भी आपके साथ थे। आपने एक-एक करके क़ुरैश के सरदारों का नाम लिया। फ़रमाया, कि फ़ुलाँ इस जगह क़त्ल होगा और फ़ुलाँ इस जगह दम तोड़ेगा।– लड़ाई के बाद देखा गया तो हर एक की लाश उसी जगह मिली, कोई भी अपनी-अपनी जगह से आगे-पीछे न था।

फिर आप *(सल्ल.)* फ़ौज में पहुँचे। एक फ़ौजी माहिर की तरह फ़ौज को पंक्तिबद्ध किया। फिर जंग के मैदान में आए। वहाँ आपने एक भाषण दिया। भाषण बहुत जोशीला था। अल्लाह की तारीफ़ और शुक्र के बाद फ़रमाया–

"प्यारे भाइयो! मैं तुम्हें उन चीज़ों पर उभारता हूँ, जिनपर अल्लाह ने उभारा है और उन चीज़ों से रोकता हूँ, जिनसे अल्लाह ने रोका है। अल्लाह बड़ी शानवाला है। हक़ का हुक्म देता है। सच्चाई को पसन्द करता है। भलाई करनेवालों को ऊँचा स्थान देता है। उसी से वे याद किए जाते हैं और उसी से उनके दर्जे बढ़ते हैं।

इस समय तुम हक़ की मंज़िल में पहुँच चुके हो, जहाँ वही काम क़बूल किया जाता है, जो केवल अल्लाह के लिए किया जाए। इस अवसर पर सब्र से काम लो, क्योंकि यह लड़ाई का समय है। लड़ाई के समय सब्र करने से इत्मीनान और सुकून हासिल होता है। परेशानी और बेचैनी दूर हो जाती है। आख़िरत में भी यह नजात का ज़रीआ है।

तुम्हारे बीच अल्लाह का नबी मौजूद है, जो तुम्हें बुराइयों से होशियार करता है। भलाइयों का हुक्म देता है, देखो, आज तुम से कोई ऐसी हरकत न होने पाए, जिससे अल्लाह नाराज़ हो जाए। अल्लाह ख़ुद फ़रमाता है–

"तुम्हारी अपनों से जो नाराज़ी है, अल्लाह की नाराज़ी उससे बढ़कर है।" (क़ुरआन)

अल्लाह ने तुम्हें जो किताब दी है, उसे मज़बूती से पकड़ लो। तुम्हें जो निशानियाँ दिखाई हैं, उनपर ध्यान रखो। अपमान के बाद जिससे तुम्हें सम्मान मिला है, उससे ग़ाफ़िल न हो। इससे अल्लाह ख़ुश होगा। अल्लाह आज तुमको आज़माना चाहता है। इस अवसर पर तुम निष्ठा और बहादुरी का सुबूत दो। अल्लाह की रहमत तुमपर छा जा जाएगी। वह तुम्हें माफ़ करेगा। उसका वादा पूरा होनेवाला है। उसकी बातें बिलकुल सच्ची हैं। उसकी पकड़ भी बहुत सख़्त है। हम और तुम सब उसके दम से हैं। वह हमेशा से है, हमेशा रहेगा। सारा जगत् उसी के हुक्म से क़ायम है। वही हमारा सहारा है। उसी को हमने मज़बूती से पकड़ा है। उसी पर हमारा भरोसा है। वही हमारी पनाहगाह है। अल्लाह मुझे और तुम मुसलमानों को माफ़ करे।"

उधर क़ुरैश ने उमैर-बिन-वहब को भेजा कि मुसलमानों की तादाद का अन्दाज़ा लगाए और उनके हालात मालूम करे। वह छिप कर गया। घूम फिर कर जायज़ा लिया, फिर आकर उसने क़ुरैश से कहा—

"मुसलमान तीन सौ के लगभग हैं। साथ में सत्तर ऊँट और तीन घोड़े भी हैं।"

फिर उसने कहा, "क़ुरैशी भाइयो! मुसीबतें मौत लाती हैं। मदीना के ऊँट मौत की सवारियाँ हैं। सुन लो, तुमको ऐसे लोगों से पाला पड़ा है, जो तलवारों की गोद में पले हैं। देखते नहीं? वे चुप-चाप रहते हैं। कुछ बोलते नहीं, लेकिन साँपों की तरह डसते हैं। खुदा की क़सम, मैं तो समझता हूँ कि उनमें से जो भी मरेगा, हम में से कम से कम एक को मार कर मरेगा। बताओ अगर इतने ही आदमी हम में से मर गए तो ज़िन्दगी का क्या मज़ा रह जाएगा? इसलिए अभी से सोच लो।"

क़ुरैश को उमैर की बातों पर यक़ीन न हुआ। उन्होंने दूसरे आदमी को भेजा। वह छिप-छिपाकर इस्लामी फ़ौज के निकट पहुँचा। घोड़े पर बैठकर चारों तरफ़ चक्कर लगाया। फिर उसने आकर कहा—

"ख़ुदा की क़सम, वे लोग कोई ऐसे ताक़तवर नहीं। तादाद में भी बहुत कम हैं। हथियारों से भी ख़ाली हैं, लेकिन एक बात है, वे मरने के

लिए आए हैं। वे अब लौटकर घर जाना नहीं चाहते। तलवार ही उनकी सारी शक्ति है। तलवारें ही उनकी पनाहगाह हैं। अब तुम खुद सोच लो।"

ये बातें सुनकर कुछ लोग काँप उठे। हौसले उनके पस्त हो गए। अब उन्होंने लौटने का इरादा कर लिया। कुछ और लोगों को भी समझाया। वे लोग भी तैयार हो गए और मक्का लौट आए।

क़ुरैश की फ़ौज सामने आई। हर-हर सिपाही सिर से पैर तक लोहे में डूबा हुआ था। यह अजीब दृश्य था। उस समय आप *(सल्ल.)* विनम्रता के भाव में डूबे हुए थे। दोनों हाथ फैलाकर अपने रब से फ़रमाते—

"ऐ अल्लाह! ये क़ुरैश के लोग हैं। घमण्ड से अकड़ते हुए, तुझसे लड़ने आए हैं। तेरे दीन के विरोध में कमर कसे हुए हैं। तेरे रसूल को नाकाम करने पर तुले हुए हैं। ऐ अल्लाह! तूने मदद का वादा किया है। इस वादे को पूरा कर। ऐ अल्लाह! तूने मुझसे साबित क़दम रहने के लिए कहा है और 'बड़े गरोह' का वादा किया है। बेशक तू वादा पूरा करनेवाला है।"

बेखुदी का यह आलम था कि चादर कन्धों से गिर पड़ती और आप *(सल्ल.)* को पता भी न चलता। कभी आप (सल्ल.) सजदे में गिर पड़ते और फ़रमाते—

"ऐ रब! अगर आज ये कुछ जानें मिट गईं तो क़ियामत तक तेरी इबादत न होगी।"

एक तरफ़ प्यारे नबी *(सल्ल.)* का यह अन्दाज़ था, दूसरी तरफ़ अल्लाह आप *(सल्ल.)* की मदद में लगा हुआ था और आपका साहस बढ़ा रहा था। अभी आप *(सल्ल.)* रास्ते ही में थे और दुश्मनों की तादाद से बेख़बर थे। अल्लाह ने दुश्मन की फ़ौज को स्वप्न में दिखाया। स्वप्न में अन्दाज़ा हुआ कि दुश्मन थोड़े ही हैं। इससे आप *(सल्ल.)* का साहस बढ़ा। दिल को इत्मीनान हुआ। मुसलमानों ने सुना तो उनकी भी हिम्मत बढ़ी और वे बेधड़क बढ़ते चले गए। फिर जब दोनों फ़ौजें आमने-सामने हुईं तो दुश्मन मुसलमानों को कम नज़र आए और मुसलमान दुश्मनों को थोड़े दिखाई दिए। इस तरह दोनों के दिल बढ़े। दोनों लड़ाई के मैदान में उतर आए। लड़ाई छिड़ गई तो दुश्मनों को मुसलमान बहुत नज़र आने

लगे, लेकिन मुसलमानों को दुश्मन कम ही दिखाई दिए। इससे दुश्मनों के हौसले तो पस्त हो गए। वे डर और घबराहट से बदहाल हो गए, लेकिन मुसलमानों की हिम्मत और बढ़ गई और वे बढ़-बढ़कर दुश्मनों को मारने लगे। क़ुरआन की इन आयतों में इसी हक़ीक़त की ओर इशारा है :

> '(याद करो) जब (ऐ नबी!) अल्लाह तुम्हें स्वप्न में उन्हें थोड़ा दिखा रहा था और अगर कहीं वह उन्हें ज़्यादा दिखा देता तो अवश्य (ऐ ईमानवालो!) तुम हिम्मत हार बैठते और इस (लड़ाई के) सिलसिले में परस्पर झगड़ने लग जाते, लेकिन अल्लाह ने (तुम्हें) इससे बचा लिया। बेशक वह सीनों (दिलों) तक का हाल जानता है। और (याद करो) जब तुम एक-दूसरे के मुक़ाबले में आए तो अल्लाह उन्हें तुम्हारी निगाहों में थोड़ा दिखा रहा था और उनकी निगाहों में तुम्हें कम करके दिखा रहा था, ताकि जो बात होनी थी, अल्लाह उसे पूरा कर दे और सारे मामले अल्लाह ही की तरफ़ पलटते हैं।'
>
> (क़ुरआन, 8:43-44)

क़ुरैश के कुछ लोग बढ़े कि मुसलमानों के हौज़ से पानी पीएँ। मुसलमानों ने उन्हें भगाना चाहा। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "पी लेने दो। जो भी पी लेगा वह ज़िन्दा बच कर न जा सकेगा।"

लड़ाई इस तरह शुरू हुई कि अबू-जहल ने आमिर-बिन-हज़रमी को (जिसे अपने भाई के ख़ून का दावा था) ललकारा और कहा, "ख़ून का बदला सामने है। खड़े हो जाओ और दुहाई देकर क़ौम को पुकारो।" आमिर अरब के रिवाज के अनुसार नंगा हो गया और पुकारा : "हाय अम्र! हाय अम्र!"

इससे पूरी फ़ौज में आग लग गई और लड़ाई शुरू हो गई। सबसे पहले आमिर-बिन-हज़रमी आगे बढ़ा। मुक़ाबले में हज़रत अम्र *(रज़ि.)* के ग़ुलाम हज़रत महजअ *(रज़ि.)* सामने आए। आमिर-बिन-हज़रमी ने बढ़कर उन्हें क़त्ल कर दिया। इस प्रकार बद्र की इस लड़ाई में सबसे पहले महजअ *(रज़ि.)* को शहादत मिली।

इसके बाद उत्बा सीना तानकर लश्कर से बाहर आया। यही लश्कर

का सरदार भी था। साथ में उसका भाई शैबा और उसका बेटा वलीद भी आगे बढ़ा। इधर से मुक़ाबले में तीन अनसारी जवान निकले। प्यारे नबी *(सल्ल.)* को यह देखकर शर्म आई। आप *(सल्ल.)* ने सोचा यह असत्य और सत्य की पहली लड़ाई है। इसमें सबसे पहले अनसार जान की बाज़ी लगाएँ, यह मुनासिब नहीं। पहले मुहाजिरों को हथेली पर जान रखकर आगे बढ़ाना चाहिए। इसलिए कि वे अपनी क़ौम और रिश्ते के लोग हैं। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया–

"हाशिम वंश के लोगो! ये लोग असत्य के नाम पर जमा हुए हैं। ये लोग सत्य के प्रकाश को मिटा देना चाहते हैं। उठो और उस सत्य के नाम पर जान दो, जिसे तुम्हारा नबी लेकर आया है।"

यह सुनकर अली *(रज़ि.)*, हमज़ा *(रज़ि.)* और उबैदा *(रज़ि.)* मैदान में आए। उत्बा ने अपने बेटे से कहा, "वलीद आगे बढ़ो।" वलीद मुक़ाबले में आया। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने बढ़कर उसे क़त्ल कर दिया। फिर उत्बा ख़ुद बढ़ा। हमज़ा *(रज़ि.)* ने बढ़कर उसे क़त्ल कर दिया। फिर शैबा आगे बढ़ा। मुक़ाबले में हज़रत अबू-उबैदा *(रज़ि.)* आए। शैबा ने उन्हें घायल कर दिया। उनकी पिण्डली कट कर अलग हो गई। हज़रत अली *(रज़ि.)* और हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* ने यह हाल देखा तो फ़ौरन आगे बढ़े और शैबा को ठण्डा कर दिया। फिर हज़रत उबैदा *(रज़ि.)* को कन्धे पर उठा कर प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सेवा में लाए। कुछ दिनों में हज़रत उबैदा अल्लाह को प्यारे हो गए। अब आम हमला शुरू हो गया। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने साथियों को ललकारा :

"बढ़ो! जन्नत की तरफ़, जिसकी कुशादगी ज़मीन और आसमान के बराबर है।" उमैर-बिन-हम्माम *(रज़ि.)* ने जन्नत की ख़ुशख़बरी सुनी तो ख़ुशी से उछल पड़े और बोले : "वाह, वाह जन्नत में पहुँचने में बस इतनी ही देर है कि ये लोग मुझे क़त्ल कर दें।"

उस समय वे खजूर खा रहे थे। जन्नत की ख़ुशबू पा लेने के बाद इस खजूर में क्या मज़ा मिल सकता था। फ़ौरन उसको फेंका और दुश्मनों के बीच में घुस गए। कुछ देर बहादुरी से लड़ते रहे, फिर शहीद हो गए।

लड़ाई पूरे ज़ोर पर थी। दोनों तरफ़ से हमले हो रहे थे। प्यारे

नबी *(सल्ल.)* ने एक मुट्ठी रेत ली और दुश्मन की ओर फेंकते हुए फ़रमाया—

"चेहरे बिगड़ जाएँ! चेहरे बिगड़ जाएँ!"

नबी *(सल्ल.)* का हाथ था। अल्लाह की क़ुदरत थी। यह मुट्ठी भर रेत अज़ाब बनकर फ़ौज में फैल गई और दुश्मनों की आँखों में अट गई। दुश्मन अपनी आँखें मलने लगे। मुसलमान पूरे ज़ोर-शोर से उनपर टूट पड़े और दुश्मनों को मारने लगे। आख़िरकार दुश्मनों की हार हुई, मुसलमानों की जीत हुई। सत्य को विजय प्राप्त हुई, असत्य पराजित हुआ।

अभी लड़ाई जारी ही थी कि अब्दुल-असवद के बेटे असवद ने कहा, यह मख़ज़ूम क़बीले का आदमी था, "अल्लाह की क़सम, मैं तो मुसलमानों के हौज़ का पानी पीऊँगा या उसे बेकार कर दूँगा। वरना मुझपर जीना हराम।" वह तेज़ी से लपका और हौज़ के निकट आ गया। हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* पास ही थे। वे बिजली की तरह झपटे और तलवार का वार किया। वार सख़्त था। उसका एक पैर कट कर अलग हो गया। अब वह घिसट कर हौज़ में जा पड़ा। दूसरे पैर से उसे तोड़ भी दिया। और उसका पानी भी पिया। हमज़ा *(रज़ि.)* फिर लपके। बढ़कर एक और वार किया, अब वह बिलकुल ठण्डा हो चुका था।

लड़ाई समाप्त हुई तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "देखो अबू-जहल कहाँ है। वह भी कहीं पड़ा होगा।" अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद *(रज़ि.)* उसकी तलाश में निकले। देखा तो वह एक जगह पड़ा दम तोड़ रहा था। अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद *(रज़ि.)* ने उसकी गर्दन पर पाँव रखा और सिर अलग करके प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर हुए।

इस तरह कुफ़्र और शिर्क के बहुत से ध्वजावाहक मारे गए और क़ुरैश के बहुत से सरदारों के सिर धड़ से जुदा हुए। क़त्ल होनेवालों की तादाद सत्तर थी और क़ैद होनेवालों की तादाद भी सत्तर।

मुसलमानों में चौदह व्यक्ति शहीद हुए, जिनमें छः मुहाजिर थे और आठ अनसारी। मारे जानेवाले दुश्मनों की तादाद अधिक थी, इसलिए हर एक को अलग-अलग दफ़न करना मुश्किल था। आप *(सल्ल.)* ने तमाम लाशें एक चौड़े कुएँ में डलवा दीं। फिर उसे बराबर कर दिया

गया। आप (सल्ल.) ने उसमें से हर एक का नाम लेकर पुकारा और फ़रमाया—

"कितने बुरे रिश्तेदार निकले तुम! मैंने तो अपने रब का वादा सच्चा पाया। क्या तुमने भी अपने रब के वादों को सच्चा पाया? तुमने मुझे झूठा समझा, औरों ने मुझे सच्चा जाना। तुमने मुझे बे-वतन कर दिया, दूसरों ने मुझे पनाह दी। तुमने मुझसे लड़ाई लड़ी, दूसरों ने मेरी मदद की।"

साथियों ने हैरत से कहा, "अल्लाह के रसूल! जो लोग मर चुके हैं, उनसे आप फ़रमा रहे हैं! ये लोग सुनते तो हैं नही!"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "इनको अब मालूम हो गया कि रब का वादा सच्चा था।" फिर अबू-जहल की लाश की ओर देखते हुए कहा—

"यह तो फ़िरऔन से भी बढ़कर सरकश निकला। फ़िरऔन को अपनी हलाकत का यक़ीन हुआ तो उसने अल्लाह को याद किया। इसको हलाकत का यक़ीन हुआ तो इसने 'लात' और 'उज़्ज़ा' को पुकारा।"

लड़ाई समाप्त हुई तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने ज़ैद-बिन-हारिसा और अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा को मदीना दौड़ाया कि लोगों को विजय की ख़ुशख़बरी दें। विजय की ख़बर सुनते ही मुसलमान ख़ुशी से उछल पड़े, लेकिन मुनाफ़िक़ और यहूदी ग़म से पीले पड़ गए।

(6)

मुसलमानों ने बद्र नामक यह लड़ाई जीत ली और दुश्मन बुरी तरह हार गए। लड़ाई के बाद बहुत सा माल मुसलमानों के हाथ लगा। जब इस माल को जो लड़ाई में मिला था, बाँटने का समय आया तो मुसलमानों में मतभेद हो गया। उनमें आपस में कुछ बातें होने लगीं।

कुछ जवान बोले, "इस माल के हक़दार तो हम लोग हैं। हम ही ने दुश्मनों को हराया है। हम ही ने जान पर खेलकर मैदान जीता है।"

बूढ़े कहने लगे, "सच पूछो तो इसके हक़दार हम हैं। हम ही ने तुम्हारी हिफ़ाज़त की है, हम ही ने पीछे से दुश्मन को रोका है।"

सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* ने पूछा, "अल्लाह के रसूल! क्या घुड़सवारों का भी उतना ही हिस्सा है, जितना कमज़ोरों का।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने जवाब दिया, "अरे भाई, कमज़ोरों ही की वजह से अल्लाह की मदद आती है।"

इतने में हज़रत जिबरील *(सल्ल.)* आ पहुँचे। साथ में अल्लाह का यह सन्देश भी लाए

> '(ऐ नबी) तुमसे 'अनफ़ाल' (लड़ाई में प्राप्त माल) के बारे में पूछते हैं। कहो, अनफ़ाल अल्लाह और उसके रसूल के हैं तो तुम अल्लाह की नाफ़रमानी से बचो और उसकी नाख़ुशी से डरो और आपस के सम्बन्ध ठीक रखो और अल्लाह और उसके रसूल का कहा मानो, अगर तुम मोमिन हो।'
>
> (क़ुरआन, सम्बन्ध, 8 : 1)

यह सुनकर सबने सिर झुका दिया और माल को प्यारे नबी *(सल्ल.)* पर छोड़ दिया कि जैसे चाहें अल्लाह के बताए हुए तरीक़े पर बाँटें।

"क़ैदियों का क्या होगा?" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने साथियों से मशवरा किया।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने कहा, "कुफ़्र और सरकशी के जुर्म में इन्हें क़त्ल किया जाए।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बोले, "अल्लाह के रसूल! ये आपके अपने ही भाई हैं। आज अल्लाह ने इन्हें आपके बस में कर दिया है। मैं समझता हूँ कि इन्हें मारा न जाए, इनसे फ़िद्या ले लिया जाए। इससे आगे के लिए भी कुछ सामान हो जाएगा और हो सकता है कि अल्लाह इन्हें हिदायत दे दे। कल यही आपके सहयोगी और अनुयायी बन जाएँ।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की राय को पसन्द किया। जो लोग फ़िद्या दे सकते थे, उनसे फ़िद्या लिया। जो लोग ग़रीब और निर्धन थे, लेकिन पढ़े-लिखे थे, उनके ज़िम्मे पढ़ाने का काम किया कि वे मदीना के दस लड़कों को पढ़ना-लिखना सिखाएँ। जो लोग अनपढ़ और नादान थे, उन्हें वैसे ही छोड़ दिया गया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* सफल और विजयी होकर मदीना लौटे। अल्लाह के शुक्र की भावना से आपका दिल भरा हुआ था। शहर में वदा की घाटी से दाख़िल हुए।

बद्र की लड़ाई का नतीजा सामने आया तो मुशरिकों के हौसले पस्त हो गए। मुनाफ़िक़ों के दिल सहम गए। मदीना के यहूदी मुसलमानों से दबने लगे। बहुत कट्टर दुश्मनों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। मक्का में एक महीना तक घर-घर शोक मनाया गया। कितनी ही औरतें बेवा हो गईं। कितनी ही माँएँ ग़मगीन हो गईं। ग़म में उन्होंने अपने बाल भी कटवा डाले।

(7)

क़ुरैश के इतने व्यक्ति मारे गए। न जाने कितनी दौलत मिट्टी में मिल गई। इस हार से उनकी इज़्ज़त और शोहरत पर भी आँच आई। इसका क़ुरैश को बड़ा दुःख था।

उमैर-बिन-वहब इस्लाम का एक कट्टर दुश्मन था। वह और सफ़्वान-बिन-उमय्या हिज्र में बैठे बद्र का मातम कर रहे थे। सफ़्वान ने कहा, ''अल्लाह की क़सम, अब ज़िन्दगी में कोई मज़ा नहीं रहा। मानो ज़िन्दगी एक अज़ाब है।''

उमैर ने कहा, ''सच कहते हो। मैं क़र्ज़ से दबा हुआ हूँ। बच्चों का ख़याल भी सता रहा है। वरना मैं तो मुहम्मद की जान लेकर छोड़ता। मेरा बेटा भी वहीं क़ैद है।''

सफ़्वान ने कहा, ''तुम क़र्ज़ की परवाह न करो। बच्चों से भी बेफ़िक्र हो जाओ मैं उनका ज़िम्मेदार हूँ।''

उमैर मदीना के लिए चल दिया। तलवार गर्दन से लटक रही थी। वहाँ पहुँचकर मस्जिद में दाख़िल हुआ कि अपना काम करे।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* की निगाह उस पर पड़ी। उन्होंने उसका इरादा, भाँप लिया। वे उसका गला दबाकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* की ख़िदमत में लाए।

''उमैर! क्या इरादा है? कहो कैसे आए?'' प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने पूछा।

उमैर : ''बेटे को छुड़ाने आया हूँ। अल्लाह के लिए मुझ पर और मेरे बेटे पर दिया कीजिए।''

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : ''तलवार का क्या काम है? तलवार क्यों लटक रही है?!''

उमैर : "बुरा हो तलवारों का। आख़िर बद्र में ये किस काम आईं? आने लगा तो इस ओर ध्यान नहीं गया, हालाँकि वह मेरी गर्दन में थी।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "उमैर सच-सच बताओ। क्यों आए हो? झूठ न बोलो। झूठ बोलने से क्या फ़ायदा?"

उमैर : "मैं बेटे ही के लिए आया हूँ। यक़ीन कीजिए, मैं बेटे ही के लिए आया हूँ।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "हिज्र में सफ़्वान से क्या बात तय हुई है?"

उमैर सन्नाटे में आ गया।

"क्या बात तय हुई है?" उसने घबराहट से सवाल किया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* "तुमने उससे मेरे क़त्ल का वादा किया है, इस शर्त पर कि वह तुम्हारा क़र्ज़ अदा कर दे और तुम्हारे बच्चों का ज़िम्मा ले ले। सुन लो, अल्लाह यह होने न देगा।"

उमैर : "मैं गवाही देता हूँ कि आप अल्लाह के रसूल हैं। आपके सच्चा होने में अब मुझे कोई सन्देह नहीं।"

अब उमैर *(रज़ि.)* मुसलमान थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने साथियों से फ़रमाया : "अपने भाई को क़ुरआन पढ़ाओ और उसके क़ैदी को छोड़ दो।"

उमैर *(रज़ि.)* लौटकर मक्का आए, जो लोग प्यारे नबी *(सल्ल.)* के क़त्ल की ख़बर सुनने के लिए बेचैन थे, अब उन्होंने उमैर *(रज़ि.)* के इस्लाम की ख़बर सुनी। मक्का पहुँचकर वे इस्लाम फैलाने में लग गए। लोगों को प्यारे नबी *(सल्ल.)* की पैरवी पर उभारने लगे। बहुत से लोग उनके द्वारा इस्लाम में आए।

ख़ूने-दिल व जिगर से ज़िन्दगी को सींचा है

(1) क़ुरैश की जंगी तैयारियाँ
(2) सवीक़ की जंग की घटना
(3) बनी-क़ैनुक़ाअ की शरारतें
(4) बनी-क़ैनुक़ाअ को देश निकाला
(5) क़ुरैशी लश्कर की रवानगी
(6) सहाबा *(रज़ि.)* का असाधारण उत्साह
(7) इस्लामी फ़ौज की रवानगी
(8) अब्दुल्लाह-बिन-उबई की ग़द्दारी
(9) उहुद के मैदान में जंग की तैयारी
(10) जंग के शोले भड़क उठे
(11) दुश्मन की पराजय
(12) युद्ध का नक़्शा बदल गया
(13) सहाबा *(रज़ि.)* की बहादुरी
(14) युद्ध का अंजाम
(15) मुशरिकों की बर्बरता

(1)

क़ुरैश की आँखों की नींद उड़ गई। उनके दिल का चैन जाता रहा, जब बद्र की लड़ाई का अंजाम उनके सामने आया। बद्र की वह लड़ाई जिसमें मुसलमानों की जीत हुई। हक़ का सिर ऊँचा रहा। इस्लाम का पलड़ा भारी रहा और फिर सारे अरब में उसका डंका बजने लगा। मुसलमानों के दिल ख़ुशी से भरे हुए थे। मुशरिक भय और निराशा से काँप रहे थे। यहूदी और मुनाफ़िक़ भी भयभीत थे।

क़ुरैश एक महीने तक रोते-धोते रहे। जो सरदार मारे गए थे, उनका ग़म मनाते रहे। फिर ग़म ख़त्म हो गया। रोना-धोना बन्द हो गया। यह रोना-धोना क्यों बन्द हुआ? क्या उन्होंने अपने रिश्तेदारों और लीडरों पर सब्र कर लिया? यह ग़म क्यों ख़त्म हुआ? क्या इसलिए कि उन्होंने क़िस्मत के आगे माथा टेक दिया?

वास्तव में यह बात न थी। क़ुरैश ऐसे न थे कि अपने सरदारों पर सब्र कर लेते और ख़ामोश रह जाते। उनके सीने अभी तक सुलग रहे थे। उनके दिल अभी तड़प रहे थे। किन्तु अब ग़म का शोर न था। अब आँसुओं का तूफ़ान न था, अब ख़ून का बदला लेने की धुन थी। अब इन्तिक़ाम की तैयारियाँ थीं। औरतों ने अपने सिर के बाल कटवा डाले। सुगन्ध और ख़ुशबू को अपने ऊपर हराम कर लिया। मन्नत मान ली कि ख़ुशबू न लगाएँगी, साज-सज्जा की चीज़ों से दूर रहेंगी, जब तक कि ख़ून का बदला न देख लेंगी। मर्दों ने प्रतिज्ञा कर ली कि चैन से न बैठेंगे। जब तक भरपूर बदला न ले लेंगे, आराम की नींद न सोएँगे। अबू-सुफ़ियान दो क़दम और आगे था। उसने क़सम खा ली कि नहाएँगे नहीं, जब तक मुहम्मद को नीचा न दिखा लेंगे।

इस तरह क़ुरैश के आँसू थम गए। रोने-पीटने की आवाज़ें बन्द हो गईं। उन्होंने फ़ैसला कर लिया कि मुहम्मद *(सल्ल॰)* से फिर लड़ेंगे। ख़ून की आग ख़ून से बुझाएँगे। अब क़ुरैश जंगी तैयारियों में लग गए। लड़ाई

में कामियाब होने के लिए जो-जो चीज़ें चाहिए थीं, उनका इन्तिज़ाम करने लगे, ताकि जल्द से जल्द सीने की आग बुझे। बेचैन दिल को चैन मिले। लड़ाई से पहले जो क़ाफ़िला सीरिया से आया था, उसकी पूँजी 'दारुन्नदवा' में रोक ली गई थी। वह वैसी की वैसी रखी हुई थी। उसको अभी बाँटा नहीं गया था। क़ुरैश ने आपस में तय किया कि हिस्सेदारों का मूलधन वापस दे दिया जाए और जो लाभ हो उसको फ़ौज पर ख़र्च किया जाए। उसे लड़ाई की तैयारियों में लगा दिया जाए। यह बात तो सबके दिल की बात थी, इसलिए पेश होने से पहले ही क़बूल थी। चटपट सारा सामान बेचा गया। चीज़ें बड़ी क़ीमती थीं। काफ़ी लाभ प्राप्त हुआ। हिस्सेदारों का मूलधन वापस किया गया। जो लाभ हुआ उसे लड़ाई की मद में दाख़िल कर दिया गया और फिर ज़ोर-शोर से लड़ाई की तैयारियाँ शुरू हो गईं।

बद्र की लड़ाई में अबू-सुफ़ियान का बेटा भी मारा गया था। उसका अबू-सुफ़ियान को बड़ा दुख था। क़ुरैश को बद्र में मुसलमानों के ज़ोर का तजरिबा हो चुका था। इस बार वे चाहते थे कि बहुत बड़े लश्कर के साथ मुक़ाबला करें। वह लश्कर हथियारों से भी ख़ूब लैस हो। यह काम वक़्त के वक़्त होने का तो था नहीं। बहरहाल कुछ दिन तो लगते। अबू-सुफ़ियान ग़म और ग़ुस्से से बेक़रार था। वह अब इन्तिज़ार करना नहीं चाहता था। उसने मक्का से दो सौ आदमियों को साथ लिया और मुहम्मद *(सल्ल.)* से बदला लेने के लिए चल पड़ा। मदीना से कुछ फ़ासले पर उरैज़ नामक एक स्थान है। वहाँ पहुँचा तो एक अनसारी अपनी खेती में लगे हुए थे। साथ में एक मज़दूर भी था। इन दोनों को उसने वहीं मार डाला। दो घरों में आग लगा दी। कुछ खजूर के पेड़ थे, उनको भी जला दिया। इन बातों से उसके नज़दीक क़सम पूरी हो गई। अब वह अपने आदमियों के साथ भाग खड़ा हुआ।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को इस घटना की ख़बर मिली तो अबू-सुफ़ियान का पीछा किया, लेकिन भागनेवालों ने होशियारी की। जान ख़तरे में देखी तो ऊँटों का बोझ हल्का करने लगे। साथ में सत्तू की बोरियाँ थीं, उनको नीचे फेंकने लगे। इस तरह कहीं जाकर उनकी जान छूटी और वे सुरक्षित वापस आ गए। अरबी में सत्तू को 'सवीक़' कहते हैं, इसलिए

यह घटना 'ग़ज़वए-सवीक़' (सवीक़ की लड़ाई) के नाम से मशहूर हुई। यह ज़िलहिज्जा सन् 2 हिजरी की घटना है।

मदीना में यहूदियों का एक क़बीला आबाद था। यह बनी-कैनुक़ाअ के नाम से मशहूर था। जहाँ यह क़बीला आबाद था, वहीं उसकी कारोबारी मण्डी भी थी। सुनार का काम भी उस क़बीले में होता था। यहूदियों के अन्य क़बीले मदीना के बाहर थे। कुछ तो ख़ैबर में थे, कुछ दूसरी जगहों पर। आजकल प्यारे नबी *(सल्ल.)* बनी-क़ैनुक़ाअ में उलझे हुऐ थे।

बात क्या थी? बनी-क़ैनुक़ाअ के यहूदी प्यारे नबी *(सल्ल.)* के सहप्रतिज्ञ थे। वे आप *(सल्ल.)* से सुलह और दोस्ती का समझौता कर चुके थे। फिर भी इस्लाम की तरक़्क़ी देखकर वे जलते। सामने तो दोस्ती और मुहब्बत का दम भरते, पीठ पीछे इस्लाम का गला घोंटने की साज़िश करते। मुशरिकों से भी उनका सलाम व कलाम जारी था। बद्र में मुसलमानों की जीत हुई तो उनके लिए यह दो रुख़ी पॉलिसी मुश्किल हो गई। अब उनके सीनों में स्वाभिमान की आग सुलगने लगी। दिल जलन से पकने लगे।

उनकी अक़्लें बड़ी हैरान थीं! मुहम्मद *(सल्ल.)* ने हमसे समझौता कर लिया। सुलह और दोस्ती से हमें मना लिया। फिर देखते-देखते अपने दीन को इतना चमका दिया कि घर-घर इस्लाम की ज्योति जलने लगी। इतना ही नहीं, बल्कि अब तो मुसलमान हथियार से लैस होकर मैदान में आते हैं। मुशरिकों और ज़ालिमों से टक्कर भी लेते हैं और अल्लाह उन्हें विजयी भी बनाता है। इस प्रकार अरब क़बीलों पर उनकी धाक बैठ जाती है। सारे लोग उनसे काँपने लगते हैं। यहूदी भला इसको ठण्डी आँखों से कैसे देख सकते थे। यह तो उनके लिए ख़तरे की घण्टी थी। अब वे खुलकर सामने आ गए। दिखावे और धोखे की चादर उन्होंने उतार फेंकी। अब वे मुसलमानों के लिए नंगी तलवार बन गए। खुले आम उनका विरोध करने लगे। लोगों को मुसलमानों के ख़िलाफ़ उभारते। काव्य में उनका मज़ाक़ उड़ाते। कड़वी कसीली बातों से उनका दिल छेदते। अर्थात् उन्होंने समझौते की कोई परवाह नहीं की। सुलह का कोई ख़याल नहीं किया। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यह रंग देखा तो उन्हें

जमा किया। एक हमदर्द और हितैषी के रूप में उनसे कहा–

"यहूदी भाइयो! अल्लाह की क़सम, तुम्हें यक़ीन है कि मैं अल्लाह का नबी हूँ। इस्लाम में आ जाओ। ऐसा न हो कि बद्रवालों के समान तुम्हारा भी सबक़ आमोज़ अंजाम हो।"

लेकिन वे लोग भी ताक़त के नशे में थे। उन्होंने आप *(सल्ल.)* की बात की कोई परवाह न की और अकड़ते हुए जवाब दिया–

"मुहम्मद! धोखा न खाना। वे ना-तजरिबेकार लोग थे, जिन्हें हरा देने पर तुम्हें गर्व है। हम तलवारों के धनी हैं। हम मैदाने-जंग के शेर हैं। हमसे मामला पड़ा तो हम दिखा देंगे कि लड़ाई इसका नाम है।"

यह वादाख़िलाफ़ी और दुश्मनी का खुला एलान था। अब मुसलमान और यहूदियों के सम्बन्ध बिगड़ गए। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मजबूर होकर लड़ाई का फ़ैसला कर लिया। आप *(सल्ल.)* ने उनके घरों को घेर लेने का हुक्म दिया। इशारे की देर थी। मुसलमानों ने उनके घरों को तुरन्त घेरे में ले लिया। हार कर उन्होंने हथियार डाल दिए। मुसलमानों ने कहा, "इन्हें क़त्ल किया जाए।" अब्दुल्लाह-बिन-उबई उनका सहप्रतिज्ञ था। यह मुनाफ़िक़ों का सरदार भी था। यह उनके लिए सिफ़ारिश करने लगा। बोला, "इन्हें क़त्ल न कराइए, इन्हें देश से निकाल दिया जाए।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* राज़ी हो गए। फ़रमाया, "तीन दिन के अन्दर-अन्दर ये मदीना ख़ाली कर दें।"

ये यहूदी मदीना से चले गए। साथ में बाल-बच्चों को भी ले गए। जितना माल और सामान ले जा सकते थे, वह भी ले गए। सीरिया के इलाक़े में 'अज़रात' एक स्थान है, वहाँ जाकर बस गए। ये सात सौ आदमी थे, जिनमें तीन सौ कवचधारी थे।

बनी-क़ैनुक़ाअ के निकल जाने से इस्लाम को बड़ा फ़ायदा हुआ। लोगों पर रौब छा गया। उन्होंने सोचा कि मुसलमानों के हुक्म से इतना बड़ा क़बीला बे-वतन हो गया। वह भी इतना दिलेर और बहादुर क़बीला! मालूम होता है कि मुसलमानों का ज़ोर बहुत बढ़ गया है। उनकी ताक़त का अब कोई ठिकाना नहीं रहा है। आस-पास बनी-नज़ीर और बनी-क़ुरैज़ा के क़बीले आबाद थे। ये दोनों क़बीले भी यहूदियों के थे। ये दोनों क़बीले भी मुसलमानों से सहम गए। अरब के दूसरे क़बीले

भी डर कर ख़ामोश हो रहे। कुछ क़बीलों ने सोचा कि अगर यही हाल रहा तो कुछ दिनों में ये पूरे अरब पर छा जाएँगे। इनके ज़ोर का तोड़ होना चाहिए और इनका दबदबा ख़त्म होना चाहिए। उन्होंने यह सब सोचा और मदीना पर चढ़ाई की तैयारी शुरू कर दी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* को भी ख़बर हुई। आप *(सल्ल.)* इस फ़ितने को दबाने के लिए आगे बढ़े। इन क़बीलों ने सुना तो उनके होश उड़ गए। जान बचाने के लिए कुछ तो ख़तरनाक रेगिस्तानों में फैल गए। कुछ ने पहाड़ी दर्रों और गुफाओं में पनाह ली।

क़ुरैश की आर्थिक स्थिति बहुत कुछ शाम (सीरिया) के कारोबार ही पर आश्रित थी। इस कारोबार को बन्द करना उनके लिए ख़तरे की घण्टी था। इसलिए इसको हर हाल में बाक़ी रखाना था। लेकिन समस्या अब यह थी कि शाम (सीरिया) जाएँ तो जाएँ किधर से? मदीना होकर जाने की तो हिम्मत थी नहीं। मुसलमानों के छापा मारने का डर था। मजबूर होकर उन्होंने इराक़ का रास्ता पकड़ा। यह रास्ता बहुत लम्बा था। कठिनाइयाँ भी बहुत थीं। पानी मिलना भी एक समस्या थी। लेकिन इसके अलावा चारा भी क्या था। क़ुरैश की यह स्कीम भी छिप न सकी। प्यारे नबी *(सल्ल.)* और साथियों को इसकी ख़बर हो गई। आपने ज़ैद-बिन-हारिसा *(रज़ि.)* को छापा मारने के लिए दौड़ाया, क्योंकि यह लड़ाई का ज़माना था। दुश्मन के नुक़सान से बचने के लिए खुद उन्हें नुक़सान पहुँचाना ज़रूरी था। सौ सवारों का दस्ता था। नजद में एक जगह है 'क़रदा'। ज़ैद *(रज़ि.)* ने वहाँ पर क़ाफ़िले को पा लिया। क़ाफ़िलेवाले भाग निकले। सारा सामान दस्ते के हाथ लगा। हँसी-खुशी ये लोग मदीना लौटे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अल्लाह का शुक्र अदा किया और सारा सामान मुसलमानों में बाँट दिया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* मक्का से मदीना आए तो निरन्तर लड़ाई और जिहाद में लगे रहे। इस्लाम की सुरक्षा के लिए लड़ाइयाँ भी कीं। जान और माल की क़ुर्बानियाँ भी दीं। बीच में अगर कभी सुकून मिला, ख़तरों से इत्मीनान हुआ तो यह सुकून और इत्मीनान के क्षण भी आराम और इत्मीनान में न गुज़रे। उस समय एक दूसरा काम शुरू हो गया। वह काम था आपसी मुहब्बत और हमदर्दी पैदा करने का, परस्पर सम्बन्धों

को सुधारने और सँवारने का। आपके जो सच्चे साथी थे, जो हर वक़्त आपके साथ रहते थे, जो होशियारी और समझदारी में आगे थे। उनसे आप सम्बन्धों को और मज़बूत करते। प्यार और हमदर्दी से उनके दिलों को और मोहते। इसके लिए आप *(सल्ल.)* ने बहुत सी तरकीबें अपनाईं। प्रेम पैदा करने में रिश्ता भी एक मददगार बनता है। आप *(सल्ल.)* ने इसको भी अपनाया। उनसे अपना रिश्ता क़ायम किया। आपके जो दो बड़े दोस्त थे, जो आपके दाएँ-बाएँ हाथ के समान थे। उनकी बेटियों से अपना घर बसाकर उनका दिल रखा।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की बेटी हज़रत आइशा *(रज़ि.)* थीं। उनसे आपकी शादी मक्का ही में हो चुकी थी, लेकिन अभी उनकी उम्र कम थी, इसलिए वे अपने माँ-बाप ही के पास थीं। मदीना पहुँचकर वे आपके यहाँ आ गईं।

हज़रत उमर फ़ारूक़ *(रज़ि.)* की बेटी हज़रत हफ़सा *(रज़ि.)* थीं। उनसे भी आपने शादी की। आपने साथियों को अपनी भी बेटियाँ दीं और इस तरह उनके साथ हमदर्दी दिखाई। आपकी छोटी बेटी फ़ातिमा *(रज़ि.)* थीं। उनकी शादी आपने हज़रत अली *(रज़ि.)* से की, जो आपके वफ़ादार दोस्त थे। एक बेटी रुक़य्या *(रज़ि.)* थीं, उनकी शादी हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* से की, जो आप पर दिल व जान न्योछावर करते थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* बद्र की लड़ाई में गए हुए थे। उसी बीच वे अल्लाह को प्यारी हो गईं। वे पहले ही से बीमार थीं। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* उनकी देखभाल में थे। इसी लिए वे बद्र में शरीक भी न हो सके। रुक़य्या *(रज़ि.)* का इन्तिक़ाल हुआ तो आप (सल्ल.) ने उस्मान *(रज़ि.)* से अपनी दूसरी बेटी उम्मे-कुलसूम *(रज़ि.)* की शादी कर दी। इसलिए हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* को 'ज़िन्नूरैन' (दो नूरवाले) का उपनाम मिला।

आप *(सल्ल.)* ने बेवाओं से भी हमदर्दी ज़ाहिर की। साथियों को भी समझाया कि अगर कोई औरत बेवा हो जाए, अल्लाह की राह में उसका शौहर शहीद हो जाए और पीछे बच्चे छोड़ जाए तो उस बेवा का ख़याल रखें। उसके साथ हमदर्दी करें, हो सके तो उससे शादी कर लें। उसके बच्चों का पालन-पोषण करें। ऐसा न हो कि वह बेवा बे सहारा हो जाए। निर्धनता का शिकार हो जाए। परेशानियों का निशाना बन जाए।

बच्चे उसके कांधे का बोझ बन जाएँ। उसकी जान का वबाल हो जाएँ। एक बीबी ज़ैनब *(रज़ि.)* थीं। ये ख़ुज़ैमा की बेटी थीं। बहुत शरीफ़ और नेक औरत थीं। सदक़ा और ख़ैरात करना उनको बहुत पसन्द था, इसलिए 'उम्मुल-मसाकीन' (ग़रीबों की माँ) के नाम से मशहूर थीं। बद्र की लड़ाई में उनके शौहर शहीद हो गए और वे बेवा हो गईं। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनसे शादी करके उनकी दिलजोई की।

☆............☆............☆

बद्र में दुश्मनों ने मुँह की खाई थी। क्या वे अपना यह घोर अपमान सहन कर सकते थे? उनकी इज़्ज़त और शौकत को ठेस लगी थी। क्या जीते जी वे यह बदनामी गवारा कर सकते थे? प्यारे नबी *(सल्ल.)* इस बात से बेख़बर न थे। आपको यक़ीन था कि क़ुरैश ख़ामोश बैठनेवाले नहीं। वे ज़ख़्मी शेर की तरह तिलमिला रहे हैं। ग़ुस्से में सुलग रहे हैं और वह ग़ुस्सा ख़ून ही से ठण्डा होगा। उनके जो सिपाही और जवान मारे गए हैं, उनका बदला लेकर ही उनको इत्मीनान और सुकून होगा। मुसलमानों ने उनका कारोबारी क़ाफ़िला भी लूटा था, हालाँकि इसी ख़तरे से उन्होंने रास्ता बदला था। इस बात से उनका ज़ख़्म और हरा हो गया था और बदले का नया जोश पैदा हो गया था। इन सब बातों की वजह से प्यारे नबी *(सल्ल.)* चौकन्ने थे और आप अच्छी तरह समझते थे कि एक न एक दिन फिर लड़ाई का सामना है।

मक्का में लड़ाई की तैयारियाँ ज़ोरों पर थीं। प्यारे नबी *(सल्ल.)* के चचा हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* इस्लाम क़बूल कर चुके थे। लेकिन अभी वे मक्का ही में ठहरे हुए थे। एक तेज़ रफ़्तार आदमी को उन्होंने यह सन्देश देकर आप *(सल्ल.)* की सेवा में भेजा कि क़ुरैश लड़ाई के लिए मदीना जा रहे हैं। वे बहुत भारी लश्कर के साथ हैं। हथियार और सामान भी बड़ी भारी तादाद में है। साथ ही उन्होंने इस सन्देश को ले जानेवाले आदमी को ताकीद की कि तीन रात-दिन में मदीना ज़रूर पहुँच जाए।

यह ख़बर पाकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* को ज़रा भी ताज्जुब न हुआ।

इसमें ताज्जुब की बात भी क्या थी? आप *(सल्ल.)* को तो पहले ही से इसकी आशंका थी। लेकिन इतना भारी लश्कर! इतने हथियार और सामान! वह भी इतनी थोड़ी मुद्दत में! इसपर आपको ज़रूर ताज्जुब हुआ।

क़ुरैशी लश्कर की तैयारी दिन-रात जारी थी। हथियार और सामान जमा हो रहे थे। सिपाही भर्ती किए जा रहे थे। क़ुरैश ने इसके लिए न जाने कितने क़बीलों से समझौते किए थे। न जाने कितने क़बीलों को उभारा था। अरब में जोश दिलाने का सबसे बड़ा ज़रीआ जोशीले शाइर थे या जोशीली तक़रीर करनेवाले। क़ुरैश के भाषणकर्त्ता और शाइर क़बीलों में फैल जाते। गर्म-गर्म भाषण देते। जोशीला काव्य सुनाते। इस तरह लोगों के दिलों को गरमाते। उन्हें लड़ाई में हिस्सा लेने पर उभारते। देखते-देखते एक बहुत भारी लश्कर तैयार हो गया। हथियारों और सामान का ढेर लग गया।

बहुत सी औरतें ऐसी थीं, जिनके बाप-बेटे बद्र में मारे गए थे। इसलिए वे खुद ग़ुस्से से बेक़रार थीं और अपने मर्दों को भी बेक़रार किए हुए थीं। इन औरतों में हिन्द नामक औरत सबसे आगे थी। यह उत्बा की बेटी और अबू-सुफ़ियान की बीवी थी। बद्र में उसके बाप, भाई और चचा तीनों मारे गए थे और जब उसको इसकी ख़बर मिली थी तो उसका ख़ून खौलने लगा था और उसने क़सम खाई थी कि जब तक ख़ून का बदला न ले लिया जाएगा वह ख़ुश्बू न लगाएगी।

लश्कर की रवानगी का समय हुआ तो उसने कुछ दूसरी औरतों को तैयार किया और लश्कर के साथ हो ली। लोगों ने उसे रोकना चाहा, लेकिन वह न मानी। तुऐमा-बिन-अद्दी, जुबैर-बिन-मुतइम का चचा था। वह भी बद्र में मारा गया था। जुबैर का एक हब्शी ग़ुलाम था। उसका नाम था वहशी। यह छोटा भाला फेंककर मारने में माहिर था, क्योंकि यह हब्शावालों का ख़ास हथियार था। जुबैर ने अपने इस ग़ुलाम से कहा, "वहशी! अगर तुम मेरे चचा के बदले में मुहम्मद को या हमज़ा को या अली को मार दो तो तुम आज़ाद हो।"

हिन्द ने कहा, "वहशी! मेरे रिश्तेदारों की टक्कर के या तो मुहम्मद हैं या फिर हमज़ा और अली हैं। इन तीनों में से किसी एक को मार दो,

बहुत क़ीमती इनाम दूंगी।"

वहशी ने दोनों से वादा कर लिया। अब लश्कर मदीना की ओर बढ़ा। तीन हज़ार सिपाहियों का दल था। साथ में दो सौ घोड़े और तीन हज़ार ऊँट थे। अबू-सुफ़ियान लश्कर का कमांडर था। साथ में पन्द्रह औरतें भी थीं। ये डफली बजातीं। बद्र में मारे हुए लोगों का विलाप करतीं। हार पर लोगों को शर्म दिलातीं। इन्तिक़ाम पर उभारतीं। लश्कर में अबू-आमिर औसी भी शामिल था। यह औस क़बीले का बहुत इज़्ज़तदार व्यक्ति था। इस्लाम के नाम से ही जलता था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हिजरत की तो यह मदीना छोड़कर मक्का चला आया और आपके दुश्मनों से मिल गया। उसके साथ उसके साथी भी मक्का चले गए। उसने क़ुरैश के लोगों से कहा, : "चलो, इस बार तो ख़ूब मज़ा आएगा। मुहम्मद के मुक़ाबले में जहाँ मैं निकला, औस के सारे लोग मेरे इर्द-गिर्द जमा हो जाएँगे। मुहम्मद के साथ एक भी न रहेगा।"

चलते-चलते लश्कर अबवा नामक स्थान पर पहुँच गया। जहाँ प्यारे नबी *(सल्ल.)* की माँ की क़ब्र है। हिन्द ने लोगों से कहा—

"मौक़ा अच्छा है। मुहम्मद की माँ की क़ब्र उखाड़ डालो। हममें से कोई क़ैद हुआ तो शरीर का एक-एक टुकड़ा मुक्ति प्रतिदान के रूप में दे देंगे।" लेकिन कुछ लोगों ने इस राय का विरोध किया और कहा— "ऐसा भूलकर भी मत करना। वरना बनी-ख़ुज़ाआ और बनी-बक्र हमारे मुर्दों की सारी क़ब्रें उखाड़कर रख देंगे।" लश्कर आगे बढ़ा। चलते-चलते 'अक़ीक़' पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर ठहर गया। यह एक मशहूर जगह है और मदीना से पाँच मील की दूरी पर है।

उसी समय प्यारे नबी *(सल्ल.)* को चचा का ख़त मिला। आप उस समय क़ुबा में थे। उबई-बिन-कअब ने ख़त पढ़कर सुनाया। ख़त सुनकर आपने फ़रमाया, "अच्छा देखो, किसी से इसका ज़िक्र न करना।" फिर आप मदीना आए। सअद-बिन-रबीअ *(रज़ि.)* के घर गए। उनसे इस ख़त का ज़िक्र किया। अभी होशियार और समझदार साथियों से मशविरा करना बाक़ी था। इसलिए किसी को बताने से मना कर दिया। पास ही सअद *(रज़ि.)* की बीवी भी थी। उसने यह बातें सुन ली थीं। इस तरह यह ख़बर छुप न सकी। अभी साथियों से मशवरा किया भी न था कि

हर ओर इसकी चर्चा हो गई।

हिजरत का तीसरा साल था। शव्वाल की पाँचवीं तारीख़ थी। दो जाँनिसार साथियों, अनस और मूनिस *(रज़ि.)* को आपने लश्कर की ख़बर लाने के लिए भेजा। उन्होंने आकर ख़बर दी कि क़ुरैश का लश्कर मदीना के बिलकुल निकट आ गया है। खेतों को उनके ऊँटों और घोड़ों ने चर लिया है। मदीना की चरागाह भी साफ़ हो गई है। आप *(सल्ल.)* ने हुबाब-बिन-मुंज़िर *(रज़ि.)* को भेजा कि फ़ौज की तादाद का पता करें। साज़ो-सामान का भी अन्दाज़ा लगाएँ। उन्होंने जाकर साज़ो-सामान और तादाद का पता लगाया और आकर आपको ख़बर दी।

मदीना की यह रात बड़े भय और घबराहट की रात थी। एक दिलजले ज़ालिम दुश्मन से पाला था, जिसके पास शक्ति भी बहुत थी। शहर पर हमले की आशंका थी। कुछ बहादुरों ने फ़ौजी कपड़े पहने और रात भर मदीना की सीमाओं पर पहरा देते रहे। सअद-बिन-उबादा *(रज़ि.)* और सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* ने हथियार लिए और पूरी रात मस्जिदे-नबवी के दरवाज़े पर टहलते रहे।

ख़ुदा-ख़ुदा करके सुबह हुई। जुमा का दिन था। लोग प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर हुए। आपने फ़रमाया, "मेरा विचार है कि हम मदीना ही में ठहरें। दुश्मन से कोई छेड़छाड़ न करें। अगर वे वहीं पड़े रहे तो ख़ुद पछताएँगे और हमपर चढ़ाई की तो हम शहर ही में रहकर उनका मुक़ाबला करेंगे और घेर-घेरकर उन्हें ढेर कर देंगे। क्योंकि मदीना की गलियों और पगडंडियों से वे हमारी तरह वाक़िफ़ नहीं। कहो तुम लोगों की क्या राय है? जितने बड़े और समझदार लोग थे, सबने आपकी राय से इत्तिफ़ाक़ किया और ख़ुश होकर उसका स्वागत किया। अब्दुल्लाह-बिन-उबई उठा और उसने भरपूर समर्थन किया। उसने कहा, "अल्लाह के रसूल! आपकी राय बहुत बेहतर है। मदीना ही में रहिए। बाहर न निकलिए। ख़ुदा की क़सम हमारा तो बार-बार का तजरिबा है। जब कभी शहर से बाहर निकल कर दुश्मन का मुक़ाबला किया तो पराजय का मुँह देखना पड़ा और किसी दुश्मन ने शहर पर हमला किया तो उसकी बुरी गत बनाई। ऐ अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)*! उन्हें वहीं पड़ा रहने दीजिए। अगर वे वहीं पड़े रहे तो ख़ुद पछताएँगे और अगर शहर

में घुसे तो हम गलियों में घेर-घेरकर उन्हें ख़ूब मारेंगे और औरतें और बच्चे छतों पर से पत्थर बरसाएँगे।"

कुछ मुसलमान ऐसे भी थे, जो बाद में ईमान लाए थे और बद्र में शरीक न हो सके थे। उन लोगों की तमन्ना थी कि काश! हम भी बद्र में शरीक हुए होते। कुछ जवान ऐसे भी थे जो बद्र में शरीक हुए थे और उन्होंने आँखों से हैरतनाक जीत का दृश्य भी देखा था। ये दोनों तरह के लोग जोश से बे-खुद थे और शहर से निकल कर हमला करने पर ज़ोर दे रहे थे। इस गरोह के एक जवान ने कहा, "अल्लाह के रसूल! दुश्मन के मुक़ाबले में निकलिए। कहीं वे यह न समझ लें कि हम डर गए और इस तरह उनके दिल और बढ़ जाएँ। अल्लाह के रसूल! बद्र में तो हम तीन सौ ही थे। फिर भी अल्लाह ने कामियाब किया और आज तो हम काफ़ी तादाद में हैं। हम तो इसी दिन की आरज़ू में थे। इसी दिन का तो हमें इन्तिज़ार था।"

दूसरे ने कहा, "अल्लाह के रसूल! दुश्मन हमारी ज़मीन में घुस आए हैं। हमारी खेतियों को रौंद डाला है। अब आख़िर लड़ाई का कौन सा समय आएगा।"

ख़ैसमा *(रज़ि.)* ने कहा, "बद्र में शरीक होने से मैं महरूम रहा, हालाँकि यह मेरी दिली तमन्ना थी। मेरा लड़का शरीक हुआ। वह शहीद हो गया। कल रात मैंने उसे स्वप्न में देखा। वह कह रहा था, "आप भी चले आइए। जन्नत में हमारा साथ रहेगा। रब ने जो वादा किया था, मैंने उसे बिलकुल सच्चा पाया।"

हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* ने कहा, "अल्लाह के रसूल! उस ज़ात की क़सम जिसने आप पर क़ुरआन उतारा, मैं तो खाना ही न खाऊँगा, जब तक बाहर निकल कर दुश्मनों से मुक़ाबला न कर लूँगा।"

मतलब यह कि नए मुसलमान जोश से भरपूर थे और बाहर निकल कर मुक़ाबले के लिए बेक़रार थे। कुछ बद्र के बहादुर भी उनकी ताईद कर रहे थे। तमन्ना हर एक की यही थी कि इस्लाम की राह में जान दे दे। इस्लाम पर ज़रा भी आँच न आने दे। हर एक चाहता था कि उसका रब उससे ख़ुश हो जाए और उसका सामीप्य प्राप्त हो जाए।

अब कोई चारा न था। आप *(सल्ल.)* ने बहुमत को स्वीकार किया

और एलान कर दिया कि बाहर निकल कर दुश्मनों का मुक़ाबला करेंगे। फिर आप *(सल्ल.)* ने जुमा की नमाज़ पढ़ी। ख़ुत्बे में लोगों को जिहाद पर उभारा। फिर बहुत ही ज़ोरदार और जानदार भाषण दिया। आपने फ़रमाया, "अगर तुमने सब्र से काम लिया तो मैदान तुम्हारे ही हाथ है।" अस्र के बाद आप घर में गए। अबू-बक्र *(रज़ि.)* और उमर *(रज़ि.)* भी साथ थे। उन दोनों ने आप *(सल्ल.)* को कवच पहनाया। सिर पर ख़ौद रखा। आप *(सल्ल.)* ने गले से तलवार लटकाई। अब आप बिलकुल तैयार थे।

नबी *(सल्ल.)* हथियार लिए हुए बाहर आए। तमाम साथी जल्दी-जल्दी तैयार हुए और दुश्मन से मुक़ाबले के लिए रवाना हो गए। एक हज़ार की तादाद थी। साथ में केवल दो घोड़े थे, जिनमें से एक खुद प्यारे नबी *(सल्ल.)* के लिए था।

फ़ौज में कुछ कम उम्र नौजवान थे, जो लड़ाई में जाने के लिए निकले थे। इस्लाम की खेती को अपने ख़ून से सींचने के लिए बेक़रार थे। आप *(सल्ल.)* ने फ़ौज का जायज़ा लिया तो उन्हें रोक दिया। केवल दो खुश क़िस्मत ही इजाज़त पा सके। एक तो तीर चलाने में माहिर थे। दूसरे ताक़त में बढ़े हुए थे। पहले का नाम राफ़ेअ था और दूसरे का समरा। उस समय दोनों की उम्र पन्द्रह साल की थी।

फ़ौज में अब्दुल्लाह बिन-उबई भी शामिल था। यह मुनाफ़िक़ों का सरदार था। साथ में उसके तीन सौ साथी भी थे। वह कुछ दूर तक साथ चला। फिर वह अपने साथियों को लेकर अलग हो गया और मदीना की तरफ़ लौट पड़ा। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-हराम ने उसको लाख समझाया। प्यारे नबी *(सल्ल.)* का समझौता याद दिलाया, लेकिन वह न माना। तन कर बोला, "मुहम्मद ने हमारी बात न मानी, इन लोगों की बात मान ली।" अब हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-अम्र ने उसके साथियों को समझाना चाहा। बड़ी दर्दमन्दी से कहा—

"भाइयो! अल्लाह का वास्ता देकर तुमसे कहता हूँ, इस समय जबकि दुश्मन का सामना है, अपनी क़ौम और अपने नबी का साथ हरगिज़ न छोड़ो।"

लेकिन वे यह कहते हुए चल दिए कि अगर हमें यक़ीन होता कि

दुश्मन से मुठभेड़ होकर रहेगी तो हम तुम्हारा साथ कभी न छोड़ते। लेकिन हमारे ख़याल में इसकी नौबत न आएगी।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* बाक़ी फ़ौज को लेकर आगे बढ़े। अब सिर्फ़ सात सौ मुसलमान थे, जिनका तीन हज़ार दुश्मनों से पाला था। दुश्मन भी ऐसे कि ज़्यादातर दिल जले थे और ख़ून का बदला लेने निकले थे।

(2)

उहुद[1] के पास प्यारे नबी *(सल्ल.)* की फ़ौजें और क़ुरैश की फ़ौजें आमने सामने हुईं। एक तरफ़ अल्लाह के सच्चे और वफ़ादार बन्दे थे और दूसरी तरफ़ अल्लाह के बाग़ी और नाफ़रमान दुश्मन थे।

दोनों फ़ौजें मुक़ाबले की तैयारी करने लगीं। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उहुद के आगे से अपनी फ़ौज की पंक्ति बनाई। झण्डा हज़रत मुसअब बिन-उमैर *(रज़ि.)* को सौंपा गया। पहाड़ में एक घाटी भी थी इसलिए डर था कि दुश्मन पीछे से आकर हमला न कर दें। आप *(सल्ल.)* ने पचास तीर अन्दाज़ों को उस घाटी पर खड़ा कर दिया और उन्हें हुक्म दिया—

"तुम लोग हमारी पीठ की रक्षा करना। ऐसा न हो कि हम पीछे से धर लिए जाएँ। देखो, अपनी जगह पर जमे रहना। वहाँ से हटना नहीं। अगर हम जीत जाएँ और दुश्मन की फ़ौज में घुस जाएँ, तब भी तुम अपनी जगह न छोड़ना और अगर हम क़त्ल होने लगें तो हमारी मदद के लिए भी न आना। हाँ, वहीं से उनपर तीरों की बौछार शुरू कर देना। क्योंकि घोड़े तीरों से डरते हैं।"

उधर क़ुरैश ने भी बड़ी अच्छी तरह अपनी फ़ौज को पंक्तिबद्ध किया, मैमना पर ख़ालिद-बिन-वलीद को मुक़र्रर किया और मैसरा का अमीर इकरमा को बनाया। झण्डा अब्दुद्दार के ख़ानदान के हाथ में था और अबू-सुफ़ियान फ़ौज का कमाण्डर था। अबू-सुफ़ियान ने ध्वजावाहकों को जोश दिलाते हुए कहा, "झण्डे ही पर हार जीत का फ़ैसला होता है। इसलिए या तो इसका हक़ अदा करो, वरना इसे छोड़कर किनारे हो जाओ।"

अब्दुद्दार के जवानों को जोश आ गया। उनका स्वाभिमान भड़क

1. उहुद एक पहाड़ का नाम है जो मदीना से उत्तर की ओर डेढ़-दो मील की दूरी पर स्थित है।

उठा। वे सीना तान कर बोले, "मुक़ाबला तो होने दो! फिर हमारे करतब देखना!"

औरतों के जोश की भी अजीब हालत थी। हिन्द उनमें सबसे आगे थी। ये औरतें फ़ौज की पंक्तियों के बीच घूमतीं। मर्दों को जोश दिलातीं। उनमें स्वाभिमान की आग भड़कातीं। डफली बजा-बजा कर कहतीं—

"अब्दुद्दार के जवानो! आगे बढ़ो! वतन के रक्षको! आगे बढ़ो! बे-थकान तलवारें चलाओ।"

फिर वे ये शेर पढ़तीं—

"हम आकाश के सितारों की बेटियाँ हैं।

हम क़ालीनों पर चलने वालियाँ हैं।।

अगर तुम बढ़कर लड़ोगे तो हम तुमसे गले मिलेंगे।

और पीछे क़दम हटाया तो हम तुम से अलग हो जाएँगे।।

बिलकुल दुश्मन की तरह तुमसे कट जाएँगे।"

हिन्द जब 'वहशी' के पास पहुँचती तो उसको अपना वादा याद दिलाती और जोश दिलाते हुए कहती, "अबू दसमा! मेरा कलेजा ठण्डा करो। ख़ुद भी सुकून पा जाओ।"

अबू-आमिर औसी पंक्ति से निकल कर मैदान में आया। डेढ़ सौ साथी भी उसके साथ थे। उसका विचार था कि अनसार उसे देखेंगे तो आप *(सल्ल.)* का साथ छोड़ देंगे। उसने ज़ोर से पुकारा : "औस के लोगो! मैं अबू-आमिर हूँ।" मुसलमानों ने जवाब दिया, "ओ पापी! ख़ुदा तेरा मुँह काला करे।"

अबू-आमिर ने कहा, "मेरे बाद मेरी क़ौम बिगड़ गई।"

फिर कुछ देर तक दोनों तरफ़ से पत्थर चलते रहे। आख़िर अबू-आमिर और उसके साथियों ने पीठ दिखा दी।

अबू-सुफ़ियान पुकारा— "औस और ख़ज़रज के लोगो! तुम बीच से हट जाओ। हमें अपने भाइयों से मुक़ाबला करने दो। हम तुमसे कुछ नहीं बोलेंगे।" औस और ख़ज़रज ने यह सुना तो अबू-सुफ़ियान को बड़ा बुरा-भला कहा और बुरी तरह फटकार दिया।

अब प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने आम हमला करने की इजाज़त दे दी।

कुछ साथियों को मैमना की तरफ़ भेजा और कुछ को मैसरा की तरफ़ और लड़ाका दस्ते को दुश्मन फ़ौज के बीच में घुसने का हुक्म दिया। शेरे-इस्लाम हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* आगे बढ़े। गर्जदार आवाज़ के साथ एक नारा लगाया, जो वास्तव में सारे ही मुसलमानों का नारा था कि "मारो! ख़ूब मारो!"

हज़रत अली *(रज़ि.)* दुश्मन फ़ौज के बीच में घुस गए। फ़ौज का झण्डा तल्हा के हाथ में था। वह मुक़ाबले के लिए सामने आया। हज़रत अली *(रज़ि.)* तलवार लेकर बिजली की तरह झपटे और पूरी ताक़त से उस पर वार किया। अब वह ज़मीन पर पड़ा था। झण्डा बढ़कर उसके भाई उस्मान ने थाम लिया। अब हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* ने बढ़कर उसपर हमला किया जिस हाथ में झण्डा था, वह हाथ कट कर नीचे गिर गया। उस्मान ने तुरन्त झण्डा दूसरे हाथ में ले लिया। हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* ने दूसरे हाथ पर वार किया। वह हाथ भी कट कर अलग हो गया। अब झण्डा अबू-सईद ने ले लिया, जो तल्हा और उस्मान का भाई था। हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास *(रज़ि.)* ने उसपर तीर का निशाना लगाया। तीर उसके हलक़ में लगा वह। वहीं पर ढेर हो गया। इसी तरह झण्डा तल्हा और उसके भाइयों के हाथों में घूमता रहा। फिर उसके दोनों बेटों मुसाफ़िअ और जुल्लास के हाथों में आ गया। हज़रत आसिम-बिन-अबू-अफ़्लह *(रज़ि.)* ने ताक कर उन दोनों पर निशाना लगाया। वे दोनों वहीं तड़पने लगे।

क़ुरैशी औरतों में उन दोनों की माँ सुलाफ़ा भी मौजूद थी। उन दोनों की ख़बर सुनते ही भागकर वहाँ पहुँची। उसने एक-एक करके उन दोनों को उठाया और अपनी गोद में लिटा लिया। उस समय दोनों आख़िरी साँस ले रहे थे। सुलाफ़ा ने बड़ी बेचैनी से पूछा—

"मेरे जिगर के टुकड़ो! तुम्हें किसने मारा?" दम तोड़ते हुए बेटों ने जवाब दिया, "जिस समय हमको तीर लगा, हमारे कानो में यह आवाज़ आई कि यह लो और मैं अबुल-अफ़्लह का बेटा हूँ।"

सुलाफ़ा ने उसी समय मन्नत मानी कि अगर अबुल-अफ़्लह का सिर मिल गया तो उसी में शराब पिऊँगी और जो सिर काट कर लाएगा, उसे सौ ऊँट इनाम दूँगी।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हाथ में तलवार लेकर फ़रमाया, "इसका हक़ कौन अदा करेगा?"

इस श्रेय के लिए बहुत से हाथ आगे बढ़े। हज़रत अबू-दुजाना अनसारी भी उठे। ये अरब के बहुत नामी पहलवान थे। उन्होंने अर्ज़ किया, "अल्लाह के रसूल! इसका क्या हक़ है?"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "जब तक इसकी धार न मुड़ जाए, इसे दुश्मन पर चलाते रहो।"

हज़रत अबू-दुजाना ने वह तलवार हाथ में ले ली। थे वे बड़े बहादुर और साहसी। उनका एक लाल रूमाल था। जब वे लड़ने का इरादा करते तो उसे सिर पर बाँध लेते थे। लोग देखते ही समझ जाते कि अबू दुजाना *(रज़ि.)* अब लड़ेंगे। उन्होंने मौत का रूमाल निकाला। उसे सिर पर बाँधा और शान से अकड़ते-तनते हुए फ़ौज से बाहर आए। उनके लिए यह आज कोई नई बात न थी। लड़ाई के समय अबू-दुजाना *(रज़ि.)* हमेशा इसी तरह चलते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने देखा तो फ़रमाया, "यह चाल खुदा को पसन्द नहीं, लेकिन इस समय पसन्द है।"

हज़रत अबू-दुजाना *(रज़ि.)* तलवार लेकर दुश्मनों में घुस गए। सिर पर मौत का रूमाल बँधा था। जिस मुशरिक के पास से गुज़रते, उसका सिर उड़ा देते। जो दुश्मन सामने आता, उसको वहीं ढेर कर देते, जिस तरफ़ मुड़ जाते पंक्तियों की पंक्तियाँ साफ़ कर डालते। वे इसी तरह तेज़ी से बढ़ रहे थे कि उन्होंने देखा, एक व्यक्ति लोगों को जोश दिला रहा है। उनके जज़्बात को भड़का रहा है। उन्होंने तलवार उठाई कि उसका काम तमाम कर दें। लेकिन उसी समय वह ज़ोर से चिल्लाया। देखा तो वह उत्बा की बेटी हिन्द थी। हज़रत अबू-दुजाना ने तुरन्त तलवार रोक ली कि किसी औरत को मारना इस तलवार का अपमान है।

लड़ाई पूरे ज़ोर पर जारी थी। बहादुर मुसलमान जोश से बे-क़ाबू थे। हर तरफ़ से वे दुश्मन को दबा रहे थे। फ़ौजों को चीरते हुए आगे बढ़ रहे थे। लाशों पर लाशें गिरा रहे थे। तीर अन्दाज़ तीरों की बौछार कर रहे थे और दुश्मन के सीने छलनी हो रहे थे।

हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* की बहादुरी का भी अजीब हाल था। उनके

दोनों हाथों में तलवार थी और वे दुश्मन की पंक्तियों की पंक्तियाँ उलटते जा रहे थे। लेकिन ग़ुलाम वहशी की आँखें घात में थीं। वह हमले के लिए मौक़े की तलाश में था ताकि यह उसकी आज़ादी का बदल बन जाए।

वह समय भी आ गया, जिसके लिए वहशी निकला था। वह घड़ी आन पहुँची जिसके लिए वह शुरू से ताक में था।

हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* एक दुश्मन पर हमला कर रहे थे। पास ही एक चट्टान थी। उसी चट्टान के पीछे वहशी ताक में बैठा था। मारने के लिए भाला ठीक कर रहा था। हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* बिलकुल बे-ख़बर थे। मौक़ा पाते ही उसने भाला फेंक कर मारा। भाला उनकी नाफ़ (नाभि) में लगा और पार हो गया। हज़रत हमज़ा ने नज़र दौड़ाई कि यह भाला किधर से आया। देखा तो पास ही वहशी खड़ा मुस्करा रहा था। कामियाबी की ख़ुशी में उसकी आँखें चमक रही थीं। हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* तेज़ी से बढ़े कि उसपर हमला करें। लेकिन......! शेरे-ख़ुदा और बहादुरे-इस्लाम के हाथ-पैर जवाब दे गए। वे लड़खड़ा कर गिर पड़े। अब वे ज़िन्दगी की आख़िरी साँस ले रहे थे।

अल्लाह का दुश्मन अल्लाह के प्यारे को खड़ा देखता रहा। जब उनके प्राण पखेरू उड़ गए और शरीर शान्त हो गया तो वह आगे बढ़ा और शरीर से भाले को अलग किया। फिर एक तरफ़ जाकर बैठ गया कि अब उसे लड़ने की कोई ज़रूरत न थी।

हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* शहीद हो चुके थे। लेकिन दुश्मन बुरी तरह हार रहे थे और मुसलमान मैदान पर छाए हुए थे। क़ुरैश का झण्डा अब्दुद्दार के परिवार के हाथ में था। वे बारी-बारी आगे बढ़ते रहे। झण्डे को हाथ में लेते रहे और जान देते रहे। आख़िरकार वे–सब मारे गए। अब झण्डा ज़मीन पर था। पैरों से रौंदा जा रहा था। दुश्मन बौखलाए हुए थे। उनकी पंक्तियों में खलबली मची हुई थी। वे अब भाग रहे थे और मुसलमान दौड़-दौड़ कर उन्हें मार रहे थे। धड़ा-धड़ सिर ज़मीन पर लुढ़क रहे थे और जानें तन से जुदा हो रही थीं। जो औरतें अभी मर्दों को हिम्मत दिला रही थीं, अब वे चीख़-चीख़ कर भाग रही थीं और घाटियों, वृक्षों और टीलों की पनाह ले रही थीं।

मुसलमान समझे कि अब तो जीत यक़ीनी है। इसलिए दुश्मनों की तरफ़ से उनका ध्यान हट गया और उन्होंने माल और सामान की लूट शुरू कर दी।

तीर-अन्दाज़ों ने, जो दर्रे के पहरे पर लगाए गए थे, देखा कि दुश्मनों के पैर उखड़ गए हैं और मुसलमान पूरी तरह जीत गए हैं। उन्होंने यह भी देखा कि मुसलमान दुश्मनों के अन्दर घुस रहे हैं और उनके माल लूट रहे हैं। यह देखकर कुछ लोगों ने अपने साथियों से कहा, ''बेवजह यहाँ किस लिए पड़े हो? दुश्मन तो अब हार भी गए। वह देखो अपने साथियों को। वे सामान भी लूट रहे हैं। चलो अब हम भी वहीं चलें।''

दूसरों ने कहा, ''क्या प्यारे नबी *(सल्ल.)* की बात तुम्हें याद नहीं? आपने हमें हुक्म दिया है कि पीछे से हमारी रक्षा करते रहना, अपनी जगह से हटना नहीं?!''

उन लोगों ने कहा, ''आप *(सल्ल.)* का यह मतलब हरगिज़ नहीं था कि दुश्मन हार जाएँ तब भी तुम इसी जगह डटे रहना।'

उनके सरदार अब्दुल्लाह-बिन-जुबैर *(रज़ि.)* ने उन्हें कितना ही रोका, लेकिन उन्होंने अपनी जगहें छोड़ दीं और मुसलमानों के साथ माल लूटने लगे। दर्रे पर केवल कुछ मुसलमान मौजूद थे, जिन्होंने प्यारे नबी *(सल्ल.)* की बात याद रखी। उन्होंने अपने सरदार का कहना माना और अपनी जगह पर सब्र के साथ जमे रहे।

इत्तिफ़ाक़ से ख़ालिद-बिन-वलीद की नज़र उधर पड़ गई। देखा तो दर्रा बिलकुल ख़ाली था। केवल कुछ ही तीर अन्दाज़ वहाँ मौजूद थे। उसने तुरन्त सवारों का दस्ता साथ लिया और बड़े निर्भय रूप से हमला किया। इतने में मैसरा का सरदार इकरमा भी आ गया। हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-जुबैर *(रज़ि.)* ने और उनके साथियों ने जमकर मुक़ाबला किया, लेकिन वे शहीद कर दिए गए।

अब रास्ता साफ़ था। सवारों का दस्ता आगे बढ़ा। जहाँ मुसलमान लूट-मार में लगे हुए थे और मुशरिक सब कुछ छोड़-छाड़कर भाग रहे थे, वहाँ पहुँचे तो ज़ोर से नारा लगाया—

''उज़्ज़ा की जय। हुबल की जय।''

अब मुसलमानों के सिरों पर तलवारें बरसने लगीं। मुसलमान तो इत्मीनान से लूटने में लगे हुए थे। अचानक यह आफ़त देखी तो बौखला गए। उनके होश व हवास उड़ गए। सब कुछ छोड़-छाड़ कर उन्होंने तलवारें सँभालीं और फिर लड़ने लगे। दुश्मनों ने उन्हें घेर लिया था। वे उन्हें दबाने की कोशिश करने लगे। लेकिन अब बात बिगड़ चुकी थी। हारा हुआ दुश्मन फिर ताज़ा दम हो चुका था और उनपर ताबड़तोड़ हमले कर रहा था। मुसलमान बदहवासी की हालत में थे। दोस्त-दुश्मन का अन्तर मिट चुका था। मुसलमान मुसलमान को मार रहे थे। भय का यह हाल था कि उन्हें अपना ख़ास निशान भी याद न रहा, जिससे वे अपने साथियों को पहचान लेते। लड़ाई अब फिर घमासान की हो रही थी। लेकिन इस बार मुसलमानों की तरफ़ दबाव ज़्यादा था और लड़ाई का पल्ला दुश्मन की तरफ़ भारी था। इसी बीच एक दुश्मन ने चीख़कर कहा—

"मुहम्मद मारे गए!!"

यह बात जंगल में आग की तरह हर ओर फैल गई और सबपर जादू का सा असर किया। मुसलमानों ने सुना तो उनपर आम बदहवासी छा गई। बहुतों के दिल उखड़ गए। अधिकांश के हौसले पस्त हो गए। दुश्मनों ने जब इस ख़बर को सुना तो उनमें और जान पड़ गई।

मुसलमानों में निराशा और बे-दिली फैल चुकी थी। बड़े-बड़े बहादुरों के हाथ-पाँव फूल चुके थे। कुछ तो ख़ुद हथियार फेंक कर अलग हो गए। कुछ लोगों ने दूसरों को भी यही सलाह दी। लेकिन कुछ जवान ऐसे भी थे, जिनके हौसले अभी बुलन्द थे। जो ईमानी जोश में डूबे हुए थे। वे पूरी बहादुरी से लड़ते रहे। जो हिम्मत हार चुके थे, उन्हें उभारते भी रहे। वे कहते, "प्यारे नबी ने अपनी ज़िम्मेदारी पूरी कर दी। रब का जो सन्देश था, उसे पहुँचा दिया। अब तुम दीन की रक्षा करो और उसके लिए लड़ो। अल्लाह तो ज़िन्दा है। उसके लिए तो कभी मौत नहीं।"

मुसलमानों की पंक्तियाँ तितर-बितर हो चुकीं थीं। जो जहाँ था वहीं घिर कर रह गया था। उधर दुश्मनों का सारा ज़ोर प्यारे नबी *(सल्ल.)* की तरफ़ था। रास्ता बिलकुल साफ़ था। दुश्मनों के एक झुण्ड ने

आप *(सल्ल.)* को घेर लिया। आपकी जान ले लेने का फ़ैसला कर लिया। वे बेरहमी से आप-पर पत्थर बरसाने लगे। अन्धाधुन्ध तीरों की बौछार करने लगे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* भी मुक़ाबले में तीर चला रहे थे। आपके आस-पास कुछ जाँनिसार भी थे। वे आपको अपनी ओट में लिए हुए थे और अपने हाथों और पीठों पर तीर व तलवार रोक रहे थे। कुछ बहादुर मुक़ाबले में लगे हुए थे। वे बराबर तीर बरसा रहे थे।" हज़रत सअद-बिन-अबी-वक़्क़ास *(रज़ि.)* माहिर तीर अन्दाज़ थे। वे भी उस समय मौजूद थे। वे लगातार तीर बरसा रहे थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* उन्हें ख़ुद तीर उठा-उठाकर देते और फ़रमाते— "तुम पर मेरे माँ-बाप निछावर हों, तीर मारते जाओ।" तल्हा *(रज़ि.)* भी मशहूर तीर अन्दाज़ थे। वे भी वहाँ मौजूद थे। उन्होंने इतने तीर बरसाए कि दो-तीन कमानें हाथ में टूट-टूटकर रह गईं।

हज़रत अबू-दुजाना *(रज़ि.)* झुक कर ढाल बन गए थे। अब जो तीर आते थे, उनकी पीठ पर आते थे। हज़रत तल्हा *(रज़ि.)* हाथ पर तलवारें रोक रहे थे। एक हाथ कटकर अलग भी हो गया था। इसी हाल में एक बदक़िस्मत दायरे को तोड़कर आगे बढ़ा। प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पवित्र चेहरे पर उसने तलवार का वार किया। वार बहुत सख़्त था। ख़ौद की दो कड़ियाँ आप *(सल्ल.)* के चेहरे में चुभ कर रह गईं। एक दुश्मन ने दूर से पत्थर फेंका। पत्थर आकर आपके मुँह पर लगा। आगे के दो दाँत शहीद हो गए। होंठ लहूलहुान हो गए। एक ओर ज़ालिमों का यह सुलूक था। दूसरी तरफ़ प्यारे नबी *(सल्ल.)* की ज़ुबान पर ये शब्द थे—

"ऐ रब! मेरी क़ौम को माफ़ कर दे। वे जानते नहीं!"

इधर तो प्यारे नबी *(सल्ल.)* का यह हाल था। उधर मुसलमान निराश थे कि आप शहीद हो गए। दुश्मन ख़ुशियाँ मना रहे थे कि उनकी सालों की तमन्ना पूरी हो गई। बात अस्ल में यह हुई कि हज़रत मुसअब *(रज़ि.)* बिन-उमैर शहीद हो गए। जिस दुश्मन ने शहीद किया था, उसका नाम इब्ने-क़मया था। हज़रत मुसअब *(रज़ि.)* शक्ल-सूरत में प्यारे नबी *(सल्ल.)* से मिलते जुलते थे। इब्ने-क़मया ने समझा कि ये मुहम्मद *(सल्ल.)* ही हैं। अब क्या था, हर ओर शोर हो गया।

जो बहादुर साथी आप *(सल्ल.)* के पास मौजूद थे, उन्होंने चाहा इस

ग़लत ख़बर का खण्डन कर दें, लेकिन प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मना कर दिया और वे लोग ख़ामोश रहे। दुश्मनों को पूरा विश्वास था कि मुहम्मद *(सल्ल.)* सचमुच मारे गए। क़ुरैश के आदमी हर तरफ़ फैल गए और लाशों में आपको तलाश करने लगे। हर एक की इच्छा थी कि वह पहले पा जाए और आपके शरीर के साथ बुरा सुलूक करके अपना कलेजा ठण्डा करे। आपको ढूँढ़नेवालों में अबू-सुफ़ियान भी था। वह बड़ी बेचैनी से दौड़-दौड़ कर लाशों को देखता और हैरत और निराशा से कहता—

"मुहम्मद की लाश तो दिखाई नहीं दे रही है!"

अबू-सुफ़ियान लाशों में आप *(सल्ल.)* को ढूँढ़ ही रहा था कि हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* की लाश पर नज़र पड़ गई। देखते ही वह ग़ुस्से से लाल हो गया। अब इस बेरहम का ख़ूनी भाला था और हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* का पाक जिस्म। वह लगातार उनके जिस्म पर कचोके लगाता और होंठ चबा-चबाकर कहता, "ओ ग़द्दार! बद्र में तूने जो कुछ किया था, ले उसका मज़ा चख।"

एक काफ़िर था हुलैस-बिन-ज़य्यान। वह भी पास ही था। उससे यह बेरहमी देखी न गई। अबू-सुफ़ियान को पकड़कर उसने खींच लिया और चीख़ा—

"लोगो! देखते हो! यह क़ुरैश का सरदार है। अपने भाई के साथ यह कैसा सुलूक कर रहा है!" अबू-सुफ़ियान चौंक पड़ा। बोला : "ओह मुझसे बड़ी चूक हुई। अच्छा, देखो, इसका शोर न करो।"

फिर अबू-सुफ़ियान की ख़ालिद से भेंट हुई। अबू-सुफ़ियान ने पूछा, "मुहम्मद मारे गए। कुछ पता चला?" ख़ालिद ने बेचैनी के साथ जवाब दिया। मैंने अभी देखा था कि वे कुछ साथियों के साथ पहाड़ पर चढ़ रहे थे।

आम मुसलमानों को यक़ीन हो चुका था कि सचमुच प्यारे नबी *(सल्ल.)* शहीद हो गए, फिर भी बदहवासी में निगाहें आपको ढूँढती थीं। अचानक हज़रत कअब-बिन-मालिक *(रज़ि.)* की नज़र आप *(सल्ल.)* पर पड़ी। आपके चेहरे पर ख़ौद था, लेकिन आँखें चमक रही थीं। हज़रत कअब ख़ुद-ब-ख़ुद चीख़ पड़े—

"मुसलमानो! अल्लाह के रसूल ज़िन्दा हैं!"

कौन जाने यह आवाज़ क्या थी! मुसलमानों में अचानक ज़िन्दगी की लहर दौड़ गई। बुझे हुए हौसले जाग उठे। थके हुए जिस्म ताज़ा दम हो गए। हर ओर से आप *(सल्ल.)* के जाँनिसार टूट पड़े। परवानों की तरह आपके आसपास जमा हो गए। हज़रत अबू-बक्र और उमर *(रज़ि.)* सबसे आगे थे। हालात बहुत नाज़ुक हो चुके थे। ख़तरे बढ़ते ही जा रहे थे। आपके बहादुर साथियों ने आपको दायरे में ले लिया और पहाड़ पर चढ़ने लगे कि वहाँ दुश्मनों का पहुँचना आसान न था।

अबू-आमिर औसी ने पहाड़ के दामन में कुछ गड्ढे खोद रखे थे कि मुसलमान फिसल-फिसल कर उसमें जा पड़ें। इत्तिफ़ाक़ से एक गड्ढे के पास से गुज़रे तो आप *(सल्ल.)* का पैर फिसल गया। अली *(रज़ि.)* और तल्हा *(रज़ि.)* ने लपक कर आपके पवित्र हाथों को पकड़ कर ऊपर चढ़ा लिया और फिर पहाड़ की चोटी पर चढ़ गए। अबू-सुफ़ियान ने इन लोगों को देख लिया और वह फ़ौज लेकर पहाड़ पर चढ़ने लगा। हज़रत उमर *(रज़ि.)* और अन्य कुछ सहाबा *(रज़ि.)* ने देखते ही ऊपर से अन्धाधुन्ध पत्थर बरसाए और वह आगे न बढ़ सका।

आप *(सल्ल.)* के इन्तिक़ाल की ग़लत ख़बर मदीना में फैल गई। किसे मालूम कि मुसलमानों पर क्या बीती। बेचैन होकर वे आपकी ओर दौड़ पड़े। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने इस ख़बर को सुना तो बेक़रार हो उठीं और बौखलाहट की हालत में वे भी दौड़ पड़ीं। न जाने किस तरह वे प्यारे बाप के क़दमों तक पहुँच गईं। देखा कि अभी तक प्यारे नबी *(सल्ल.)* के चेहरे से ख़ून जारी था। यह देखकर उनका दिल भर आया। आँखों में आँसू आ गए। हज़रत अली *(रज़ि.)* पानी भर कर लाए। प्यारी बेटी बाप के ज़ख़्म को धोने लगी। बहुत धोया लेकिन ख़ून न थमा। आख़िरकार चटाई का एक टुकड़ा जलाया और उसकी राख को ज़ख़्म पर रख दिया। इस तरह ख़ून निकलना बन्द हो गया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* का एक कट्टर दुश्मन उबई-बिन-ख़ल्फ़ था। जब उसे मालूम हो गया कि मुहम्मद *(सल्ल.)* अभी ज़िन्दा हैं तो ग़ुस्से से जल उठा। नंगी तलवार हाथ में ली और कुछ साथियों को साथ लेकर आपकी तरफ़ दौड़ा। वह ग़ुस्से से चीख़ रहा था, "मुहम्मद कहाँ है?!

अगर वह बच गया तो मुझपर जीना हराम!"

जब वह प्यारे नबी *(सल्ल.)* के निकट पहुँचा तो आपने एक साथी से भाला लेकर उसके गले में तनिक सा चुभो दिया। वह तिलमिला उठा। तुरन्त चीख़ता-चिल्लाता वापस आया और तड़प-तड़प कर मर गया।

इस लड़ाई में सत्तर मुसलमान शहीद हुए। शहीद होनेवालों में बड़े-बड़े बहादुर सहाबा थे। शेरे-ख़ुदा हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* भी थे। वहशी ख़ुशी से उछल रहा था कि वही उनका क़ातिल था। वह हिन्द के पास पहुँचा। उसने अपना कारनामा बयान किया और अपना इनाम माँगा—

"मैंने तो हमज़ा को मार दिया। आप मुझे क्या इनाम देंगी?" हिन्द ने कहा, "तुझे मैं अपना क़ीमती हार दूँगी। ज़रा यह तो बता वह है कहाँ?" वहशी हिन्द को अपने साथ ले गया। उसे हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* की लाश दिखाई। हिन्द का कलेजा तो खौल ही रहा था। देखते ही ग़ुस्से से बेक़ाबू हो गई। उसने झुक कर हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* का पेट काटा। जिगर को बाहर निकाला और बेदर्दी से चबाने लगी कि कलेजे की आग ठण्डी हो, मगर वह उसे निगल न सकी। मजबूरन उगल देना पड़ा। अब उसने गले से हार निकाल कर वहशी को दे दिया। फिर उसने क़ुरैश की दूसरी औरतों को साथ लिया। जाकर मुसलमानों की लाशों के नाक-कान काटे और इन का हार बनाकर अपने गले में डाल लिया।

दुश्मन अपनी लाशों को दफ़न कर चुके थे। अब उन्होंने मक्का लौटने का इरादा किया। अबू-सुफ़ियान का दिल आज ख़ुशी से मग्न था। वह दौड़ा हुआ पहाड़ के दामन में आया और ज़ोर से पुकार कर कहा—

"मुसलमानो! आज का दिन बद्र के दिन का जवाब है। अगले साल फिर बद्र में हमारा और तुम्हारा मुक़ाबला है।"

फिर यह कहता हुआ लौट पड़ा कि—

"फ़ौज के लोगों ने मारे गए लोगों के नाक-कान काट लिए हैं, मैंने न इसका हुक्म दिया था, न इससे रोका था। मुझे इससे ख़ुशी नहीं, लेकिन कोई दुख भी नहीं।"

मुसलमान पहाड़ से उतरे कि लाशों को दफ़न करें। प्यारे नबी *(सल्ल.)* की नज़र हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* पर पड़ी। उनके शरीर के टुकड़े बिखरे पड़े

थे। आप बे-इख़्तियार रो पड़े। आपकी आँखों से इतने आँसू बहे कि दाढ़ी तर हो गई। उस समय आपके मुख से ये दर्द भरे शब्द सुने गए :

"उफ़! मेरी आँखों ने ऐसा दर्दनाक दृश्य कभी नहीं देखा!"

फिर आपने फ़रमाया—

"अगर सफ़िय्या *(रज़ि.)* (हज़रत हमज़ा *(रज़ि.)* की बहिन) को ग़म न होता और मुझे यह आशंका न होती कि यह चीज़ मेरे बाद सुन्नत बन जाएगी तो मैं इन (हज़रत हमज़ा) को यूँ ही छोड़ देता कि उन्हें गिध और हिंसक पशु खा लें। अल्लाह की क़सम, अगर उनपर कभी बस चला तो उनके तीस आदमियों की यही गत बनाऊँगा।"

लेकिन तुरन्त ही दिमाग़ में क़ुरआन की यह आयत गूँजने लगी—

"और अगर तुम बदला लो तो बस उतना ही लो जितनी तुम पर ज़्यादती की गई हो। लेकिन अगर तुम सब्र करो तो यह सब्र करनेवालों ही के हक़ में अच्छा है। और ऐ मुहम्मद! सब्र करो और तुम्हारा यह सब्र अल्लाह ही के सहारे होगा और उन लोगों की हरकतों पर दुखी न हो और न उनकी चालबाज़ियों पर दिल तंग हो। निस्सन्देह अल्लाह उनके साथ है, जो अल्लाह की नाफ़रमानी से बचते और उसकी नाख़ुशी से डरते हैं और जो भले आचरण के होते हैं।" (क़ुरआन, 16:126-128)

तौहीद के दीप पर आँधियों के हमले

(1) बनी-नज़ीर का देश निकाला
(2) क़ुरैश रास्ते से ही लौट गए
(3) बनी-नज़ीर की शरारतें
(4) सत्य-धर्म के विरुद्ध सारे अरब का मतैक्य
(5) जाँनिसारों से प्यारे नबी *(सल्ल.)* की सलाह
(6) ख़न्दक़ की खुदाई
(7) दुश्मन फ़ौजें मदीना की सीमा पर
(8) इस्लामी फ़ौज अपनी चौकियों पर
(9) ख़न्दक़ पार करने की असफल कोशिशें
(10) दुश्मन फ़ौज में बेदिली
(11) बनी-क़ुरैज़ा की ग़द्दारी
(12) हज़रत सफ़िय्या *(रज़ि.)* की हैरतनाक बहादुरी
(13) हज़रत अली *(रज़ि.)* की मिसाली वीरता
(14) तूफ़ानी हमले
(15) हज़रत सअद *(रज़ि.)* की शहादत
(16) दुश्मनों में फूट
(17) बारिश और आँधी का अज़ाब
(18) दुश्मन फ़ौज में भगदड़
(19) बनी-क़ुरैज़ा का शिक्षाप्रद परिणाम

(1)

"और जो लोग अल्लाह की राह में मारे गए उन्हें मुर्दा न समझो। वे तो ज़िन्दा हैं। अपने रब के पास से रोज़ी पा रहे हैं। जो कुछ अल्लाह ने अपने फ़ज़्ल से उन्हें दिया है उस पर ख़ुश हैं और मग्न हैं कि जो ईमानवाले उनके पीछे दुनिया में रह गए हैं और अभी वहाँ नहीं पहुँचे हैं उनके लिए भी किसी ख़ौफ़ और रंज का मौक़ा नहीं।

(क़ुरआन, 3:169-170)

उहुद का दिन मुसलमानों के लिए बड़ा ही कठिन दिन था। लड़ाई रुकी तो उनके शरीर ज़ख़्मों से चूर थे। ज़ख़्मों से ज़्यादा उन्हें इस बात का मलाल था कि वे दुश्मनों की कमर न तोड़ सके। अल्लाह के दुश्मनों के मिटाने का जो मज़बूत इरादा लेकर वे निकले थे, उसमें पूरी तरह कामयाब न हुए। उन्हें इसका भी मलाल था कि उनके सत्तर क़ीमती व्यक्ति शहीद हो गए। हालाँकि वे सैंकड़ों दुश्मनों को मारकर शहीद हुए थे।

इस लड़ाई में ख़ुद प्यारे नबी सल्ल. ने न जाने कितने तीर चलाए। हद यह है कि कमान टूटकर हाथ में रह गई।
हज़रत सअद-बिन-अबी वक़्क़ास (रज़ि.) ने तो लगभग एक हज़ार तीर चलाए। वे तीर उन्हें प्यारे नबी सल्ल उठा-उठाकर दे रहे थे, साथ ही उनकी तीरअन्दाज़ी की तारीफ़ इस तरह कर रहे थे कि हर तीर उनकी तरफ़ बढ़ाते हुए कहते:

"मारे जाओ, मारे जाओ, मेरे माँ-बाप तुम पर क़ुरबान!"

हज़रत तलहा (रज़ि.) ने भी उस रोज़ बे हिसाब तीर चलाए थे। हद यह है कि कई कमानें उनके हाथ में टूट-टूटकर रह गई थीं। इनके अलावा हज़रत अबू-बक्र, हज़रत उमर, हज़रत हमज़ा, हज़रत मुसअब-बिन-उमैर, हज़रत सअद-बिन-रबीअ, हज़रत अनस-बिन-नस्र, हज़रत अली, हज़रत अबू-दुजाना, हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-ज़ुबैर, हज़रत हंज़ला-बिन-आमिर, हज़रत अबू-सुफ़ियान-बिन-हारिस (रज़ि.) और न

जाने कितने जाँनिसारों ने उस रोज़ अपनी बहादुरी और सरफ़रोशी के कैसे-2 जौहर दिखाए थे।

इस तरह यह बात तो बिल्कुल पक्की है कि इस लड़ाई में अगर मुसलमानों के 70 आदमी शहीद हुए तो मुशरिक दुश्मनों के सैंकड़ों आदमी मारे गए।

यह सब कुछ हुआ लेकिन इसके बावजूद आख़िर में दुश्मनों ने कुछ ऐसी चाल चली कि जिसने कुछ देर के लिए मुसलमानों के हौसले पस्त कर दिए। वे इस चाल से उनकी नंगी तलवारों की मार से निकल भागने में कामयाब हो गए।

दुश्मनों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* के शहीद हो जाने की अफ़वाह फैला दी। जिसकी वजह से जाँनिसारों के हाथ-पाँव ठण्डे हो गए। मुसलमानों पर बेदिली छा गई और दुश्मन प्यारे नबी तक पहुँचने और उनको ज़ख़्मी कर देने में कामयाब हो गए।

इन जाँनिसारों के लिए यह बात कितनी हृदयविदारक और कितनी दुख की थी कि उनके होते हुए उनके प्यारे नबी के मुबारक दाँत शहीद हो गए। आप *(सल्ल.)* के होंठ ज़ख़्मी हो गए और उनके मुबारक चेहरे में ख़ौद की कई कड़ियाँ घुस गईं।

अल्लाह! अल्लाह! ग़मों का कैसा हमला था इन बेचारे मुसलमानों पर! प्यारे नबी के ज़ख़्मी होने का ग़म! 70 चुने हुए क़ीमती साथियों से महरूम हो जाने का ग़म! अपने शरीर के अनगिनत ज़ख़्मों का ग़म! और फिर अधर्म के ध्वजावाहकों का ख़ात्मा न कर सकने का ग़म!

इन तरह-तरह के ग़मों ने मुसलमानों को तोड़कर रख दिया। उनके चेहरे उदास और दुखी नज़र आने लगे।

उम्मत के समझदार और विवेकी तथा मानवता के शिक्षक पैग़म्बर मुहम्मद *(सल्ल.)* ने हालात की गम्भीरता को फ़ौरन महसूस किया और उन टूटे हुए दिलों को सहारा देना ज़रूरी समझा।

नबी *(सल्ल.)* ने यह ज़रूरी समझा कि उनके दिल और दिमाग़ों से नाकामी का एहसास दूर करके उन्हें महान विजय और खुली विजय के एहसास से भर दिया जाए।

इसका इलाज प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यह सोचा कि मुशरिक दुश्मनों के लश्कर का पीछा किया जाए। अगर वे हाथ आ जाते हैं तो जो कसर बाक़ी रह गई है वह पूरी हो जाएगी। और अगर वे भाग जाते हैं तो यह

चीज़ ख़ुद साबित कर देगी कि हारा हुआ कौन है और जीता हुआ कौन?

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने ग़म और मलाल में डूबे हुए साथियों को ललकारा!

"भागे हुए दुश्मनों का पीछा करना है और बस उन्हीं को करना है जो उहुद की लड़ाई में शरीक रहे।"

उधर अबू-सुफ़ियान का हाल यह था कि वे मुसलमानों से पहले ही जंग के मैदान से भाग खड़ा हुआ। वह बहुत ही घबराहट और बदहवासी की हालत में वहाँ से चल दिया।

जब वह मदीना से इतनी दूर निकल आया कि उसके विचार में अब मुसलमानों से कोई ख़तरा नहीं रहा तब उसने इत्मीनान की साँस ली और यह इरादा किया कि यहाँ ठहर कर कुछ दम ले लें। अपने ज़ख़्मों की मरहम पट्टी कर लें। फिर इत्मीनान से मक्के का सफ़र करें।

अभी वह अपने ख़ेमे भी नहीं लगवा सका था कि उसे सूचना मिली कि मुस्लिम फ़ौज उसका पीछा कर रही है। वह एक बिफरे हुए तूफ़ान की तरह उसका पीछा कर रही है। वह आ रही है ताकि उसका नशा उतार दे। उसकी और उसकी फ़ौज की जो रही-सही इज़्ज़त है उसे मिट्टी में मिला दे।

यह सूचना मिलनी थी कि अबू-सुफ़ियान ने अपनी फ़ौज को फ़ौरन वहाँ से कूच करने का आदेश दिया। और बहुत तेज़ी से वहाँ से भाग चला। इस भय से कि यदि फिर से मुक़ाबला हो गया तो शायद उनमें से कोई बचकर न जा सकेगा। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हमराउल असद तक उसका पीछा किया। यह एक स्थान है जो मदीना से आठ मील पर स्थित है। वहाँ पहुँचकर आप *(सल्ल.)* तीन दिन ठहरे। ये तीन दिन इस तरह गुज़रे कि दिन भर प्यारे सहाबा लकड़ियाँ जमा करते और रात में अधिकतर सहाबी अपनी अलग-अलग आग जलाते।

लगातार तीन रातें ऐसी गुज़रीं कि पाँच सौ जगहों पर आग रौशन की जाती रही, जो मीलों से नज़र आती।

इस तरह मदीना से लेकर मक्का तक बल्कि पूरे अरब में यह बात फैल गई कि मुस्लिम फ़ौज ने हमराउल-असद तक दुश्मन फ़ौज का पीछा किया और दुश्मन फ़ौज बदहवासी की हालत में वहाँ से भाग खड़ी हुई।

इधर मुसलमानों पर इसका असर यह हुआ कि उनके हौसले बुलन्द

हो गए। उन्हें अपनी नाकामी का जो एहसास था वह विजय और सफलता के एहसास में बदल गया।

अल्लाह! अल्लाह! अल्लाह के रसूल *(सल्ल)* की यह यह तदबीर! यह सूझ-बूझ! यह दूरदर्शिता! किस समय? जबकि आप *(सल्ल.)* थक कर चूर हैं। ज़ख़्मों से निढाल हैं। नाकामी का भी दुख है और फिर 'मुसला' (हाथ-पैर, नाक-कान काटने) का दिल दहलानेवाला दृश्य भी सामने है।

उहुद की लड़ाई से कुछ इत्मीनान हुआ तो अब प्यारे नबी *(सल्ल.)* को तरह-तरह के फ़ितनों का सामना था। कई क़बीलों ने आपके साथ ग़द्दारी कर दी। मजबूरन आपको उनसे भी निपटना पड़ा। इस सिलसिले में झड़पें भी हुईं। कहीं तो जीत हुई और काफ़ी माल-दौलत हाथ लगी। लेकिन कहीं जानों का नुक़सान हुआ। उनमें एक घटना सबसे ज़्यादा मशहूर है। वह है बनी-नज़ीर क़बीले की जिलावतनी (निर्वासन) की घटना। बनी-नज़ीर यहूदियों का क़बीला था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* का इससे समझौता था, लेकिन उसने ग़द्दारी की। आप *(सल्ल.)* इस सिलसिले में उनसे बात-चीत करने उनके यहाँ गए। उन्होंने आप *(सल्ल.)* को धोखे से मार डालने की साज़िश की। वह इस तरह कि आप (सल्ल.) एक दीवार से टेक लगाए बैठे थे। उन्होंने कुछ आदमियों को भेजा कि ऊपर से कोई भारी पत्थर गिरा दें। लेकिन आपको वह्य के ज़रीए से इसका पता चल गया। आप *(सल्ल.)* तुरन्त वहाँ से उठकर चल दिए। बाद में आपने उस क़बीले को मदीना की आबादी से निकल जाने का आदेश दिया। किन्तु वे तो अपनी ताक़त के नशे में थे। आदेश मानने से उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया। मुसलमानों ने उनका घिराव कर लिया। अन्ततः उन्होंने घुटने टेक दिए। आधकतर लोग तो मदीना से निकलकर ख़ैबर चले गए, जो मदीना से सौ मील के फ़ासले पर है और कुछ लोग शाम की तरफ़ निकल गए। निकलने को तो वे निकल गए, लेकिन आपसे उन्हें बैर हो गया। अब वे हाथ धोकर आपके पीछे पड़ गए। वे क़बीलों में जा-जाकर आप *(सल्ल.)* के विरुद्ध ज़हर उगलने लगे।

क़ुरैश ने उहुद से वापस होते हुए धमकी दी थी और शेख़ी में आकर कहा था, "मुसलमानो! अगले साल बद्र में फिर हमारा तुम्हारा मुक़ाबला है।" वह समय अब उनके सिर पर आ गया। हिम्मत तो थी नहीं। अपने कहे पर बड़ा पछतावा हुआ। यों ही बैठे रहें, यह भी उनके

लिए बदनामी की बात थी। इस तरह तो इज़्ज़त पर आँच आने की आशंका थी। हर तरफ़ बुज़दिली की चर्चा हो जाने का डर था। अब उन्होंने एक चाल चली। मुसलमानों में अपने आदमी भेजने शुरू कर दिए कि उनपर क़ुरैश की ताक़त का रौब बिठाएँ, जो उनके फ़ौजी लश्कर और साज़ो-सामान को बढ़ा-चढ़ाकर बयान करें, ताकि मुसलमनों में भय और आतंक फैल जाए। उनमें लड़ाई से बेदिली पैदा हो जाए। लेकिन आप *(सल्ल.)* उनकी बातों में कब आनेवाले थे। आपकी हिम्मत तनिक भी डाँवाडोल नहीं हुई। अपने फ़ैसले पर आप *(सल्ल.)* मज़बूती से क़ायम रहे। आपने तय कर लिया कि उस दिन मैदान में पहुँचना है, जिस ताक़त पर उन्हें घमण्ड है उसे चूर-चूर करना है।

वह दिन आ गया। आप *(सल्ल.)* ने साथियों के साथ बद्र का रुख़ किया। उसी मौसम में वहाँ हर साल बाज़ार भी लगता था। साथियों ने कारोबार के लिए कुछ सामान भी साथ ले लिया। वहाँ पहुँचे तो क़ुरैश का कहीं दूर दूर तक पता न था। बहादुर मुसलमान वहाँ ठहर कर उनका इन्तिज़ार करने लगे।

शर्म और स्वाभिमान की बात थी। क़ुरैश को बहरहाल अपनी लाज रखनी थी। इसलिए मुक़ाबले में निकले बिना कोई रास्ता न था। लेकिन बुरी तरह हार जाने का भी उन्हें ख़तरा था। इसलिए दिल किसी तरह राज़ी न था। फिर भी हिम्मत करके वे निकले। दो दिन तक बद्र की ओर बढ़ते रहे। फिर भय से पाँव उखड़ने लगे। आगे बढ़ना नामुमकिन हो गया।

अबू-सुफ़ियान फ़ौज का कमाण्डर था। उसने कहा, "भाइयो! यह साल तो सूखे का है। लड़ाई-भिड़ाई तो ख़ुशहाली में होती है। भला इसी में है कि हम मक्का लौट चलें। लो मैं तो चला।" सरदार के बाद कौन टिकटा है। पूरी फ़ौज मक्का वापस हो गई।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* बद्र में आठ दिन तक इन्तिज़ार करते रहे। बद्र में बाज़ार तो लगा ही था। सामान भी साथ था। मुसलमान कारोबार में लग गए। अल्लाह ने ख़ूब बरकत भी दी। आठ दिन गुज़र गए, लेकिन क़ुरैश का कोई पता न था। अब आप *(सल्ल.)* साथियों को लेकर मदीना लौट पड़े। रास्ते में दुश्मन की बुज़दिली और पस्त हिम्मती की बातें होती रहीं। मुसलमान अल्लाह के बेशुमार एहसानात को याद करते। अल्लाह

की तारीफ़ और शुक्र से उनके सीने उमड़ने लगते। मुख से उसका गुणगान करते।

(2)

क़ुरैश अब मुसलमानों का लोहा मान चुके थे। उनकी ताक़त और हिम्मत से सहम चुके थे। वे समझ चुके थे कि उनसे टक्कर लेना बड़े बल-बूते का काम है। बनू-नज़ीर क़बीला आप *(सल्ल.)* से जला हुआ तो था ही, उसके सरदार क़ुरैश के पास गए। उन सरदारों में हुई-बिन-अख़तब भी था। सलाम-बिन-अबिल-हुक़ैक़ भी था। उन लोगों ने पहुँच कर क़ुरैश को जोश दिलाया। उनको आप *(सल्ल.)* से युद्ध करने पर उभारा। उन्होंने कहा, "डरना किसका? हम तो तुम्हारे साथ हैं। हम तो मुहम्मद को मार कर ही दम लेंगे। इसी का तो तुमसे समझौता करने आए हैं।"

यह सुना तो क़ुरैश में एक नया जोश उभरा। एक नया वलवला पैदा हुआ। सोई हुई भावनाएँ फिर जाग उठीं। उन्होंने यहूदियों की ख़ूब ख़ातिर की। फिर ख़ुशी से फूल कर कहा—

"वाह! क्या ख़ूब आए। हमें वही लोग तो पसन्द हैं, जो मुहम्मद के दुश्मन हैं और उसको मिटा देने पर तुले हैं।"

इसके बाद क़ुरैश ने कहा, "भाइयो! तुम्हारे पास पहले से ख़ुदा की किताब मौजूद हैं। मुहम्मद से हमारा जो मतभेद है, उससे भी तुम बेख़बर नहीं। तनिक बताओ तो, हमारा धर्म अच्छा है या मुहम्मद का?" उन झूठे बदक़िस्मतों ने कहा—

"तौबा करो, तुम्हारे धर्म से उसके धर्म का क्या मुक़ाबला! कहाँ सच, कहाँ झूठ! कहाँ सत्य, कहाँ असत्य।"

इस प्रकार यहूदी चिकनी-चुपड़ी बातें करते रहे। क़ुरैश को झूठे-झूठे बहलावे देते रहे। क़ुरैश फूले न समाए। तुरन्त उनके धोखे में आ गए और जोश में आकर कहा, "जब तक जान में जान है, मुहम्मद से हमारी लड़ाई है। मुहम्मद का दीन फूले-फले यह कभी नहीं हो सकता। मुहम्मद से दुनिया को पाक करना है। उसके दीन का नामो-निशान मिटाना है।"

अब लड़ाई का फ़ैसला हो गया। दिन-तारीख़ भी तय हो गई। यहूदियों ने क़ुरैश ही में आग लगाने पर बस न किया, बल्कि वे अरब के दूसरे क़बीलों में भी गए। वहाँ भी फ़ितने के बीज डाले। ख़ूब धुआँ-धार

भाषण दिए। लोगों को इस ख़तरे से चौकन्ना किया। वे ग़तफ़ान क़बीले में गए। वहाँ लोगों को सब्ज़ बाग़ दिखाए। लालच दिलाते हुए उन्होंने कहा, "ख़ैबर की आधी पैदावार तुम्हें दिया करेंगे। तुम इस लड़ाई में हमारा साथ दो।"

इसी प्रकार वे अन्य क़बीलों के पास गए। बनी-सुलैम के पास गए। बनी-असद और बनी-फ़ुज़ारा के पास गए। बनी-अशजा और बनी-मुर्रा के पास भी गए। इन सबको नए दीन से होशियार किया। अपने धर्म के लिए कट मरने पर उभारा और ख़ूब सब्ज़ बाग़ भी दिखाए।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* के विरुद्ध अब सारा अरब एक था। क्या मुशरिक क्या यहूदी सबको एक ही जुनून था। सारे शैतानी इरादे औद नापाक हौसले अब इस्लाम का दीप बुझा देने पर सहमत थे। आप *(सल्ल.)* की ओर एक भारी लशकर बढ़ा। लशकर क्या था, आदमियों का एक ठाठें मारता हुआ समुद्र था। दस हज़ार ख़ून के प्यासे थे, जो हथियारों में डूबे हुए थे।

ऐ मुहम्मद! अल्लाह आपके साथ है। वह आपकी मदद भी कर सकता है और दुश्मनों को तबाह भी कर सकता है।

आप *(सल्ल.)* को बराबर ख़बरें मिलती रहीं कि पूरा अरब आप से नाराज़ है। हर तरफ़ से आप पर बाढ़ की तरह उमड़ा आ रहा है कि मदीना को तहस-नहस कर दे और दुनिया से मुसलमानों का नामोनिशान मिटा दे। उफ़ ख़ुदा की पनाह......! जिस लश्कर के पीछे अरब की पूरी ताक़त हो, प्यारे नबी *(सल्ल.)* उसका मुक़ाबला कैसे कर सकेंगे? उसकी तबाहियों से सुरक्षित रहने की क्या तरकीब करेंगे? उसकी बरबादियों का तूफ़ान कैसे रोकेंगे?

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अपने साथियों को जमा किया। उनसे मशवरा किया। सब लोगों ने यही कहा, "बाहर न निकला जाए। मदीना में रहकर ही मुक़ाबला किया जाए।" बराबर ख़बरें मिलती रहीं। हज़रत सलमान फ़ारसी ईरान के रहनेवाले थे। वहाँ के लड़ाई सम्बन्धी कुछ तरीक़े भी जानते थे। उन्होंने कहा, "खुले मैदान में निकल कर मुक़ाबला करना ठीक नहीं। एक सुरक्षित स्थान पर लशकर जमा हो और इर्द-गर्द खाई खोद ली जाए।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को यह राय बहुत पसन्द आई। आप *(सल्ल.)* उसी समय एक घोड़े पर सवार हुए। कुछ मुहाजिरों और अनसार को साथ लिया। घूम-फिर कर मदीना के हालात का जायज़ा किया। खाई खोदने के लिए मुनासिब जगह निशिचित की और आदेश दिया कि जितनी जल्द मुमकिन हो यह काम शुरू हो जाए। तुरन्त मुसलमान इस काम में जुट गए। जल्दी-जल्दी कुदाल—फावड़ों का प्रबन्ध हुआ। बनी-क़ुरैज़ा के यहूदियों से मुसलमानों का पहले से समझौता था, इसलिए खुदाई के बहुत से सामान वहाँ से आ गए।

मदीना तीन तरफ़ से पहाड़ों और खजूर के पेड़ों से घिरा हुआ था और सिर्फ़ एक तरफ़ से खुला हुआ था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* साथियों के साथ शहर से बाहर निकले और उसी तरफ़ खाई खोदने की तैयारियाँ शुरू कर दीं। खुदाई का नक़्शा आपने स्वयं बनाया। फिर दस-दस आदमियों पर बीस-बीस मीटर ज़मीन बाँट दी। काम करनेवालों में आप *(सल्ल.)* खुद भी शरीक थे। आपको अपने साथ काम करते देखकर सच्चे साथियों में और जोश पैदा होता और वे बेख़ुद होकर काम करने में लगे रहते। जाड़ों की रातें थीं। तीन-तीन दिन का फ़ाक़ा था। बहादुर मुसलमान इसी हालत में खुदाई करते। पीठों पर मिट्टी लाद-लादकर 'सलअ' पहाड़ के पास फेंकते और उधर से पत्थर ढो-ढोकर लाते और खाई के किनारे पर चुनते जाते कि ज़रूरत पड़ने पर दुश्मन पर बरसाने के काम आएँ।

तीन हज़ार पवित्र हाथ खाई खोदने में व्यस्त थे। जोश की यह हालत थी कि भूख-प्यास तक भूले हुए थे। नौ या दस दिनों की अनथक कोशिशों में यह काम पूरा हो गया। खाई खुदकर तैयार हो गई, जिसकी लम्बाई लगभग 6 हज़ार मीटर थी चौड़ाई लगभग 5 मीटर और गहराई 4 या 5 मीटर थी। अब मदीना महफ़ूज़ था। मदीना ही से मिली हुई एक पहाड़ी है, जो सलअ पहाड़ के नाम से जानी जाती है। दोनों के बीच एक लम्बा चौड़ा मैदान था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने अपनी फ़ौज को उसी मैदान में ठहराया।

मदीना का बच्चा-बच्चा जोश से बेख़ुद था। फ़ौज रवाना हुई तो बाप-भाइयों के साथ नव-उम्र बच्चे भी हो लिए। फ़ौज मैदान में पहुँची तो आप *(सल्ल.)* ने जायज़ा लिया। जो पन्द्रह वर्ष से ज़्यादा उम्र के थे,

उन्हें शरीक होने की इजाज़त दे दी, जो उससे कम थे, उन्हें शाबाशी दी और समझा-बुझा कर वापस कर दिया।

हिजरत का पाँचवाँ साल था। शव्वाल का महीना था। दुश्मन फ़ौज के अग्रगामी दस्ते अब मदीना के निकट दिखाई देने शुरू हो गए। अबू-सुफ़ियान को उम्मीद थी कि मुहम्मद *(सल्ल.)* उहुद पर मिलेंगे। जब आप वहाँ न मिले तो उसने फ़ौज को मदीना की ओर बढ़ाया। मदीना के निकट पहुँचकर उसने पड़ाव डाल दिया। ग़तफ़ान और कुछ दूसरे क़बीले उहुद के पास ठहरे।

दुश्मन फ़ौज की टोलियाँ मदीना की तरफ़ चलीं कि मुसलमानों का कुछ हाल मालूम हो। जब वे वहाँ पहुँचीं तो एक नई चीज़ देखी। ऐसी चीज़ जिसका ज़रा भी ख़याल न था......! उनको बड़ा ताज्जुब था। यह क्या, यह तो खाई है......! मदीना की रक्षा के लिए खाई खुदी है!! तो क्या हमारा लश्कर उस पार न जा सकेगा? जिसके लिए इतना यत्न किया गया है। इतने पापड़ बेले गए हैं। क्या यह काम न हो सकेगा? क्या यह सारा खेल बिगड़ जाएगा? क्या मुहम्मद ज़िन्दा बच जाएगा?

टोलियाँ लौटकर फ़ौज में आईं। लोगों को यह 'अशुभ' ख़बर सुनाई। जिसने सुना दंग रह गया। "अल्लाह की क़सम यह तो बिलकुल नई चाल चली गई है। अरब में तो कभी इसका चलन था नहीं।"

मुसलमानों को मालूम हो गया कि दुश्मन आ गए हैं। वे अपनी चौकियों पर होशियार हो गए। सलअ पहाड़ के दामन में एक ख़ेमा लगाया गया, जिसका रंग लाल था। नबी *(सल्ल.)* उसमें गए। वहाँ बैठकर लड़ाई का नक़्शा बनाया। इस्लामी फ़ौज तीन हज़ार की तादाद में थी। उसको आपने कई हिस्सों में बाँट दिया। कुछ टोलियाँ खाई की देख-भाल पर मुक़र्रर हुईं। खाई के जिन हिस्सों पर आशंका अधिक थी, वहाँ भी कुछ लोगों को पहरे पर लगाया। बाक़ी दुश्मन के मुक़ाबले में पंक्तिबद्ध हुईं। इन लोगों का रुख़ खाई की ओर था, तीर कमान हाथों में थे।

अब दोनों फ़ौजें आमने-सामने थीं। क़ुरैश ने बहुत कोशिश की कि खाई पार कर लें, लेकिन वे असफल रहे। बहादुर मुसलमानों ने इस तरह तीर बरसाए कि उनसे कुछ न बन पड़ा। मजबूरन उन्हें पीछे हटना पड़ा। अब उन्होंने खाई के उस पार से तीरों की बौछार शुरू कर दी। इसी प्रकार शाम हो गई और वे अपने ठिकानों पर चले गए। सुबह हुई तो

क़ुरैश ने फिर खाई पार करने की कोशिश की। लेकिन उस दिन भी वे असफल रहे। अब वे ग़ुस्से से बौखला गए। तिलमिलाते रहे और होंठ चबाते हुए वापस चले गए। उन्हें अब यक़ीन हो गया कि हमारा सारा किया धरा बेकार गया। उस समय आँधी तूफ़ान भी ज़ोरों पर था। सर्दी भी बला की थी, जिसकी वजह से देह कटी जा रही थी और रगों में ख़ून जमा जा रहा था। इसलिए वे ग़ुस्से से और भी बौखलाए हुए थे।

मुसलसल नाकामी और फिर मौसम की सख़्ती! क़ुरैश की फ़ौज में बेदिली फैल गई। जिसे देखो यही कह रहा था, "मुहम्मद पर अब क़ाबू कैसे पाया जा सकता है?"

हुई-बिन-अख़्तब ने यह हाल देखा तो बहुत डरा। उसने फ़ौज जमा करने के लिए अनथक कोशिश की थी। न जाने किन-किन मुसीबतों से सारा इन्तिज़ाम किया था। वह घबरा उठा। सोचने लगा कि अगर फ़ौज में यों ही बेदिली फैली रही और सिपाहियों के हौसले पस्त होते गए तो क्या होगा? तब सारी कोशिश मिट्टी में मिल जाएगी। इसके लिए तो तुरन्त कुछ करना चाहिए। वह दौड़ा हुआ अबू-सुफ़ियान के पास आया और उससे कहा, "मेरी क़ौम बनी-क़ुरैजा भी तुम्हारे साथ है और उनकी ताक़त का हाल भी तुम्हें मालूम ही है।" अबू-सुफ़ियान बोला, "तो देर न करो। जल्द दौड़कर जाओ, उनसे कहो कि मुहम्मद से समझौता तोड़ दें।"

हुई तेज़ी से बनी-क़ुरैज़ा की ओर लपका कि किसी तरह फुसला कर उन्हें ग़द्दारी पर तैयार कर ले और उन्हें अपने साथ ले आए।

बनी-क़ुरैज़ा के सरदार को मालूम हो गया। उसी ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* से समझौता किया था। तुरन्त उसने क़िले का दरवाज़ा बन्द कर लिया और हुई से मिलना तक पसन्द न किया। वह भाँप गया था कि हुई क्यों आ रहा है। हुई पहुँचा तो उसने आवाज़ दी। क़सम दे-देकर दरवाज़ा खोलने के लिए कहा। जोश दिलाने के लिए उसने यह भी कहा—

"मुझे मालूम है तुमने क्यों दरवाज़ा बन्द किया है। तुम्हें डर है कि कहीं मैं भी प्याले में शरीक न हो जाऊँ।"

क़अब-बिन-असद को शर्म आ गई। उसने दरवाज़ा खोल दिया। हुई बोला—

"वाह रे कअब! देखो तो मैं तुम्हारे लिए कितनी बड़ी इज़्ज़त और

नेक नामी लेकर आया हूँ। फ़ौजों का एक समुद्र लाया हूँ, ठाठें मारता समुद्र! सारा अरब उमड़ आया है। क़ुरैश और ग़तफ़ान के भी सब सरदार आए हैं। सब एक मुहम्मद के ख़ून के प्यासे हैं। सब ने तय किया है कि काम तमाम किए बग़ैर यहाँ से टलेंगे नहीं।"

कअब ने कहा, "ख़ुदा की क़सम, तुम मेरी नाक कटवाना चाहते हो। मैं तो मुहम्मद से समझौता कर चुका हूँ। अब समझौते की ख़िलाफ़वर्ज़ी मुझसे न होगी। मुहम्मद ने हमेशा मेरे साथ समझौते को निभाया है।"

हुई अब भी निराश न हुआ। वह बार-बार कअब के अभिमान को भड़काता रहा। उसने कहा, "आज पूरी क़ौम की लाज रखना तुम्हारे हाथ में है। उसकी इज़्ज़त भी तुम्हारे ही हाथ में है। अब तुम भी सोच लो। देखो यह अवसर हाथ से खोने का नहीं। बेझिझक तुम मुहम्मद का समझौता तोड़ दो और फ़ौजों को रास्ता दे दो। वे बाढ़ की तरह बढ़ेंगी और मिनटों में मुहम्मद और उसकी फ़ौज को हलाक कर देंगी। फिर पूरे अरब पर हमारा असर होगा। अपने धर्म के लिए भी रास्ता साफ़ हो जाएगा। मदीना की सारी दौलत और जायदाद पर भी हमारा क़ब्ज़ा हो जाएगा।"

इस बार का वार बेकार न गया। इस बार हुई का जादू चल गया। कअब अपनी इनसानियत की बलि देने पर राज़ी हो गया। लेकिन अभी वह हिचकिचा रहा था। ग़द्दारी का बुरा अंजाम उसे सता रहा था। वह सोचने लगा कि, 'कहीं अगर क़ुरैश और ग़तफ़ान हार गए तो क्या होगा? वे लोग तो अपना रास्ता पकड़ेंगे और मैं अकेला रह जाऊँगा, फिर तो मेरी बुरी गत बनेगी। बनू-नज़ीर और बनू-क़ैनुक़ाअ की तरह मैं भी ज़लील हो जाऊँगा।' लेकिन जल्द ही यह आशंका भी दूर हो गई। हुई ने कहा, "ख़ुदा न करे, हम हार गए और क़ुरैश मैदा छोड़कर भाग निकले तो मैं ख़ैबर छोड़ दूँगा और यहीं आकर तुम्हारे साथ रहूँगा। जो कुछ सामने आएगा तुम्हारे साथ मैं भी झेलूँगा। कअब को अब बिलकुल इत्मीनान हो गया। वह ग़द्दारी करने के लिए तैयार हो गया।

हुई ख़ुश-ख़ुश कामियाबी के साथ फ़ौज में पहुँचा। वहाँ लोगों को यह ख़ुशख़बरी सुनाई। उसे अब यक़ीन था कि जीत हमारे हाथ में है। अब सिर्फ़ इतनी ही देर है कि बनू-क़ुरैज़ा तैयार हो लें।

बनू-क़ुरैज़ा की ग़द्दारी की ख़बर हवा की तरह फैल गई। यह ख़बर मुसलमानों पर बिजली बन कर गिरी। मुसलमानों के लिए यह एक नए ख़तरे की घण्टी थी। अब उनका लश्कर भी ख़तरे में था शहर भी और सामान पहुँचाने के लिए अब कोई रास्ता न था। दुश्मन का ख़तरा भी बढ़ गया था, क्योंकि हमले के लिए एक नया रास्ता खुल गया था। इस रास्ते से दुश्मन के लिए शहर में घुसना बिलकुल आसान हो गया था।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हक़ीक़त का पता लगाने के लिए हज़रत ज़ुबैर-बिन-अव्वाम को दौड़ाया। वे पहुँचे तो वहाँ बड़ी धूम-धाम थी। एक अनोखा जोश और उत्साह था। हर एक लड़ाई की तैयारी में व्यस्त था। आप *(सल्ल.)* ने इत्मीनान के लिए फिर उसैद-बिन-हुज़ैर, सअद-बिन-उबादा *(रज़ि.)* और सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* को भेजा कि बनी-क़ुरैज़ा के सरदार से मिलकर बात करें। सअद-बिन-उबादा *(रज़ि.)* ख़ज़रज के सरदार थे और सअद-बिन-मुआज़ औस के। ये बनी-क़ुरैज़ा के सन्धि-मित्र भी थे। उन दोनों से आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "अगर ख़बर सही हो तो आकर चुपके से बताना, ताकि मुसलमानों में बेदिली न फैले, वरना ऊँची आवाज़ से एलान कर देना।"

ये लोग वहाँ पहुँचे तो बहुत असफ़सोसनाक हालत देखी। वे लोग बेवफ़ाई और ग़द्दारी का फ़ैसला कर चुके थे। सरदार की हालत सबसे ज़्यादा शर्मनाक थी। वह पूरी निडरता से आप *(सल्ल.)* की बेअदबी कर रहा था। उस अभागे ने यहाँ तक कहा : "कौन है, अल्लाह का रसूल?! मुहम्मद से हमारा कोई समझौता नहीं।"

बहादुर मुसलमानों को जोश आ गया। हालत बड़ी नाज़ुक हो गई। क़रीब था कि झगड़ा खड़ा हो जाए। हज़रत सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* ने अपने साथी को सँभाला और यह कहते हुए चल दिए, "यह क्या है? हमारे और इनके सम्बन्ध तो इससे भी ज़्यादा बिगड़ चुके हैं।"

दोनों बहादुर लौटकर आप *(सल्ल.)* की सेवा में आए और चुपके से आपको स्थिति बता दी, लेकिन यह ख़बर छिपनेवाली कब थी? सारी फ़ौज में इसकी चर्चा हो गई। मदीना में हर तरफ़ यह बात फैल गई। सब पर बेदिली छा गई। हर तरफ़ नाउम्मीदी फैल गई। जिसे देखिए यही कह रहा था कि खाई तो ख़ूब तैयार हुई, लेकिन अब खाई से क्या होता है? अब तो बनी-क़ुरैज़ा के क़िले से हमला होगा। हाय......! अब क्या

बनेगा?

अब घेराव बहुत सख़्त था। इसी हाल में कई दिन बीत गए। दुश्मन मदीना के इर्द-गिर्द घेरा डाले रहे। यह बड़ा ही कठिन समय था। मुसलमानों पर कई-कई फ़ाक़े गुज़र गए। जिन्हें सहन न करके वे बिलबिला उठे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* को आशंका हुई कि कहीं साथी हिम्मत न हार जाएँ। आप *(सल्ल.)* ने ग़तफ़ान के पास एक आदमी भेजा कि अगर तुम लोग युद्ध न करो और वापस चले जाओ तो मदीना की तिहाई पैदावार तुमको देंगे। ग़तफ़ान ख़ुशी से मान गए। बात पक्की करने के लिए अपने आदमी भेजे। मगर वे तिहाई पर तैयार न थे। उन्होंने आधी पैदावार की माँग की। अबू-सुफ़ियान इन बातों से बिलकुल बेख़बर था। आप *(सल्ल.)* ने सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* और सअद-बिन-उबादा *(रज़ि.)* को बुलाया। उनसे सलाह की। सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* ने कहा :

"अल्लाह के रसूल! अगर यह ख़ुदा का हुक्म है तो इनकार का सवाल ही नहीं। अगर आपकी इच्छा है, तब भी स्वीकार और अगर यह इरादा हम लोगों के ख़याल से हो तो कुछ अर्ज़ करूँ।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया "ऐसा तो तुम लोगों के लिए ही कर रहा हूँ। मैंने सोचा, इस तरह दुश्मन का दबाव कुछ कम हो जाएगा।"

सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* ने कहा—

"जब हम अधर्मी थे, तब तो कोई हमसे कुछ न ले सका। अब तो आपकी बरकत से हमारा दर्जा और ऊँचा हो गया है। उनके लिए हमारे पास अब सिर्फ़ तलवार है।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यह हिम्मत देखी तो आपको इत्मीनान हुआ और ग़तफ़ान से समझौता करने का इरादा छोड़ दिया और उनके आदमी वापस चले गए।

ग़तफ़ान क़बीले का एक रईस था। उसका नाम था नुऐम-बिन-मसऊद। वह अन्दर ही अन्दर मुसलमान हो चुका था। मगर क़बीलेवालों को ख़बर न थी। वह छिपकर रात में आप *(सल्ल.)* के पास आया और अपने मुसलमान होने की ख़ुशख़बरी सुना कर बोला—

"अल्लाह के रसूल! मेरे इस्लाम क़ुबूल करने की किसी को ख़बर नहीं। आप जो चाहें मुझ से काम लें।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "नुऐम! इस तरह के तुम अकेले आदमी हो, जिस तरह हो सके, यह मुसीबत दूर करो। इसके लिए तुम जो चाहो करो, तुम्हें इजाज़त है।"

नुऐम अब वापस गए और सोचने लगे कि क्या करूँ? किस प्रकार दुश्मन में फूट डालूँ? किस प्रकार उनके नापाक इरादों को नाकाम करूँ?

दुश्मनों में अब एक नया जोश था। उनके हौसले पहले से कहीं ज़्यादा बुलन्द थे। उन्हें सर्दी की सख़्ती की ज़रा फ़िक्र न थी। खाई की भी कोई परवाह न थी, क्योंकि अब बनी-क़ुरैज़ा उनके साथ थे। अब दिल के अरमान निकालना आसान था।

पैदल फ़ौज तीन हिस्सों में बँटी हुई थी। वह हर तरफ़ से इस्लामी फ़ौज को घेरे हुए थी कि वे कहीं आ-जा न सकें और बेबस होकर रह जाएँ। सवार फ़ौज इधर-उधर फिर रही थी और मुसलमानों पर बेदर्दी से तीर बरसा रही थी।

मुसलमान बड़े परेशान थे। वे बिलकुल घिर कर रह गए थे। डर और बेचैनी अलग थी। दिन-रात यहूदियों का ख़तरा था। यह ख़तरा दुश्मन के ख़तरे से बढ़कर था। औरतें और बच्चे शहर के एक क़िले में थे। बनी-क़ुरैज़ा से ख़तरा था कि कहीं वे रात में उनपर हमला न कर दें। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कुछ आदमियों को इस काम पर लगाया कि रात भर मदीना में घूम-फिर कर पहरा दें।

यहूदियों ने ग़द्दारी की तो मुसलमानों की ख़बरें जानने की भी उन्हें फ़िक्र हुई। वे चाहते थे कि कमज़ोर जगहें मालूम हो जाएँ, ताकि हमला करने में आसानी हो और नाकामी का मुँह न देखना पड़े। यहूदियों की एक टोली इसी मक़सद से निकली। मुसलमानों को इसका पता चल गया। उन्होंने यहूदियों का पीछा किया तो वे भाग निकले।

औरतें और बच्चे जिस क़िले में थे, वह क़िला बनी-क़ुरैज़ा के निकट ही था। बनी-क़ुरैज़ा ने सोचा कि मुसलमान तो फ़ौजों का मुक़ाबला कर रहे हैं। मौक़ा है, क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया जाए। एक यहूदी क़िले तक आ गया। चारों तरफ़ चक्कर लगाने लगा। क़िले में हज़रत सफ़िय्या *(रज़ि.)* भी थीं। ये आप *(सल्ल.)* की फूफी थीं। उनकी नज़र उस यहूदी पर पड़ गई। औरतों की हिफ़ाज़त के लिए हज़रत हस्सान *(रज़ि.)* मुक़र्रर थे। वही हज़रत हस्सान—*(रज़ि.)* जो बहुत अच्छे कवि थे। प्यारे नबी *(सल्ल.)* की

तरफ़ से दुश्मनों का जवाब दिया करते थे। यहूदी को देखकर हज़रत सफ़िय्या *(रज़ि.)* घबराईं और हज़रत हस्सान *(रज़ि.)* से बोलीं–

"देखिए, यह यहूदी यहाँ घूम रहा है। जल्दी से उतर कर उसे क़त्ल कर दीजिए, वरना यह जाकर दुश्मनों को पता दे देगा। मुसलमान तो लड़ाई में फँसे हुए हैं। अगर यह बच निकला तो मुसीबत आ जाएगी।"

हज़रत हस्सान *(रज़ि.)* कुछ हिम्मत के कच्चे थे। बोले–

"अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी! अल्लाह मुझे माफ़ करे!! तुझे मालूम है मैं इस काम का आदमी नहीं!"

अब और कोई सूरत न थी। हज़रत सफ़िय्या *(रज़ि.)* ने ख़ेमे का एक बाँस उखाड़ा चुपके-चुपके नीचे उतरीं। जाकर यहूदी के सिर पर इतने ज़ोर से मारा कि उसका सिर फट गया।

लौटकर वे क़िले में आईं और हज़रत हस्सान *(रज़ि.)* से बोलीं– "वह मर्द है, मैंने उसे हाथ लगाना अच्छा नहीं समझा। जाइए, उसके हथियार और कपड़े उतार लाइए।"

हज़रत हस्सान *(रज़ि.)* ने कहा–

"अब्दुल-मुत्तलिब की बेटी! जाने भी दो। मुझे उसकी चीज़ों की कोई ज़रूरत तो है नहीं।"

हज़रत सफ़िय्या *(रज़ि.)* ने कहा, "अच्छा जाइए, उसका सिर काटकर मैदान में फेंक दीजिए, ताकि यहूदी भयभीत हो जाएँ।" हज़रत हस्सान *(रज़ि.)* इसके लिए भी तैयार न हुए। मजबूरन यह काम भी हज़रत सफ़िय्या *(रज़ि.)* को ही करना पड़ा। यहूदी समझे कि मालूम होता है, क़िले में भी कुछ फ़ौज है। फिर उन्हें हमला करने का साहस न हुआ।

जैसे-जैसे दिन गुज़र रहे थे, हालात सख़्त होते जा रहे थे। फ़ाक़े पर फ़ाक़े हो रहे थे। रातों को सोना हराम था। हर क्षण जान का ख़तरा था। इस्लामी फ़ौज में मुनाफ़िक़ (कपटाचारी) भी मौजूद थे। ऐसे में वे भला कहाँ छिप सकते थे। वे आ-आकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* से इजाज़त माँगने लगे कि हमारे घर सुरक्षित नहीं। बाल-बच्चे ख़तरे में हैं। हमें शहर जाने दीजिए। स्वयं तो वे लौटना चाहते ही थे, साथ ही मुसलमानों को भी बहकाते। उनको जान का भय दिलाते। प्यारे नबी *(सल्ल.)* से बदगुमान करते। कहते, "मुहम्मद ने भी हमें ख़ूब बहलाया। ख़ूब हरे-हरे बाग़ दिखाए। कहते थे, क़ैसर और किसरा के ख़ज़ाने मिलेंगे। आज यह

हाल है कि ज़रूरत की चीज़ों के लिए भी जान का ख़तरा मोल लेना पड़ रहा है!"

बनी-क़ुरैज़ा की ग़द्दारी को कई दिन गुज़र गए। क़ुरैशी फ़ौजें बेचैन थीं। उनके तैयार होने का बेचैनी से इन्तिज़ार कर रही थीं कि वे क़िले में से हमले का रास्ता दें और ये दिल के अरमान पूरे करें। लेकिन उस समय तक क्या करतीं। खाई को पार करना तो उनके बस से बाहर था। इसलिए बाहर ही से तीर-पत्थर बरसाती रहीं।

खाई की चौड़ाई एक जगह से कुछ कम थी। पहरा भी वहाँ कुछ कमज़ोर था। दुश्मनों ने मौक़े का फ़ायदा उठाया और उसी तरफ़ से हमला करना चाहा। वे पूरी तैयारी से आगे बढ़े। घोड़े कुदा कर उस पार पहुँचे। घमण्ड से उनके सीने तने हुए थे। उनमें अबू-जहल के बेटे इकरमा और ज़िरार भी थे। अरब का सबसे मशहूर बहादुर अम्र-बिन-अब्दे-वद्द भी था। यह एक हज़ार सवार के बराबर माना जाता था। यही पहले आगे बढ़ा और पुकार कर कहा, "मुक़ाबले में कौन आता है?" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने उठकर कहा, "मैं।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "यह अम्र है। कुछ ख़बर है?" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने कहा, "हाँ, मैं ख़ूब जानता हूँ कि यह अम्र है।" आप *(सल्ल.)* ने उन्हें इजाज़त दे दी और खुद अपने मुबारक हाथों से तलवार दी। सिर पर पगड़ी बाँधी और दुआ की कि, "ऐ अल्लाह! अली की मदद कर!" अब हज़रत अली *(रज़ि.)* अम्र के मुक़ाबले में थे। अम्र उनको देखकर हँसा और बोला, "क्यों भतीजे! मेरा तो दिल चाहता नहीं कि तुम्हें मारूँ!" हज़रत अली *(रज़ि.)* ने जवाब दिया, "लेकिन मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हें ख़त्म कर दूँ।"

अम्र अब ग़ुस्से से पागल था। उसने पूरी ताक़त से तलवार का वार किया। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने ढाल पर रोक लिया और ख़ुद बढ़कर वार किया। लोगों ने देखा, अम्र अब धूल और ख़ून में लथपथ था। मुसलमानों ने अल्लाहु-अक्बर का नारा लगाया और जीत का एलान हो गया। कुछ देर अम्र के साथियों ने मुक़ाबला किया, लेकिन फिर सब भाग खड़े हुए।

इस हमले में दुश्मनों को नाकामी तो हुई लेकिन खाई को पार कर लेना उनके लिए कम खुशी की चीज़ न थी। अब बहुतों के हौसले बढ़े

और उन्होंने जान पर खेलने का फ़ैसला किया और खाई के उस पार जाकर मुसलमानों से मुक़ाबला करना चाहा। सूरज डूब चुका था। अन्धेरा फैल चुका था। दुश्मन का एक दस्ता खाई की तरफ़ बढ़ा। आगे-आगे मशहूर बहादुर नौफ़ल था। खाई पर पहुँचकर उसने घोड़ा कुदाया कि उस पार हो जाए। घोड़ा खाई में गिरा। नौफ़ल का सिर पिसकर रह गया। यह सबक़ आमोज़ अंजाम सामने था। अब साथियों को कहाँ हिम्मत हो सकती थी। उलटे पाँव वे वापस हो गए।

अबू-सुफ़ियान ने मुसलमानों के पास कहलाया, "नौफ़ल की लाश वापस कर दी जाए। बदले में प्राण-मूल्य (अर्थात् सौ ऊँट) मिलेगा।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने जवाब दिया, "उठा ले जाओ इसे। हमें इसका प्राण-मूल्य नहीं चाहिए। इसकी लाश भी नापाक है और इसका प्राण-मूल्य भी नापाक।"

मुशरिकों ने अपनी लाश उठाई और वापस चले गए, लेकिन अब भी वे अपनी हरकत से न रुके। दिन-रात खाई पार करने की कोशिश करते रहे। इसके लिए बाक़ायदा टोलियाँ बनाईं। वे टोलियाँ खाई पर मण्डराती रहतीं। जहाँ एक टोली वापस जाती, दूसरी टोली आ पहुँचती।

कई रातें मुसलमानों पर ऐसी बीतीं कि अल्लाह की पनाह! घरों में औरतें बेचैन थीं। बच्चे बेचैनी में तड़प रहे थे। आह! तनिक सोचो तो सही, इन जाँनिसारों पर क्या बीती होगी जो ख़तरों के चंगुल में थे, लगातार तीरों की बौछार हो रही थी और मौत उन्हें दबोच लेने के लिए बेताब खड़ी थी!

वक़्त बड़ा ही नाज़ुक था। अरब की सारी ताक़तें एक हो गई थीं, सत्य को मिटा देने के लिए। ऐसे में आप *(सल्ल.)* का भरोसा केवल अल्लाह पर था। आप बिलकुल यकसू होकर अल्लाह से गिड़गिड़ाते। हाथ फैला-फैला कर उससे मदद के लिए दुआएँ करते। सब्र और हिम्मत देने की दरख़्वास्त करते और इस्लाम को ग़ालिब करने की दुआ करते।

मौत सिर पर मण्डरा रही थी। दुश्मन ताक में लगे थे कि मुसलमान ज़रा भी ग़ाफ़िल हों, हमले का मौक़ा मिले और बेतहाशा टूट पड़ें। ऐसे बुरे वक़्त में प्यारे नबी *(सल्ल.)* भी लड़ाई में बहादुरी के साथ हिस्सा ले रहे थे। आपने खाई के विभिन्न भागों पर फ़ौजें बाँट दीं, जो दुश्मन के हमलों का मुक़ाबला करतीं। एक हिस्सा स्वयं आपकी देख-रेख में था।

आप दुश्मन को तीरों से रोक रहे थे। ज़रा भी हट कर दम न लेते थे। अगर किसी ज़रूरत के लिए वहाँ से हटना ज़रूरी होता तो अपनी जगह दूसरे को खड़ा कर देते। ज्यों ही ज़रूरत पूरी हो जाती, तुरन्त आकर फिर अपनी जगह सँभाल लेते। इस प्रकार एक तरफ़ तो आप साथियों की ढाढ़स बँधा रहे थे और दूसरी तरफ़ बड़ाई और इनसानियत का नमूना भी पेश कर रहे थे।

लड़ाई का आख़िरी दिन बड़ा कठिन गुज़रा। पूरे दिन ज़ोरों का मुक़ाबला रहा। दुश्मन के माहिर तीरअन्दाज़ खाई को घेरे हुए थे। और निरन्तर तीर बरसा रहे थे। मुसलमान थक कर चूर-चूर थे। भूख-प्यास से उनकी हालत ख़राब थी, लेकिन फिर भी अपनी जगहों पर पहाड़ की तरह अटल थे। तनिक भी पीछे हटने का नाम न लेते थे।

इस लड़ाई में मुसलमानों का जानी नुक़सान बहुत कम हुआ। मुशकिल से उनके 6 आदमी शहीद हुए। किन्तु अनसार का सबसे बड़ा हाथ टूट गया। हज़रत सअद-बिन-मुआज़ *(रज़ि.)* जो औस के सरदार थे, बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। एक दुश्मन हिब्बान-बिन-अरक़ा उनकी ताक में था। उसने मौक़ा पाकर उनके हाथ पर तीर मारा, जिससे एक रग कट गई। ख़ून का फव्वारा फूट पड़ा। उस वक़्त सअद *(रज़ि.)* ने आकाश की ओर नज़र उठाई और अल्लाह से दुआ की। कितनी प्यारी थी वह दुआ!

"ऐ अल्लाह! अगर क़ुरैश से अभी लड़ाई होना बाक़ी है, तो मुझको ज़िन्दा रख। जिस क़ौम ने तेरे रसूल को झुठलाया है, उनको घर से बेघर किया है, उनसे ज़्यादा किसी से लड़ने की मुझे तमन्ना नहीं। लेकिन अगर उनसे अब लड़ाई न होनी हो तो मुझको इसी (ज़ख़्म) में शहादत दे और जब तक मेरी आँखें बनी-क़ुरैज़ा के बुरे अंजाम को न देख लें, उस वक़्त तक मुझको मौत न दे।"

अल्लाह की रहमतें हों सअद *(रज़ि.)* पर......! और बुरा हो बनी-क़ुरैज़ा के यहूदियों का, जिन्होंने ग़द्दारी की, प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ बेवफ़ाई की......! अगर वे बेवफ़ाई न करते, वक़्त पर धोखा न देते तो स्थिति इतनी भयानक कभी न होती।

मुसलमान सख़्त बेचैन थे। डर से उनकी हालत बुरी हो रही थी। आँखें पथरा गईं। कलेजे मुँह को आ गए। उधर मुनाफ़िक़ ग़ुस्से से

तिलमिला रहे थे। होंठ चबा-चबाकर कहते, "अल्लाह और उसके रसूल ने तो हमको धोखा दिया है!"

हर तरफ़ निराशा फैली हुई थी। पूरा वातावरण उदास-उदास था। ऐसे में देखा गया कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* का चेहरा ख़ुशी से चमक रहा था। आँखों में एक अनोखी चमक थी जो बड़े इत्मीनान का पता दे रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे विजय का फ़रिश्ता आप *(सल्ल.)* के सामने खड़ा हो......!

मुसलमानों ने यह देखा तो उनके सारे ग़म धुल गए। ख़ुशी से वे खिल उठे। अब वे चिन्तित और उदास न थे, बिलकुल मुत्मइन और बे फ़िक्र थे। उनके चेहरे दमक रहे थे और होंठ मुस्करा रहे थे कि अब ख़ुदा की रहमत को जोश आ गया। अब ख़ुदा की मदद का समय आन पहुँचा।

(3)

नुएम-बिन-मसऊद *(रज़ि.)* प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास से लौटे तो बराबर सोचते रहे कि क्या करें? किस तरह दुश्मन की ताक़त कम करें? किस तरह उनकी नापाक तमन्नाओं का ख़ून करें? वे सोचते रहे, सोचते रहे, आख़िर में अक़्ल ने फ़ैसला दिया कि अगर दुश्मन को नाकाम करना चाहते हो तो उनमें फूट डाल दो, इससे अच्छी और कोई तरकीब नहीं।

नुऐम तुरन्त उठे। बनी-क़ुरैज़ा की तरफ़ तेज़ी से चल दिए। बनी-क़ुरैज़ा में उनकी पहले से मान-मर्यादा थी। वहाँ के यहूदी उनकी बड़ी इज़्ज़त करते। उनकी बातें बड़े ध्यान से सुनते। उनके साथ को अपने लिए अच्छा समझते। नुऐम *(रज़ि.)* वहाँ पहुँचे तो लोग बड़ी इज़्ज़त से मिले। उनको आदर से बिठाया। सारे यहूदी सरदार नुऐम के पास जमा थे। उनकी बातों से मज़े ले रहे थे। नुऐम *(रज़ि.)* कुछ देर इधर-उधर की बातें करते रहे। फिर अपनी बात पर आए। बोले, "मेरे दोस्तो! तुम्हें, मालूम है, मुझे इस क़बीले से कितना लगाव है। ख़ासकर तुम लोगों से कितनी मुहब्बत है।"

सब बोल उठे, "हाँ, हाँ तुम्हें तो हम ख़ूब जानते हैं।"

नुऐम *(रज़ि.)* ने कहा, "तुम लोगों ने मुहम्मद से समझौता तोड़ दिया और क़ुरैश और ग़तफ़ान के साथ हो गए, लेकिन इसका कुछ अंजाम भी सोचा? अगर जीत हो गई तो इससे अच्छी बात क्या है, लेकिन अगर

हार गए तो? उस समय क्या बनेगा? वे लोग तो अपना-अपना रास्ता लेंगे और तुम बिलकुल अकेले रह जाओगे। फिर मुहम्मद को अकेले तुम ही से निबटना पड़ेगा। उस समय तुम बुरे फँसोगे। बनी-क़ैनुकाअ और बनी-नज़ीर से भी बुरी तुम्हारी गत बनेगी।''

लोगों ने बेचैन होकर पूछा, ''तो फिर क्या किया जाए, भाई नुऐम?''

नुऐम *(रज़ि.)* ने कहा, ''भाइयो! मेरा तो ख़याल है, पहले उनके कुछ आदमी धरोहर के रूप में रख लो, फिर उनका साथ दो। आदमी ऊँचे घराने के हों। इस प्रकार तुम्हें इत्मीनान रहेगा और वे लोग भी जब तक मुहम्मद को मार न लेंगे, वापस होने का नाम न लेंगे।''

लोग खुशी से उछल पड़े, ''वाह भाई नुऐम! तुम्हारी राय तो बहुत अच्छी है। अब हम ऐसा ही करेंगे।'' नुऐम *(रज़ि.)* ने कहा, ''अच्छा, अब मैं चल रहा हूँ। लेकिन देखो ये बातें किसी और से कहने की नहीं।'' लोगों ने कहा : ''नहीं, नहीं तुम इत्मीनान रखो। हम किसी और से क्यों कहने लगे।''

नुऐम *(रज़ि.)* तो वहाँ से रवाना हो गए। लेकिन वे लोग देर तक नुऐम *(रज़ि.)* की तारीफ़ करते रहे, ''नुऐम ने कितने पते की बात बताई है और फिर वे बेचारे हमारा कितना ख़याल रखते हैं!''

इसके बाद नुऐम *(रज़ि.)* अबू-सुफ़ियान के पास पहुँचे। वहाँ क़ुरैश के अन्य सरदार भी मौजूद थे। नुऐम *(रज़ि.)* ने कहा, ''भाइयो! तुम्हें मालूम ही है, मुझको तुमसे कितनी मुहब्बत है। मुझे एक बात मालूम हुई है। उस बात से तुमको भी ख़बर कर देना मैं ज़रूरी समझता हूँ, ताकि तुम लोग होशियार हो जाओ।''

लोग बेताब हो गए। एक साथ बोले, ''भाई नुऐम! वह क्या बात है?!''

नुऐम *(रज़ि.)* ने कहा, ''मुझको पता चला है कि बनी-क़ुरैज़ा मुहम्मद से समझौता तोड़कर पछता रहे हैं। अब वे किसी भी सूरत में उसे मनाने में लगे हैं। हमें यह भी पता चला है कि वे क़बीला बनी-नज़ीर को दोबारा मदीना बुलाना चाहते हैं। इसलिए उन्होंने मुहम्मद से यह सौदा किया है कि इस अवसर पर वे क़ुरैश और ग़तफ़ान के सत्तर चुने हुए जाँबाज़ सिपाही उनके हवाले करेंगे कि वे उनके सिर क़लम कर दें।

उनमें यह भी तय हुआ है कि वे आपस में एकजुट होकर क़ुरैश का मुक़ाबला करेंगे। तो देखो भाइयो! होशियार रहना। अगर वे किसी बहाने से आदमी माँगें तो भूलकर भी मत देना।'

यह कहकर नुऐम *(रज़ि.)* चल दिए। क़ुरैशी सरदारों ने उनका बहुत बहुत शुक्रिया अदा किया। वहाँ से नुऐम *(रज़ि.)* ग़तफ़ान के पास पहुँचे। यहाँ भी वही बातें कीं जो क़ुरैश से कर आए थे।

नुऐम *(रज़ि.)* की इन बातों से क़ुरैश और ग़तफ़ान के लोग बहुत परेशान हुए। उसी समय सारे सरदार जमा हुए और सोचने लगे कि बनी-क़ुरैज़ा के बारे में क्या किया जाए? लोगों ने अलग-अलग रायें दीं। आख़िर में तय हुआ कि दोनों क़बीलों के कुछ सरदार जाएँ। उनसे कहें भाइयो हमें बहुत दिन हो गए। इससे ज़्यादा यहाँ ठहरना हमारे बस में नहीं। अब फ़ैसला हो जाना चाहिए। जितनी जल्द हो सके तुम लोग भी आकर मिल जाओ। सब मिलकर एक साथ मुसलमानों पर ज़बरदस्त हमला कर दें।

क़ुरैश और ग़तफ़ान के नुमाइन्दे बनी-क़ुरैज़ा के पास पहुँचे। उनसे ये बातें कहीं। बनी-क़ुरैज़ा ने कहा, कि कल तो शनिवार है। शनिवार को हम लड़ाई-भिड़ाई नहीं कर सकते। कोई दूसरा दिन रख लो। हाँ, एक बात और है। हम तुम्हारा उस समय साथ देंगे, जब तुम हमारे पास कुछ आदमी धरोहर के रूप में रख दो, ताकि हमें इत्मीनान तो रहे कि अगर मुहम्मद का पलड़ा भारी हुआ तो हमको छोड़कर भागोगे नहीं?

क़ुरैश और ग़तफ़ान को अब नुऐम *(रज़ि.)* की बात में तनिक भी सन्देह न रहा। उन्हें यक़ीन हो गया कि बनी-क़ुरैज़ा की नीयत सचमुच ख़राब है। उधर इन लोगों ने आदमी धरोहर रखने से इनकार किया तो बनी-क़ुरैज़ा को भी नुऐम *(रज़ि.)* की बात में कोई शक न रहा। इस तरह दोनों में फूट पड़ गई और इतनी बड़ी ताक़त से दुश्मन महरूम हो गए।

(4)

ज्यों-ज्यों दिन गुज़र रहे थे, दुश्मन हिम्मत हारते चले जा रहे थे। दस हज़ार फ़ौजियों को खाना पहुँचाना आसान काम न था। फिर उनमें फूट भी पड़ती जा रही थी। तेज़ी से उनका मेल-मिलाप ख़त्म हो रहा था। सर्दी का मौसम भी था, खुले मैदान में उनके जिस्म कटे जा रहे थे। ख़ुदा का करना, उन्हीं दिनों एक रात तेज़ आँधी उठी। ज़ोरों की

बारिश शुरू हुई। कुछ ही देर में मौसम बिलकुल बदल गया। बादल की गरज, बिजली की कड़क, हवाओं के तेज़ झोंके...... दुश्मनों के कलेजे फटे जा रहे थे। वे अन्धाधुन्ध अपने ख़ेमों की ओर भागे, लेकिन हवाओं को तनिक भी दया न आई। वे तेज़ होती गईं। उनकी भयावहता बढ़ती गई। उनकी सायँ-सायँ की आवाज़ से दिल बैठे जा रहे थे। उनके ख़ेमों की रस्सियाँ उखड़-उखड़ गईं। सारे सामान बिखर-बिखर गए। खाने के पतीले चूल्हों पर उलट-उलट गए।

फिर हवाएँ अकेले न थीं। साथ में रेत और कंकरियों का अज़ाब भी था। दुश्मनों की आँखें पट गईं। कोई किसी को देख तक न पा रहा था। उनके दिल काँप उठे। वे बौखला कर चीख़ने लगे।

"हाय तबाही......! हाय बरबादी!!"

ऐसे में अबू-सुफ़ियान की आवाज़ कानों से टकराई, "क़ुरैशी भाइयो! ख़ुदा की क़सम, अब यह ठहरने की जगह नहीं। देखो सारे ऊँट-घोड़े तबाह हो गए। बनी-क़ुरैज़ा ने भी धोखा दे दिया। मौसम का यह हाल है। चलो, अब यहाँ से भाग चलो। अच्छा, मैं तो चला।" अबू-सुफ़ियान जल्दी से अपनी ऊँटनी पर बैठा और चल दिया। सरदार के बाद अब कौन टिक सकता था। क़ुरैश के सारे लोग रवाना हो गए। यह देखकर ग़तफ़ान भी मजबूरन वापस हो गए। इस प्रकार मदीना का इलाक़ा बीस-बाइस दिन धूल-धूसरित रहकर साफ़ हो गया।

शनिवार आ गया। हो सकता था, यही दिन दुश्मनों के ज़बरदस्त हमले का दिन होता। देखा गया तो वह जगह बिलकुल निर्जन और सुनसान थी। हवाओं ने उनका तनिक भी निशान न छोड़ा था।

> "और ख़ुदा ने काफ़िरों को ग़ुस्से में भरा हुआ लौटा दिया। उनके हाथ कुछ भी न आया और अल्लाह ने मुसलमानों के साथ लड़ने की नौबत न आने दी।" (क़ुरआन, 33:25)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* अब मदीना वापस हुए। आप *(सल्ल.)* ने साथियों से फ़रमाया, "अब क़ुरैश तुमसे-कभी लड़ने न आएँगे। अब तुम उनसे लड़ने जाओगे!!"

मदीना आकर नबी *(सल्ल.)* ने हज़रत आइशा *(रज़ि.)* के घर में ग़ुस्ल किया। ख़ुश्बू लगाई। फिर लोगों के साथ ज़ुहर की नमाज़ पढ़ी। अभी नमाज़ से फ़ारिग़ ही हुए थे कि हज़रत जिबरील *(अलै.)* आ गए—

उन्होंने फ़रमाया, "मैं देख रहा हूँ कि आपने अपना कवच उतार दिया हालाँकि फ़रिश्तों ने अभी तक अपने कवच नहीं उतारे। हम मुश्रिक दुश्मनों को हमराउल-असद तक खदेड़ते चले आ रहे हैं। अब बारी है बनी-क़ुरैज़ा की। आज ही चलकर उनकी भी ख़बर लेनी है।

नबी *(सल्ल.)* ने उसी समय बिलाल *(रज़ि.)* को भेजा कि वे एक-एक दरवाज़े पर यह एलान कर दें कि "आज अस्र की नमाज़ बनी क़ुरैज़ा के अलावा कहीं और नहीं पढ़नी है।

मुसलमान थक कर चूर थे। लेकिन थकान की उन्होंने कोई परवाह न की। हुक्म पाते ही बनी-क़ुरैज़ा की तरफ़ चल पड़े। वे ख़ुशी से बेक़रार थे। उनके दिल बल्लियों उछल रहे थे। क्योंकि वे बनी-क़ुरैज़ा से बदला लेने जा रहे थे। वही बनी-क़ुरैज़ा जिन्होंने दुश्मनों का साथ दिया था और इन्हें मिटा देने की तैयारियाँ कर रहे थे।

मुसलमानों को आता देख उन्होंने अपने क़िले बन्द कर लिए। मुसलमान एक महीने तक उनपर घेरा डाले पड़े रहे। आख़िर वे तंग आ गए। उनकी जान पर बन आई। आपस में उन्होंने मशवरा किया। कअब-बिन-असद, जो उनका सरदार था, बोला–

अब नजात की शक्ल सिर्फ़ यही है कि हम मुसलमान हो जाएँ और मुहम्मद का कहा मानने लगें। इस तरह जान-माल का कोई ख़तरा न रहेगा और हम चैन से रहेंगे।

लोगों ने इसका घोर विरोध किया। बोले, "तौरात हम कभी नहीं छोड़ सकते, हर चीज़ मुमकिन है, मगर यह कभी मुमकिन नहीं।"

कअब ने कहा, "तो हम अपने बीवी-बच्चों को मार डालें। फिर तलवार लेकर बाहर निकलें और मुसलमानों से मुक़ाबला करें। अगर हम सब मारे गए तो कोई चिन्ता नहीं और अगर जीत गए तो दूसरी बीवियाँ कर लेंगे। कुछ ही दिनों में फिर बच्चे हो जाएँगे।"

यहूदी उसपर भी तैयार न हुए। किसी को यह बात पसन्द न आई। सब, "ने कहा, "इन बेचारों को क़त्ल कर दें?! फिर जीने का मज़ा ही क्या रह जाएगा?!" अलग-अलग रायें सामने आईं और आख़िर में तय हुआ कि मुहम्मद से कहा जाए कि वह हमको सीरिया की ओर जाने की इजाज़त दे दें। बनी-क़ैनुक़ाअ और बनी-नज़ीर के साथ तो ऐसा ही हुआ था।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* इसपर राज़ी न हुए। आपने फ़रमाया, "औस क़बीला तुम्हारा सहप्रतिज्ञ है। उसमें से किसी एक को पसन्द कर लो। वही तुम्हारा फ़ैसला करेगा। जो वह कहेगा, उसको हम भी मानेंगे। तुमको भी मानना होगा।" दुर्भाग्य से उनकी नज़र सअद-बिन-मुआज़ पर पड़ी।

सअद *(रज़ि.)* ने फ़ैसला किया......! वह फ़ैसला यह था कि जो लड़ने के योग्य हैं उन्हें क़त्ल कर दिया जाए। औरतें और बच्चे क़ैद कर लिए जाएँ। माल और सामान मुसलमानों में बाँट दिया जाए।

आप *(सल्ल.)* ने यह फ़ैसला सुना तो फ़रमाया—

"सअद! यही फ़ैसला ख़ुदा का भी है।"

मदीने में गढ़े खोदे गए। थोड़े-थोड़े अपराधी वहाँ ले जाए गए और फिर उनकी गर्दनें मार कर गढ़ों में डाल दिया गया। सबसे पहले जिसकी गर्दन मारी गई वह 'हुई' था।

हज़रत सअद *(रज़ि.)* की तमन्ना पूरी हो गई। उनकी आँखें ठण्डी हो गईं। बनी-क़ुरैज़ा का बुरा अंजाम उन्होंने देख लिया। फिर वे ज़्यादा न ठहरे और उसी ज़ख़्म से उनको शहादत प्राप्त हो गई।

और ...... बुत टूट गए

(1)

मक्का प्यारे नबी *(सल्ल.)* का अपना वतन था। उनका पूरा घराना वहीं आबाद था। उसकी एक-एक चीज़ से आपको प्रेम था। वहाँ से जाना पड़ा तो आपको बहुत दुख हुआ। बेइख़्तियार आँखें डबडबा आईं। लेकिन जल्द ही दिन पलटे। ज़माने ने देखा कि आप फिर उसी शहर में दाख़िल हुए। पहले आप मज़लूम और बेबस थे। आज विजय का झण्डा हाथ में था। अल्लाह को मंज़ूर हुआ कि आप फिर लौटें। वहाँ से बुतों को निकाल बाहर करें। ईमान के केन्द्र को फिर ईमान के प्रकाश से जगमगा दें। प्यारे वतन में पहुँचकर आपको कितनी ख़ुशी हुई? इसका अन्दाज़ा कौन कर सकता है?

हिजरत को कई साल बीत गए। आप *(सल्ल.)* मदीना ही में रहते रहे। मुसलमानों के साथ अपना काम करते रहे। लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाते रहे। इसी बीच क़ुरैश से लड़ाइयाँ भी हुईं।

एक रात आप *(सल्ल.)* ने स्वप्न देखा कि आप काबा में दाख़िल हो रहे हैं। आसपास सच्चे साथी भी हैं। आप बहुत ख़ुश बिस्तर से उठे। फ़ज्र की नमाज़ का समय होनेवाला था। आप मस्जिद गए। साथियों के साथ नमाज़ अदा की। फ़ज्र बाद आप रोज़ाना साथियों के साथ बैठते। उनसे कुछ देर बातचीत करते। आज भी आप बैठे। उनको अपना स्वप्न सुनाया और कहा, "अल्लाह ने चाहा तो काबा में तुम ज़रूर दाख़िल होगे और उस समय तुम्हें कोई ख़तरा न होगा।"

मक्का मुहाजिर मुसलमानों का प्यारा वतन था। वहाँ से वे ज़बरदस्ती हटाए गए थे। इसका उनको बड़ा सदमा था। इसकी याद उन्हें बराबर आती रहती। हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* मक्का में कितनी बुरी तरह सताए गए! लेकिन जब मक्का याद आता तो रोने लगते। ज़्यादातर मुहाजिर जान बचाकर मक्का से निकल आए थे, लेकिन उनके ख़ानदान और बच्चे वहीं थे।

आप *(सल्ल.)* के मुख से यह ख़बर सुनकर उन्हें बड़ी खुशी हुई। वे अपने घरों पर गए और सफ़र की तैयारियों में लग गए। काबा से उन्हें अत्यन्त प्रेम था। वहाँ के लिए उन्होंने क़ुरबानी का भी इन्तिज़ाम किया।

मुसलमान तैयार हो गए। हिजरत का छटा साल था। ज़ीक़ादा का महीना था। वे मदीना से रवाना हो गए और काबा की तरफ़ बेताबी से बढ़ने लगे। मदीना में मुनाफ़िक़ भी थे। उन्होंने साथ जाने से टाल मटोल किया। बहाना करते हुए कहा, "हमें तो कारोबार ने फँसा रखा है। भला हम कैसे जा सकते हैं।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उनपर ज़ोर न डाला। अब उन्हें मुसलमानों को और बहकाने का मौक़ा मिला। जो कमज़ोर मुसलमान थे उनके पास पहुँचे और कहा, "क़ुरैशी सरदारों के ज़िन्दा रहते तुम लोग मक्का में कैसे जाओगे?"

मुसलमानों ने कहा—

"क़ुरैशी सरदार क्या कर लेंगे? प्यारे नबी क़ुरैश से ज़्यादा ताक़त रखते हैं। आप *(सल्ल.)* बार-बार उनके दाँत खट्टे कर चुके हैं।"

मुनाफ़िक़ों ने कहा—

"तुम्हारी अक़्ल मारी गई है। ज़रा बचकर लौट आना तब देखेंगे।"

मुनाफ़िक़ों की ये बातें सारे मुसलमानों में फैल गईं। हज़रत उमर*(रज़ि.)* ने सुना तो जोश से बेक़ाबू हो गए। उन्होंने कहा, "अल्लाह के रसूल! इन कमबख़्तों की गर्दनें मार दी जाएँ।" प्यारे नबी *(सल्ल.)* इसके लिए बिलकुल राज़ी न हुए। उनको वैसे ही छोड़ दिया और साथियों को कूच करने का आदेश दिया। मुसलमान मक्का के लिए रवाना हो गए, जिनकी तादाद चौदह सौ थी।

मुसलमान चलते-चलते उस्फ़ान पहुँचे। वहाँ पहुँचकर ठहर गए। अपने ख़ेमे लगाए। जानवरों को बाँधा और आग जलाई कि खाना पकाएँ।

अचानक दूर से धूल उड़ती हुई दिखाई दी। कोई सवार तेज़ी से घोड़ा दौड़ाता चला आ रहा था। सब की निगाहें उसी पर जम गईं। इसलिए कि वह मक्का से आ रहा था। और मक्का की ख़बरों का उन्हें बेहद इन्तिज़ार था।

कुछ ही देर में वह सवार मुसलमानों के पास पहुँच गया। वह बनी-ख़ुज़ाआ का आदमी था। उसका नाम बिश्र-बिन-सुफ़ियान था। वह प्यारे नबी *(सल्ल.)* की ख़िदमत में हाज़िर हुआ और कहा—

"क़ुरैश को आपके सफ़र की ख़बर हो गई है। वे बहुत ही ग़ुस्से में हैं और जोश से बेक़ाबू हैं। ख़ालिद-बिन-वलीद सवारों का भारी दस्ता लेकर निकला है। मक्का के निकट ही आपकी घात में बैठा है कि आप पहुँचें और वे सब अचानक टूट पड़ें।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* को पूरा यक़ीन हो गया। इस ख़बर के सच होने में ज़रा भी सन्देह न रहा। क्योंकि बिश्र बनी-ख़ुज़ाआ के सरदारों में था— और बनी-ख़ुज़ाआ क़ुरैश के दुश्मन थे। मुसलमानों से उनके अच्छे सम्बन्ध भी थे। बिश्र की बातें सुनकर आप *(सल्ल.)* को बड़ा दुःख हुआ। आपने फ़रमाया—

"अफ़सोस है क़ुरैश पर! आए दिन की लड़ाई उन्हें खा गई। क्या नुक़सान था, अगर वे मुझे अरबवासियों पर छोड़ देते। अगर मुझपर उनका बस चल जाता तो उनका मक़सद हासिल था और मैं उनपर कामियाब होता तो वे सब के सब इस्लाम में आ जाते।

अल्लाह की क़सम मैं जो चीज़ लेकर आया हूँ, उसके लिए लड़ता रहूँगा। यहाँ तक कि अल्लाह उसे ग़ालिब कर दे।

ऐ मेरी क़ौम! क़ुरैश तुमसे लड़ने निकले हैं। अगर हम इसी रास्ते पर चलते रहे तो उनसे अवश्य टक्कर होगी और फिर बड़ा ख़ून-ख़राबा होगा। हम यह चाहते नहीं। कोई है जो किसी दूसरे रास्ते से ले चले?"

असलम क़बीले का एक आदमी आगे बढ़ा। यह रेगिस्तान के रास्तों को अच्छी तरह जानता था। उसने कहा—

"मैं ले चलूँगा, ऐ अल्लाह के रसूल! आप चिन्ता न करें। दुश्मन जहाँ बैठे हैं वहीं बैठे रह जाएँगे और आप मक्का पहुँच जाएँगे।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "तब तुम आगे बढ़ो। हम तुम्हारे पीछे-पीछे चलते हैं।"

उस आदमी ने आप *(सल्ल.)* की ऊँटनी की नकेल पकड़ी और क़ुरैश के रास्ते से बचकर चला। यह रास्ता पहाड़ों से होकर गुज़रता था और बहुत ही कठिन तथा सख़्त था। न जाने किन-किन मुसीबतों से हुदैबिया[1]

1. मक्का से निकट ही एक कुआँ है, जिसको हुदैबिया कहते हैं। गाँव भी उसी कुएँ के नाम से मशहूर हो गया।

पहुँच गए। यह मक्का से क़रीब ही एक जगह है। वहाँ पहुँचकर आप *(सल्ल.)* की ऊँटनी बैठ गई।

लोगों ने बहुत कोशिश की कि वह उठ जाए और चलने लगे लेकिन वह टस से मस न हुई। ऐसा लग रहा था जैसे उसे कोई तकलीफ़ पहुँच गई हो या किसी ने उसे बाँध दिया हो।

आप *(सल्ल.)* चाहते तो दूसरी ऊँटनी पर बैठ सकते थे। मक्का अब बिलकुल नज़दीक था। वहाँ तक पैदल भी जा सकते थे, लेकिन आप *(सल्ल.)* समझ गए कि ऊँटनी के यहाँ बैठ जाने में कोई राज़ ज़रूर है, जिससे मैं बेख़बर हूँ। ऐसे अवसरों पर आप स्वयं कोई फ़ैसला नहीं करते थे, बल्कि अल्लाह की ओर से वह्य का इन्तिज़ार करते थे।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने हुदैबिया के मैदान में ख़ेमे गाड़ देने का हुक्म दिया। लोगों ने वहीं पर डेरे डाल दिए। लेकिन ख़ुशी से दमकते चेहरे अब बुझे-बुझे से थे। सब हैरान थे कि माजरा क्या है? हर एक-दूसरे से पूछता, "भाई, यहाँ क्यों रुक गए? अब तो मक्का के दरवाज़े पर आ गए थे। आप *(सल्ल.)* ने तो मक्का में दाख़िल होने का वादा किया था। काबा की ज़ियारत की ख़ुशख़बरी सुनाई थी। अब यह क्या हो गया है?"

उस समय मुसलमानों की उम्मीदों को बहुत सख़्त धचका लगा, लेकिन अब भी वे अल्लाह की रहमत से मायूस न थे।

(2)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* अपने साथियों के साथ मक्का आ रहे हैं, यह सुनते ही मक्का में काफ़िरों के होश उड़ गए। उनकी बेचैनी की कोई सीमा न रही। अब उन्हें जो कुछ उम्मीद थी ख़ालिद से थी। उनका ख़याल था कि ख़ालिद हमले में कामियाब हो जाएँ, तब ही जान बच सकती है। आबरू भी उसी समय बाक़ी रह सकती है। वरना फिर तबाही ही है। हमेशा की बेइज़्ज़ती और रुसवाई है।

यह लो, ख़ालिद तो लौट आए। कह रहे हैं कि मुहम्मद हुदैबिया में ठहर गए। हमले की पूरी योजना धूल में मिल गई। सारी स्कीम फ़ेल हो गई। अब वे क्या करें?

मुहम्मद *(सल्ल.)*, जिनको उन्होंने अपने यहाँ से निकाल दिया था, आज दोबारा लौट आए। इस समय वे अकेले और बेसहारा भी नहीं।

जाँनिसारों की एक फ़ौज है, जो उनपर क़ुरबान होने के लिए बेक़रार है। उन्होंने उहुद में मुसलमानों को हरा तो दिया था, लेकिन उनकी बहादुरी का लोहा भी मान लिया था। उन्हें अन्दाज़ा हो गया था कि मुसलमान जान तो दे सकते हैं, दीन नहीं छोड़ सकते। दीन तो उनको जान से भी प्यारा है।

क़ुरैशी सरदार फिर 'दारुन्नदवा' (मंत्रणा-गृह) में जमा हुए। हर एक उदास था। हर एक के चेहरे पर चिन्ता और घबराहट छाई हुई थी।

मुसलमान अगर मक्का में घुस आए तो क़ुरैश की क्या इज़्ज़त रह जाएगी? दूसरों की निगाह में उनका क्या वज़न रह जाएगा? यह सोचकर उनका स्वाभिमान भड़क उठा और उन्होंने क़सम खाई—

"जब तक जान में जान है, मुहम्मद का मक्का में क़दम रखना नामुमकिन है।"

सब सिर जोड़ कर बैठे। आपस में मशवरे करने लगे कि क्या किया जाए? मुहम्मद मक्का के बाहर से हमें धमकी दे रहा है। क़ुरैश में भी उसके बहुत से यार व मददगार हैं, जो उसको सच्चा नबी समझते हैं। ये तो हमारे लिए आस्तीन के साँप हैं। अगर मुसलमानों से हमारी लड़ाई छिड़ गई तो ये दोस्त बनकर हमें डसेंगे। फिर तो हमारे लिए बड़ी आफ़त होगी।

एक बोला, "मुहम्मद कहते हैं, हम लड़ने नहीं आए हैं। अगर ऐसा है तो हमें चाहिए कि उनसे नर्मी से पेश आएँ। किसी तरह समझा-बुझा कर उन्हें वापस कर दें। अब अगर नीयत ख़राब हुई, उन्होंने लड़ाई की आग भड़कानी चाही तो हम भागनेवाले कब हैं। लड़ाई तो हमारा अस्ल मैदान है। लड़ना-भिड़ना ही तो हमारा काम है।"

"हमारे भाई! तब क्या किया जाए?" एक क़ुरैशी सरदार ने सवाल किया।

मेरी राय है कि बनी-ख़ुज़ाआ के कुछ आदमी भेज दिए जाएँ। वे जाकर पता लगाएँ कि मुहम्मद चाहते क्या हैं? और जिस तरह हो सके उन्हें समझाने-बुझाने की कोशिश करें।" उस आदमी ने जवाब दिया।

"बनी-ख़ुज़ाआ को भेजने में क्या राज़ है? हमें तो उनसे ग़द्दारी का ख़तरा है। वे तो मुहम्मद के दोस्त और तरफ़दार हैं।" क़ुरैशी सरदार ने

फिर सवाल किया।

"इस तरफ़ से बिलकुल बेफ़िक्र रहो। मक्का में उनकी ज़मीनें और जायदादें हैं, बीवी और बच्चे हैं। वे हमारे साथ ग़द्दारी करके जाएँगे कहाँ?" उस आदमी ने इत्मीनान दिलाया।

सबको यह राय बहुत पसन्द आई। नुमाइन्दगी के लिए बनी ख़ुज़ाआ के कुछ आदमी चुन लिए गए। बुदैल ख़ुज़ाई उनका सरदार बना। ये लोग प्यारे नबी *(सल्ल.)* से मिलने के लिए रवाना हो गए।

ये लोग वहाँ पहुँचे तो आप *(सल्ल.)* बड़े तपाक से मिले। बुदैल ने आने का मक़सद बताया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "मुसलमान काबा की ज़ियारत के लिए आए हैं। उनके दिल में उसका आदर और श्रद्धा है। अगर क़ुरैश हम से छेड़छाड़ न करेंगे तो हम लोग ख़ामोशी से तवाफ़ करके लौट जाएँगे।"

नुमाइन्दे लौटकर मक्का गए। क़ुरैश को प्यारे नबी *(सल्ल.)* का सन्देश सुनाया। उन्हें आपकी बात मान लेने का मशवरा दिया। अब ख़ुद क़ुरैश में मतभेद पैदा हो गया। कुछ लोगों ने कहा, "मुहम्मद से सुलह कर ली जाए। तवाफ़ और ज़ियारत के लिए रास्ता खोल दिया जाए।" कुछ लोगों ने इसका ज़ोरदार विरोध किया।

एक क़ुरैशी सरदार ने कहा, "क्या तुम्हें पसन्द होगा कि दुश्मन तुम्हारी ज़मीन रौंद कर चले जाएँ, फिर हमेशा के लिए माथे पर बदनामी का टीका लग जाए?"

"फिर क्या किया जाए?" सब लोग एक साथ बोल उठे।

क़ुरैशी सरदार ने कहा, "मेरी राय है, हुलैस-बिन-अलक़मा को भेज दिया जाए। वह क़बाइलियों का सरदार है। क़बाइलियों के रौब और दबदबे का हाल भी सभी को मालूम है। हर एक उनसे डरता और दबता है। उनके ग़ुस्से से काँपता है। अगर उससे बात बन गई और मुहम्मद वापस चले गए तो हमको शान्ति मिल जाएगी। इतनी बड़ी मुसीबत से जान छूट जाएगी। लेकिन अगर मुहम्मद ने उसकी बात ठुकरा दी तो उसे जोश आ जाएगा। फिर वह हमारे साथ हो जाएगा और हमारे साथ लड़ेगा।"

हुलैस अपने ख़ास-ख़ास साथियों के साथ चला। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने देखा तो फ़रमाया—

"देखो, वह हुलैस आ रहा है। उसकी क़ौम क़ुरबानी की बड़ी शौक़ीन है। जानवरों को उसकी तरफ़ हाँक दो। यह उन्हें अपनी आँखों से देख ले, ताकि उसे यक़ीन हो जाए कि हम तवाफ़ और ज़ियारत के लिए आए हैं तबाही मचाने के लिए नहीं आए हैं।" मुसलमान 'लब्बैक' कहते हुए उसके स्वागत के लिए आगे बढ़े और क़ुरबानी के जानवरों को उसके सामने हाँक दिया। उसने देखा कि ऊँटों का एक सैलाब आ रहा है। गर्दनों में लोहे के नाल लगे हैं। नाल को ज़्यादा दिन गुज़र जाने से गर्दन की ऊन भी झड़ गई है। ज़ुल्म और नाइनसाफ़ी का यह दर्दनाक दृश्य उससे देखा न गया। उसकी आँखों में आँसू आ गए। वह प्यारे नबी *(सल्ल.)* से मिला भी नहीं। सीधे लौटकर मक्का गया और क़ुरैश से कहा—

"ख़ुदा की क़सम! हमने तुमसे इस बात पर समझौता नहीं किया है। अल्लाह के घर से उसको रोक रहे हो, जो उसके सम्मान के लिए आया है?

अरब के सारे क़बीले तो काबा का हज करें और अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा उससे महरूम रहे। ख़ानदानी बड़ाई में भी तो वह किसी से पीछे नहीं?

अगर तुमने मुहम्मद को काबा से रोका तो जान लो, सारे क़बाइलियों को लेकर मैं अलग हो जाऊँगा और मुहम्मद की तरफ़ से तुमसे युद्ध करूँगा।"

क़ुरैशी सरदार की स्कीम नाकाम होकर रह गई। उसने सोचा कुछ, हो गया कुछ। लेकिन उसने फिर एक चाल चली। वह हुलैस को मनाते हुए बोला : "भाई! यह हम लोगों का मामला है। इसे हम पर ही छोड़ दो। हम लोग कोई ऐसी बात तय कर लेंगे, जिसमें सबका भला होगा।"

हुलैस तैयार हो गया। उसने वादा कर लिया कि उनके इस मामले में कोई दख़्ल न देगा।

क़ुरैश को क़बाइलियों की तरफ़ से इत्मीनान हो गया। उन्होंने पचास बहादुरों को भेजा कि रात में मुसलमानों पर हमला कर दें।

वे लोग रात के अँधेरे में हुदैबिया चले। वे मुसलमानों के ख़ेमों तक पहुँचे भी न थे कि हर तरफ़ से घिर गए। अब वे गिरफ़्तार होकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास जा रहे थे।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ख़ेमे से बाहर आए। देखा तो वे सब भय से काँप रहे थे। आपने फ़रमाया—

"तुम्हारे क़त्ल में अब क्या चीज़ रोक बन सकती है, जबकि तुम्हारा जुर्म इतना संगीन है?"

दुश्मनों ने कहा, "आपकी सहनशीलता, आपकी रहमदिली और मेहरबानी।"

आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "मैंने तुम्हें माफ़ कर दिया। अपनी क़ौम में जाओ और उनसे कहो कि मुहम्मद ख़ून-ख़राबे के लिए नहीं आए हैं। शायद उन्हें होश आ जाए।"

वे लौटकर अपनी क़ौम में गए। प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने उन्हें इत्मीनान दिलाया था लेकिन उन्हें तनिक भी इत्मीनान न था। उन्हें यक़ीन था कि अब पूरी क़ौम की शामत आएगी। उनकी समझ ही में नहीं आ रहा था कि इतना बड़ा जुर्म भी माफ़ हो सकता है।

इसके बाद आप *(सल्ल.)* ने हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* को भेजा कि क़ुरैशी सरदारों से मिलें और उनसे बात तय करें।

मक्का में हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* के चचेरे भाई भी थे। उनका नाम अबान-बिन-सईद था। हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* उन्हीं की हिमायत (अमान) में मक्का गए। क़ुरैश को प्यारे नबी *(सल्ल.)* का सन्देश सुनाया और कहा—

"अब दो ही सूरतें हैं, या तो तवाफ़ का मौक़ा दो या लड़ाई के लिए तैयार हो जाओ।"

क़ुरैश ने कहा, "तुम तवाफ़ कर लो। सिर्फ़ तुम्हारे साथ हम यह रिआयत कर सकते हैं। अन्य मुसलमानों को तो वैसे ही वापस जाना होगा।"

हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* इसपर कैसे तैयार हो सकते थे। उन्होंने कहा, "यह तो क़ियामत तक न होगा। तुम्हें सारे मुसलमानों को तवाफ़ का मौक़ा देना होगा।"

वे बोले, "अच्छा, तुम्हारी मर्ज़ी। हाँ यह भी जान लो कि अब तुम हमारे क़ैदी हो। यहाँ से तुम वापस नहीं जा सकते।" अब हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* उनके बन्दी थे।

मक्का में चर्चा हो गई कि उस्मान *(रज़ि.)* क़त्ल हो गए। यह अफ़वाह मुसलमानों के कानों में भी पहुँची। वे जोश से बेक़रार हो गए। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "उस्मान के ख़ून का बदला लेना हम पर फ़र्ज़ है।" यह कहकर आप बबूल के एक पेड़ के नीचे बैठ गए। सारे मुसलमानों ने जान की बाज़ी लगा देने की प्रतिज्ञा की। अबू-सिनान असदी *(रज़ि.)* आगे बढ़े। अपके हाथ पर बैअत की। उनके बाद सारे मुसलमानों ने बैअत की। अब तलवारें म्यान से बाहर आ गईं। एलान हो गया कि सब लोग लड़ाई की तैयारी करें।

जान क़ुरबान करने की यह बैअत अल्लाह को बहुत पसन्द आई। क़ुरआन में भी उसकी तारीफ़ की। इसी लिए यह 'बैअते-रिज़वान' के नाम से मशहूर हुई।

(3)

मुसलमानों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* के सामने प्रतिज्ञा की कि वे अपनी जान की बाज़ी लगा देंगे। जब मक्का के अधर्मियों को इसका पता चला तो बहुत डरे। सबने कहा कि अब सुलह कर लेनी चाहिए। इसी में भलाई है। वरना बड़ी तबाही होगी। अधर्मियों में एक व्यक्ति सुहैल-बिन-अम्र था। वह सूझ-बूझ और होशियारी में मशहूर था। बहुत ही शानदार तक़रीर करता था। लोगों ने उसे 'ख़तीबे-क़ुरैश' का ख़िताब दिया था। उन्होंने सुलह की बातचीत के लिए उसे ही दौड़ाया।

सुहैल आया तो उसने देखा कि मुसलमानों में धूमधाम से लड़ाई की तैयारियाँ हो रही हैं। यह देखकर वह घबराया। लपक कर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास पहुँचा और बोला—

"आप यक़ीन मानें उस्मान जिन्दा हैं, क़त्ल नहीं हुए हैं। उनके क़त्ल हो जाने की ख़बर बिलकुल ग़लत है। मैं आपके पास सुलह के लिए आया हूँ। यहाँ आपके साथी लड़ाई की तैयारी कर रहे हैं, उधर क़ुरैश ने क़सम खाई है कि इस साल आपको मक्का में नहीं आने देंगे। मैं कुछ शर्तें लेकर आया हूँ। उनमें हमारे लिए भी सलामती है और

आपके लिए भी भलाई है। अगर आप मान लें तो एक भयंकर लड़ाई टल जाएगी। न जाने कितनी जानें बच जाएँगी और इतनी बड़ी नेकनामी का श्रेय आप ही को प्राप्त होगा।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "क्या-क्या शर्तें हैं?!"

सुहैल, "इस साल आप काबा का तवाफ़ किए बिना ही लौट जाएँ। अगले साल आएँ और सिर्फ़ तीन दिन रहकर चले जाएँ। तलवार के अलावा कोई हथियार साथ न हो और तलवार भी म्यान में हो।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* "और?"

सुहैल : "क़ुरैश का कोई व्यक्ति मुसलमान होकर मदीना जाए तो उसे वापस कर दिया जाए और अगर कोई मुसलमान मदीना छोड़कर मक्का में आ जाए तो हम उसे वापस नहीं करेंगे।"

आप *(सल्ल.)* ने आँखें बन्द कर लीं और कुछ देर बिलकुल ख़ामोश रहे। वह्य के समय आपकी यही हालत होती। उधर मुसलमान इस अन्याय-पूर्ण शर्त पर ग़ुस्से से खौल रहे थे। लेकिन उन्होंने सब्र से काम लिया। फिर आप *(सल्ल.)* ने आँखें खोलीं और फ़रमाया, "और?"

सुहैल : "दस साल तक यह सुलह रहेगी। हर एक को शान्ति और सुरक्षा मिलेगी। कोई किसी से छेड़छाड़ नहीं करेगा।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "और?"

सुहैल : "अरब का जो क़बीला जिस पक्ष के साथ चाहे, समझौते में शरीक हो जाए। ये हैं क़ुरैश की शर्तें। बात बिगड़ने से पहले-पहले आप सोच लीजिए। लोगों को आपकी सूझ-बूझ और तदबीर से बड़ी उम्मीदें हैं।"

आप *(सल्ल.)* ने ये शर्तें स्वीकार कर लीं। हज़रत अली *(रज़ि.)* को आदेश दिया कि वे समझौतानामा लिखें।

मुसलमानों ने यह देखा तो उन्हें यह बहुत नापसन्द हुआ। हज़रत उमर *(रज़ि.)* पर इसका सबसे ज़्यादा असर हुआ। वे उठकर प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास आए और कहा—

"क्या आप अल्लाह के रसूल नहीं हैं?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "हाँ, हूँ।"

उमर *(रज़ि.)* : "क्या हम मुसलमान नहीं हैं?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "हाँ हम मुसलमान हैं।"

उमर *(रज़ि.)* : "क्या वे मुशरिक नहीं हैं?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "हाँ, इसमें क्या शक है।"

उमर *(रज़ि.)* : "तो हम दीन में यह ज़िल्लत क्यों सहन करें? इस तरह दबकर क्यों समझौता करें?"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "उमर! मैं अल्लाह का बन्दा और रसूल हूँ। यह उसी का फ़ैसला है। वह मुझे हरगिज़ बर्बाद न करेगा।"

हज़रत उमर *(रज़ि.)* की आँखों में आँसू भर आए। वे उठकर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के पास आए और उनसे यही बात की। हज़रत अबू-बक्र ने कहा, "आप *(सल्ल.)* अल्लाह के रसूल हैं। जो कुछ करते हैं, अल्लाह के हुक्म से करते हैं।"

समझौता लिखा जाने लगा। हज़रत अली *(रज़ि.)* ने क़लम उठाया और लिखना शुरू किया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "लिखो बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम।"

सुहैल : "हम में बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम लिखने का रिवाज नहीं। हम इससे अपरिचित हैं। 'बिस्मिकल्लाहु-म' (ऐ अल्लाह तेरे नाम से) लिखा जाए।" आप *(सल्ल.)* ने उनकी यह बात मान ली और हज़रत अली *(रज़ि.)* को लिखने का हुक्म दिया।

फिर आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "लिखो, ये वे शर्तें हैं जिनपर अल्लाह के रसूल मुहम्मद ने सुहैल-बिन-अम्र से सुलह की।" सुहैल ने तुरन्त हज़रत अली *(रज़ि.)* का हाथ पकड़ लिया और कहा—

"ऐसा न कीजिए। अगर क़ुरैश अपको रसूल ही मानते तो झगड़ा किस बात का था। आप सिर्फ़ अपना और अपने बाप का नाम लिखवाएँ।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "हालाँकि तुम नहीं मानते, लेकिन अल्लाह की क़सम! मैं अल्लाह का रसूल हूँ।" फिर हज़रत अली से फ़मराया : "लिखो, ये शर्तें हैं जिनपर मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह ने सुहैल-बिन-अम्र से सुलह की फिर सुलह की शर्तें लिखी गईं और दोनों तरफ़ के कुछ आदमियों ने उसपर दस्तख़त किए।[1]

1. यह समझौता हुदैबिया में लिखा गया इसलिए 'सुल्हे-हुदैबिया' (हुदैबिया का समझौता) के नाम से मशहूर हुआ।

ठीक उस समय जबकि समझौता लिखा जा रहा था, एक व्यक्ति आया और मुसलमानों के सामने गिर पड़ा। उसके हाथों में हथकड़ियाँ थीं। पाँव में बेड़ियाँ थीं। चेहरे से मज़लूमी ज़ाहिर हो रही थी। शरीर से बेकसी टपक रही थी। यह मज़लूम क़ुरैश का आदमी था, सुहैल-बिन-अम्र का बेटा था, अबू-जन्दल *(रज़ि.)* उसका नाम था। उसके लिए मक्का में जीना दूभर था। केवल इस जुर्म में कि वह मुसलमान हो गया था। अपने रब का बन्दा बन गया था। न जाने किस तरह वह घिसटता-भागता आया था कि किसी तरह क़ुरैश से छुटकारा मिल जाए।

सुहैल ने अबू-जन्दल *(रज़ि.)* को देखा तो बदन में आग लग गई। उसने आप *(सल्ल.)* से कहा—

"यह मेरा लड़का हैं। मैं इसका सरपरस्त हूँ। अगर इसे रोक लिया गया तो समझौते का उल्लंघन होगा।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "अभी समझौता लिखा कब गया?"

सुहैल : "लिखा गया हो या न लिखा गया हो, अगर उसे रोका गया तो हमको सुलह भी मंज़ूर नहीं।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "अच्छा, हम इन्हें रोकेंगे नहीं, अलबत्ता तुमसे प्रार्थना करते हैं इन्हें यहीं छोड़ दो।"

सुहैल : "यह कभी नहीं हो सकता।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने कई बार कहा, लेकिन वह तैयार न हुआ। अपनी ज़िद पर अड़ा रहा। आप *(सल्ल.)* को बहुत दुख हुआ। कुछ देर आप सिर झुकाए बैठे रहे। फिर आपने अबू-जन्दल *(रज़ि.)* की ओर रुख़ किया और दर्द भरे शब्दों में फ़रमाया—

"अबू-जन्दल! सब्र से काम लो, अल्लाह तुम्हारे लिए और दूसरे मज़लूमों के लिए अवश्य कोई रास्ता निकालेगा। अब सुलह हो चुकी। हम वचन भंग नहीं कर सकते।"

सुहैल ने बेटे की गर्दन पकड़ी और घसीटता हुआ चला। अबू-जन्दल *(रज़ि.)* मुसलमानों को पुकारते रहे। दर्द भरी आवाज़ में कहते रहे—

"मुसलमानो! क्या फिर मुझे इस दशा में देखना चाहते हो। मैं इस्लाम अपना चुका हूँ। क्या फिर मुझे अधर्मियों के पंजे में दे रहे हो?"

मुसलमान यह दर्दनाक दृश्य देखकर तड़प उठे। हज़रत उमर *(रज़ि.)* से रहा न गया। उन्होंने तलवार उठाई और अबू-जन्दल *(रज़ि.)* की तरफ़ बढ़ाई कि लो, इससे अपना बचाव करो। लेकिन अबू-जन्दल *(रज़ि.)* ने इसकी हिम्मत न की। ज़बरदस्ती उन्हें मक्का ले जाया गया। इधर मुसलमान ग़म और ग़ुस्से की आग में सुलगते रहे।

(4)

हुदैबिया में मुशरिकों से समझौता करने के बाद मुसलमान मदीना लौट आए। लेकिन उनका दिल बुझा-बुझा सा था कि क़ुरैश तो शर्तें लगाएँ और मुसलमान इन अन्याय-पूर्ण शर्तों के सामने सिर झुका दें। हज़रत अबू-जन्दल *(रज़ि.)* की दर्दनाक घटना उनकी निगाहों में फिर रही थी जिससे उनकी आँखों की नींद और दिल का चैन जाता रहा था। इतने में क़ुरैश का एक और आदमी भाग कर आया, उसने मुसलमान होने का एलान किया और आप *(सल्ल.)* की पनाह में आना चाहा। ये हज़रत अबू-बसीर *(रज़ि.)* थे। बहुत ही सच्चे ओर नेक दिल मुसलमान थे। वे अधर्मियों के अत्याचारों से तंग आकर भाग आए थे। पीछे-पीछे मक्का से दो आदमी और आए। उन दोनों ने इनकी वापसी का मुतालबा किया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* मजबूर थे। कलेजे पर पत्थर रखकर बेचारे अबू-बसीर *(रज़ि.)* को उन दोनों के हवाले कर दिया। दोनों ने मुसलमानों के सामने उन्हें क़ैद किया और साथ लेकर मक्का की ओर चल दिए। मुसलमान हसरत और अफ़सोस से उन्हें तकते रहे। उनकी मज़लूमी और अपनी बेबसी पर आँसू बहाते रहे।

वे दोनों आदमी हज़रत अबू-बसीर *(रज़ि.)* को लेकर ज़ुल-हुलैफ़ा पहुँचे। वहाँ मौक़ा पाकर हज़रत अबू-बसीर *(रज़ि.)* ने एक को क़त्ल कर दिया। दूसरा सिर पर पैर रखकर भागा और मदीना पहुँचकर आप *(सल्ल.)* से शिकायत की। कुछ ही देर में हज़रत अबू-बसीर *(रज़ि.)* भी मदीना पहुँच गए और प्यारे नबी *(सल्ल.)* से कहा "अल्लाह के रसूल! आपने मुझे वापस कर दिया था। अब आप पर कोई ज़िम्मेदारी नहीं।" यह कहकर मदीना से चले गए और रेगिस्तान में घूमते रहे। फिर समुद्र के तट पर पहुँचे और वहीं ठहर गए। क़ुरैश का कोई क़ाफ़िला उधर से

गुज़रता तो उस पर छापा मारते। जो कुछ हाथ आता ले भागते। मक्का में बहुत से मुसलमान पड़े हुए थे और क़ुरैश की ज़्यादतियों का निशाना बन रहे थे। समझौते की वजह से वे मदीना नहीं जा सकते थे। जब उन्हें पता चला कि एक नया ठिकाना पैदा हो गया है, वे भाग-भागकर वहीं आ गए। अब एक ताक़तवर टोली तैयार हो गई, जिसने क़ुरैश के क़ाफ़िलों की नाक में दम कर दिया। वे उनका सारा सामान लूट लेते और पहाड़ी दर्रों में जा छिपते।

क़ुरैश ने बहुत कोशिश की, लेकिन उनपर क़ाबू न पा सके। आख़िर वे तंग आ गए। उन्होंने अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के पास कहला भेजा कि हम अपनी शर्त से बाज़ आए। आप तटवर्ती मुसलमानों को अपने पास बुला लीजिए। आप *(सल्ल.)* ने उन सारे मुसलमानों को मदीना बुला लिया।

मुसलमानों को बड़ा ताज्जुब था कि जो शर्त उनके सबसे ज़्यादा ख़िलाफ़ थी और क़ुरैश के हक़ में थी, क़ुरैश ने उसे कैसे ख़त्म कर दिया। लेकिन जब इसका सबब मालूम हुआ तो उनका ताज्जुब ख़त्म हो गया। उन्होंने देखा कि हुदैबिया का समझौता जिसे वे खुली हुई हार समझ रहे थे, कितनी बड़ी जीत साबित हुई। उस समय उन्हें हुदैबिया की हिकमतें नज़र आईं जो इससे पहले निगाहों से ओझल थीं।

अगले साल मुसलमान मक्का गए। वहाँ तीन दिन ठहरे। तवाफ़ और ज़ियारत की। फिर मदीना लौट आए। क़ुरैश ने भी अपना वादा निभाया और मुसलमानों से कोई छेड़-छाड़ न की।

हिजरत का आठवाँ साल शुरू हो गया। इस साल बहुत बड़ी तादाद में लोग मुसलमान हुए। क़ुरैश के गरोह के नामी बहादुर टूट-टूटकर इस्लाम की गोद में आ गए। ख़ालिद-बिन-वलीद *(रज़ि.)* और अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* का इस्लाम भी इसी ज़माने की यादगार है।

हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* क़ुरैश के सबसे बड़े कमांडर थे और हज़रत अम्र-बिन-आस *(रज़ि.)* 'अरब का दिमाग़' समझे जाते थे। आगे चलकर यही दोनों इस्लाम की फ़ौज के दो मशहूर कमांडर बने। एक ने सीरिया में इस्लाम का झण्डा लहराया तो दूसरा मिस्र के विजेता के नाम से मशहूर हुआ।

ख़ुज़ाआ और बक्र अरब के दो मशहूर क़बीले थे। उनमें एक

ज़माने से दुश्मनी चली आ रही थी। जब इस्लाम उनके सामने ख़तरा बनकर ज़ाहिर हुआ तो वे आपस की दुश्मनी भूल गए और इस्लाम को मिटाने में तन-मन-धन से लग गए। हुदैबिया का समझौता हुआ तो बक्र ने सोचा कि अब इस्लाम का ख़तरा जाता रहा। अब दुश्मन से बदला लेने का वक़्त आ गया। उन्होंने खुज़ाआ पर हमला कर दिया। हुदैबिया के समझौते के अनुसार कुछ क़बीलों ने मक्कावालों का साथ दिया था और कुछ मुसलमानों के साथ हो गए थे। ख़ुज़ाआ का क़बीला मुसलमानों का हमदर्द था। वह मुसलमानों के साथ हो गया था और उनके दुश्मन बक्र क़ुरैश के साथ थे। क़ुरैश के किसी साथी क़बीले का मुसलमानों के किसी साथी क़बीले पर हमला करना समझौते को तोड़ना था। बक्र ने ख़ुज़ाआ पर हमला किया था। यही बात समझौता तोड़ने के लिए काफ़ी थी। लेकिन इसी पर बस न था। क़ुरैश ने भी बक्र की मदद की। उनके बहादुरों ने रूप बदल-बदल कर ख़ुज़ाआ पर तलवारें चलाईं। ख़ुज़ाआ ने मजबूर होकर काबा में पनाह ली। ज़ालिमों ने काबा की इज़्ज़त का भी ख़याल न किया और उसमें घुस-घुस कर बे-धड़क ख़ून बहाया। कुछ आदमी भागकर मदीना पहुँचे। आप *(सल्ल.)* से फ़रियाद की। ख़ुज़ाआ की मज़लूमी की दास्तान सुनी तो आप *(सल्ल.)* को बड़ा दुःख हुआ। समझौते के अनुसार आप (सल्ल॰) पर लाज़िमी थी। आप *(सल्ल.)* ने तुरन्त क़ुरैश के पास आदमी दौड़ाया और तीन शर्तें पेश कीं कि इनमें से कोई एक मंज़ूर करो :

(1) ख़ुज़ाआ के जितने आदमी मारे गए हैं उनका प्राण-मूल्य अदा करो।

(2) बक्र से अलग हो जाओ।

(3) एलान कर दो कि हुदैबिया का समझौता टूट गया।

क़ुरैश का एक सरदार सबकी तरफ़ से बोला, "तीसरी शर्त मंज़ूर है। अब हममें तुम में समझौता नहीं रहा।" कहने को तो उसने यह कह दिया, लेकिन आदमी चला गया तो क़ुरैश बहुत पछताए। तुरन्त अबू-सुफ़ियान को नुमाइन्दा बनाकर मदीना दौड़ाया कि समझौत को ताज़ा करे और आप *(सल्ल.)* से मुहलत माँगे।

अबू-सुफ़ियान की एक बेटी उम्मे-हबीबा *(रज़ि.)* थीं। ये प्यारे नबी *(सल्ल.)* को ब्याहीं थीं और मदीना ही में रहती थीं। अबू-सुफ़ियान

सबसे पहले बेटी के घर पहुँचा। हो सकता था कि मुद्दत के बाद बाप का चेहरा देखकर बेटी का दिल भर आता और पुरानी यादें ताज़ा हो जातीं। लेकिन यहाँ तो इस्लाम की मुहब्बत दिल में घर कर चुकी थी और सीने में कुफ़्र से नफ़रत की आग सुलग रही थी। बेटी ने बाप से सीधे मुँह बात न की।

अबू-सुफ़ियान निराश होकर वहाँ से चल दिया। वह समझ गया कि बेटी कोई मदद नहीं कर सकती। वह आप *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर हुआ और क़ुरैश का पैग़ाम सुनाया। आप कुछ न बोले।

अब वह हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* के पास पहुँचा और उन्हें बीच में डालना चाहा, लेकिन उन्होंने भी कानों पर हाथ धर लिए और कुछ नाराज़ भी हुए।

वहाँ से निराश होकर वह हज़रत उमर *(रज़ि.)* के पास पहुँचा। देखा तो वे सबसे ज़्यादा बिफरे हुए थे। उसकी एक बात भी सुनने को तैयार न थे।

अब वह हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* के पास पहुँचा। हज़रत हसन *(रज़ि.)* अभी बच्चे ही थे। उनकी गोद में हुमक रहे थे। अबू-सुफ़ियान ने कहा कि इस बच्चे से सिर्फ़ इतना कहला दो, "मैंने दोनों पक्षों में बीच-बचाव करा दिया। अगर यह इतना ही कह दे तो आज से सारे अरब का सरदार कहलाएगा। बोलो! ऐसा कर सकती हो?"

हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* ने कहा :

"अबू-सुफ़ियान! तुम्हें मालूम है, बच्चे इन मामलों में क्या कर सकते हैं! फिर आप *(सल्ल.)* के मुक़ाबले में कौन पनाह दे सकता है?"

इनसे भी बात न बनी तो उसने हज़रत अली *(रज़ि.)* के सामने मसला रखा। उन्होंने कहा, "प्यारे नबी *(सल्ल.)* जो तय कर चुके हैं, उसके बारे में कोई क्या बोल सकता है। बस एक सूरत है। तुम मस्जिद में जाकर एलान कर दो कि मैं हुदैबिया का समझौता बहाल करता हूँ।" उसने यही किया और तुरन्त मक्का लौट गया। मक्का पहुँचकर जब लोगों ने उससे पूछा और उसने अपना कारनामा बयान किया तो लोगों ने उसे बुरा भला कहा और कहा, यह तो कुछ भी न हुआ। तुमसे तो अली *(रज़ि.)* ने मज़ाक़ किया और तुम इतना भी न समझ सके? कहीं इस तरह समझौता बहाल हुआ करता है?

एक बार फिर क़ुरैशी सरदार मशवरे के लिए जमा हुए और फ़ैसला किया कि ख़ुज़ाआ से सुलह कर ली जाए। उनके दो आदमी मारे गए हैं, उनका प्राण-मूल्य दे दिया जाए, ताकि मुहम्मद अगर मक्का पर हमला करें तो वे उनका साथ न दें।

बात तय हो गई। बुदैल मक्का ही में रहते थे। वे ख़ुज़ाआ के बहुत बड़े रईस और बाइज़्ज़त व्यक्ति थे। अबू-सुफ़ियान ने उनसे बात पक्की कर ली। जो लोग मारे गए थे, उनका प्राण-मूल्य भेज दिया। फिर ये दोनों साथ ही ख़ुज़ाआ पहुँचे, ताकि सुलह की बिलकुल पक्की और इत्मीनान बख़्श बात हो जाए।

(5)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मुसलमानों को युद्ध की तैयारी का आदेश दिया और इस्लामी क़बीलों के नाम पैग़ाम भेजा—

"जो अल्लाह और आख़िरत पर ईमान रखता हो, रमज़ान से पहले ही मदीना आ जाए।"

मुसलमानों ने आप *(सल्ल.)* की आवाज़ पर लब्बैक कहा। विभिन्न क़बीलों ने पूरी तैयारी के साथ मदीना की ओर कूच किया। रमज़ान की दसवीं तारीख़ थी। हिजरत का आठवाँ साल था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* दस हज़ार बहादुरों के साथ मक्का की ओर बढ़े। रास्ते में आपके चचा अब्बास *(रज़ि.)* मिले। ये मुसलमान हो चुके थे। अब अपने घरवालों के साथ मक्का से आ रहे थे। आपने देखते ही उनका स्वागत किया। बहुत ही मुहब्बत से मिले और उनके बच्चों को आराम और आदर से मदीना भिजवा दिया।

इस्लामी लश्कर ख़ुज़ाआ के चश्मे पर पहुँच गया। वहाँ पहुँचकर वह एक बड़े मैदान में ठहर गया। लोगों ने आराम करने के लिए ख़ेमे लगाए। हर तरफ़ अंधेरा छा चुका था। आप *(सल्ल.)* ने आदेश दिया कि प्रत्येक क़बीला अलग-अलग आग जलाए। इसका मक़सद यह था कि देखनेवालों पर इस्लामी ताक़त की धाक बैठे। लोगों ने ऐसा ही किया।

पहरा देनेवालों में हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* भी शामिल थे। ये एक ऊँचे टीले पर खड़े-खड़े इधर-उधर नज़रें दौड़ा रहे थे। निकट ही उन्हें दो चेहरे नज़र आए। उनकी बात-चीत भी कानों में पड़ी।

पहला : "बुदैल! देख रहे हो? मैंने तो कभी ऐसी आग देखी नहीं।"

दूसरा : "अबू-सुफ़ियान! ख़ुदा की क़सम यह ख़ुज़ाआ की आग है। मालूम होता है कि लड़ाई की तैयारियाँ हो रही हैं।"

अबू-सुफ़ियान : "क़ियामत तक ख़ुज़ाआ की यह शान नहीं हो सकती। यह आग का जंगल और यह आदमियों का ठाठें मारता समुद्र!"

हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* से रहा न गया। अचानक बोल उठे—

"अबू-सुफ़ियान! मैं अब्बास बिन-अब्दुल-मुत्तलिब हूँ और यह मुहम्मद-बिन-अब्दुल्लाह *(सल्ल.)* की आग है।"

अबू-सुफ़ियान चौंक पड़ा। उसने हैरत से पूछा—

"मक्का से अकेले यहाँ कैसे आना हुआ?"

अब्बास *(रज़ि.)* : "अल्लाह ने मुझे हिदायत दी। अब मैं इस्लामी लश्कर का सिपाही हूँ।"

दोनों ने निकट आकर हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* से कहा—

"ख़ुज़ाआ और क़ुरैश में सुलह की बात पक्की हो चुकी है। अब ज़रा मुहम्मद से क़ुरैश के लिए सिफ़ारिश कर दो।"

अब्बास *(रज़ि.)* : "पहले तुम दोनों इस्लाम क़बूल करो।"

बुदैल : "मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।"

बुदैल उसी समय मुसलमान हो गए लेकिन अबू-सुफ़ियान हिचकिचाता रहा। हज़रत अब्बास *(रज़ि.)* बार-बार कहते रहे। आख़िर ख़ुदा ने तौफ़ीक़ दी। उसका सीना भी इस्लाम के लिए खुल गया। और वह पुकार उठा—

"मैं गवाही देता हूँ कि अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं और मैं गवाही देता हूँ कि मुहम्मद अल्लाह के रसूल हैं।"

हज़रत अब्बास दोनों को लेकर आप *(सल्ल.)* की सेवा में हाज़िर हुए और आप *(सल्ल.)* को ख़ुश-ख़बरी सुनाई। सुनकर आप बहुत ख़ुश हुए और दोनों को मुबारकबाद दी।

मक्का अब बिलकुल सामने था। आप *(सल्ल.)* ने लश्कर को कई हिस्सों में बाँट दिया। हर टोली का अलग-अलग कमांडर बनाया। सबको

आदेश दिया कि शहर में अलग-अलग दरवाज़ों से दाख़िल हों और जब तक कोई पहल न करे उसपर हाथ न उठाएँ।

आप *(सल्ल.)* ने देखा हज़रत अबू-सुफ़ियान का सिर झुका हुआ था। चेहरे पर उदासी थी। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया, "क्या बात है अबू-हंज़ला (अबू-सुफ़ियान) हमारे साथ मशवरों में शरीक नहीं हो रहे हो?"

अबू-सुफ़ियान *(रज़ि.)* : "अल्लाह के रसूल! अब कुरैश पर आपका ग़लबा है। आपके लश्कर में कुछ ऐसे भी हैं, जो बदले की भावना से प्रेरित हैं। आपसे अनुरोध है कि विजयी हों तो नर्मी से काम लें। दुश्मनों को हँसने का मौक़ा न दें।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* : "नहीं, नहीं, अबू-सुफ़ियान तुम इत्मीनान रखो। मक्का में तो मुसलमानों के भी भाई-बन्द हैं। मुहाजिरों के भी बाप-चचा हैं। वहीं पर बाइज़्ज़त घर (काबा) भी तो है, इबराहीम *(अलैहि.)* और इस्माईल *(अलैहि.)* का घर।"

अबू-सुफ़ियान ! अपनी क़ौम में जाओ और उनसे कहो—

'मुहम्मद मक्का में एक अच्छे भाई की तरह दाख़िल होगा। आज न कोई विजयी है न पराजित। न कोई ग़ालिब है न मग़लूब। आज तो प्रेम और एकता का दिन है। आज तो चैन, और सुकून का दिन है। अबू-सुफ़ियान के घर में जो दाख़िल हो जाए, उसे अमान (शरण) है।'

जो घर का दरवाज़ा बन्द कर ले उसको अमान है और जो काबा में दाख़िल हो जाए उसे भी अमान है।

अबू-सुफ़ियान *(रज़ि.)* ने ये प्रेम और मुहब्बत भरी बातें सुनीं तो बहुत ख़ुश हुए। दौड़े हुए मक्का गए कि लोगों को यह ख़ुश-ख़बरी सुनाएँ। यह ख़ुशख़बरी पूरे शहर में मिनटों में फैल गई। काँपते और धड़कते दिलों को सुकून और इत्मीनान की ठण्डक नसीब हुई।

मुशरिकों ने हथियार डाल दिए। घरों के दरवाज़े बन्द कर लिए और छतों और खिड़कियों से झाँकने लगे। कुछ बहुदेववादी, जो अभी तक अज्ञान के दम्भ में थे, आस-पास के पहाड़ों पर चले गए। वहाँ से सारा मंज़र देख रहे थे। इस्लाम का लश्कर इस्लाम के केन्द्र में दाख़िल हो रहा था। आज इस्लाम की उन्नति का चाँद मक्का के क्षितिज पर चमक रहा था।

मुसलमान पूरी होशियारी के साथ शहर में दाख़िल हो गए। पूरे सुकून और इत्मीनान के साथ। न कहीं तलवार चली न ख़ून बहा।

अलबत्ता हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद *(रज़ि.)* जिस ओर से दाख़िल हो रहे थे क़ुरैशी बहादुरों की एक टोली ने उन्हें रोकने की कोशिश की। मजबूर होकर हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* और उनके जाँबाज़ साथियों को टक्कर लेनी पड़ी। इस टक्कर के नतीजे में क़ुरैश के 24 और हुज़ैल क़बीले के चार सिपाही काम आ गए। एक दूसरी रिवायत के अनुसार कुल 13 मुशरिक मारे गए और तीन मुसलमान शहीद हुए। आख़िरकार मुशरिक दुश्मन बुरी तरह पराजित हुए और हज़रत ख़ालिद *(रज़ि.)* अपने साथियों के साथ मक्के में दाख़िल हो गए।

जब पूरी तरह सुकून का माहौल पैदा हो गया और स्थिति सामान्य हो गई। तो आप *(सल्ल.)* ने काबा जाने का इरादा किया। आह! वह घर जिसे अल्लाह के प्यारे हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)* ने बनाया था, वह काबा जो बुत शिकन रसूल (हज़रत इबराहीम *(अलैहि.)*) की यादगार था, आज तीन सौ साठ बुतों से आबाद था। अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* के हाथ में एक छड़ी थी। उसकी नोक से बुतों को ठोंके देते जाते और मुख से यह शब्द कहते जाते—

"सत्य आ गया और असत्य मिट गया। निसन्देह असत्य को तो मिटना ही था।" (क़ुरआन)

फिर आप *(सल्ल.)* ने काबा की चाबी मँगाई। दरवाज़ा खुलवाया। देखा तो अन्दर बुतों के विरोधी इबराहीम *(अलैहि.)* की तस्वीर थी और उनके बेटे इस्माईल की भी। उनके हाथों में पाँसे के तीर थे। आप *(सल्ल.)* ने उन्हें मिटाने का हुक्म दिया। फिर फ़रमाया—

"ख़ुदा ज़ालिमों को बर्बाद करे। ये बेचारे तो ख़ुदा के पैग़म्बर थे और जुए से कोसों दूर थे।" हज़रत उमर *(रज़ि.)* अन्दर दाख़िल हुए। जितनी तस्वीरें थीं, सब मिटा दीं। अल्लाह का घर बिलकुल पाक-साफ़ हो गया तो आप *(सल्ल.)* अन्दर गए। साथ में हज़रत बिलाल और हज़रत तलहा *(रज़ि.)* भी थे। वहाँ आपने दो रकअत नमाज़ अदा की और कई बार तकबीरें कहीं।

काबा के सामने मक्कावालों की भीड़ थी। लोग क़िस्मत का फ़ैसला

सुनने के लिए बेताब खड़े थे। उस समय आप *(सल्ल.)* के मुख से ये यादगार शब्द सुने गए—

"अल्लाह के सिवा कोई बन्दगी के लायक़ नहीं। वह अकेला है। उसका कोई शरीक नहीं। उसने अपना वादा सच्चा किया। उसने अपने बन्दे की मदद की और तमाम फ़ौजों को अकेले नीचा दिखाया। सुन लो, गर्व और घमण्ड की सारी चीज़ें, ख़ून के तमाम दावे, माल के सभी मुतालबे मेरे इन क़दमों के नीचे हैं। हाँ सिर्फ़ काबा की देखभाल और हाजियों को पानी पिलाना इससे अलग है।

क़ुरैश के लोगो! अब अज्ञानता के अभिमान और पारिवारिक गर्व को अल्लाह ने मिटा दिया। तमाम इनसान आदम की औलाद हैं और आदम मिट्टी से बने हैं।"

फिर आप *(सल्ल.)* ने क़ुरआन की यह आयत पढ़ी—

"लोगो! हमने तुमको एक मर्द और एक औरत से पैदा किया और तुम्हारे बहुत से क़बीले और ख़ानदान बनाए कि तुम एक दूसरे को पहचान सको। अल्लाह की नज़र में तुममें सबसे ज़्यादा इज़्ज़तवाला वह है जो तुममें सबसे ज़्यादा परहेज़गार हो। बेशक अल्लाह जाननेवाला और ख़बर रखनेवाला है।" (क़ुरआन, 49:13)

फिर आप *(सल्ल.)* ने एलान फ़रमाया—

"अल्लाह और उसके रसूल ने शराब को ख़रीदना और बेचना हराम कर दिया।"

फिर सरापा दया प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने क़ुरैश के लोगों की तरफ़ नज़र उठाई और सख़्त अन्दाज़ में पूछा, "क़ुरैश के लोगो! जानते हो, मैं तुम्हारे साथ क्या करनेवाला हूँ?"

सब एक साथ पुकार उठे—

"अच्छा व्यवहार। आप अच्छे भाई हैं और अच्छे भाई के बेटे हैं।" आपने फ़रमाया—

"आज तुम्हारी कोई पकड़ नहीं। जाओ तुम सब आज़ाद हो।"

ये थे कौन लोग..........! क्या तुमने यह भी सोचा? ये प्यारे नबी *(सल्ल.)* के बाग़ी थे। ये दयामूर्ति मुहम्मद *(सल्ल.)* के दुश्मन थे। इनमें वे लोग भी थे जो इस्लाम को मिटा देने के लिए जान की बाज़ी लगाए

हुए थे और वे भी थे जो आपके ख़िलाफ़ ज़हर उगलने के लिए नियुक्त थे। इनमें वे भी थे, जिनकी तलवारों ने प्यारे नबी *(सल्ल.)* के साथ गुस्ताख़ियाँ की थीं। और वे भी थे, जिन्होंने आपकी राह में काँटे बिछाए थे। इनमें वे भी थे जिन्होंने आप *(सल्ल.)* पर बेदर्दी से पत्थर बरसाए थे और वे भी थे जिन्होंने आपकी एड़ियाँ लहूलुहान कर दी थीं। इनमें वे भी थे, जो प्यारे नबी के साथियों को तपती हुई रेत पर लिटा कर चट्टानों से दबा देते थे और वे भी थे, जो उनके कमज़ोर और दुर्बल शरीर को लोहे की गर्म छड़ों से दाग़ते थे।

अत्याचार और ज़्यादती के इस इतिहास को याद रखो। फिर सरापा दया हज़रत मुहम्मद *(सल्ल.)* की दया और कृपा का अन्दाज़ा लगाओ।

अल्लाह रे वुसअत[1] तेरे दामाने-करम[2] की।
इस बहर[3] का मिलता नहीं ढूँढे से किनारा।।

1. वुसअत : कुशादगी, विशालता, फैलाव, विस्तार
2. दामने-करम : कृपा और अनुग्रह रूपी दामन
3. बहर : समुद्र

जीवन के अन्तिम दिन

(1) प्यारे नबी *(सल्ल.)* का आख़िरी हज

(2) अरफ़ात का ऐतिहासिक भाषण

(3) सत्य धर्म सम्पूर्ण

(4) अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* की बीमारी

(5) मर्ज़ बढ़ता ही गया

(6) अत्यन्त गम्भीर हालत

(7) मानवता के उपकारकर्ता *(सल्ल.)* का अन्तिम भाषण

(8) आप *(सल्ल.)* के अन्तिम शब्द

(9) पवित्रात्मा अल्लाह से जा मिली!

(10) बलिहारियों का ग़म

(11) हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का आँखें खोल देनेवाला भाषण

(12) ख़लीफ़ा का चुनाव

(13) प्यारे नबी *(सल्ल.)* के अन्तिम दर्शन

(14) कफ़न-दफ़न

(1)

हिजरत का दसवाँ साल था। प्यारे नबी *(सल्ल.)* हज के इरादे से मक्का रवाना हुए। आपके साथ एक लाख से ज़्यादा बहादुर साथियों का क़ाफ़िला था। इस हज को हिज्जतुल-वदा कहते हैं। इसलिए कि यह हज आपका आख़िरी हज था। इसके बाद आपको मक्का, काबा और अरफ़ात की ज़ियारत का मौक़ा न मिल सका।

कुछ लोग इस हज को हिज्जतुल-बलाग़ भी कहते हैं। क्योंकि रब का जो पैग़ाम पहुँचाने आप *(सल्ल.)* दुनिया में आए थे, वह यहाँ पूरा हो गया।

वह पैग़ाम था, इस्लाम धर्म।

हज के अवसर पर प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने मुसलमानों के सामने एक तक़रीर भी की। वह तक़रीर वास्तव में इस्लाम का दस्तूर था।

शुरू करते हुए आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"प्यारे भाइयो! मैं जो कुछ कहूँ, ध्यान से सुनो, क्योंकि हो सकता है, इस साल के बाद मैं तुमसे यहाँ न मिल सकूँ।

याद रखो! मेरी बातों पर अमल करोगे तो फलते-फूलते रहोगे"

इसके बाद आप *(सल्ल.)* ने सारे मुसलमानों को आख़िरी वसीयतें कीं। इन वसीयतों का निचोड़ यह है—

"अल्लाह की किताब और उसके रसूल की सुन्नत मज़बूती से पकड़े रहना। लोगों की जान, माल और इज़्ज़त का ख़याल रखना।

कोई अमानत रखे तो उसमें ख़ियानत न करना।

ख़ून-ख़राबे और ब्याज के क़रीब न फटकना।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने तक़रीर करते हुए यह भी बताया कि मुसलमान आपस में कैसे रहें। फिर यह भी बताया कि आम इनसानों के साथ उनका क्या बर्ताव हो। आप *(सल्ल.)* ने समानता और बराबरी पर बहुत ज़ोर दिया। ऊँच-नीच और ज़ात-पात की ज़ंजीरों को टुकड़े-टुकड़े कर दिया। आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया :

"लोगो! तुम्हारा रब एक है। तुम्हारा बाप एक है। तुम सब आदम के बेटे हो और आदम मिट्टी से बने हैं। ख़ुदा के नज़दीक तुममें सबसे बेहतर वह है, जो ख़ुदा से सबसे ज़्यादा डरनेवाला हो।

सुन लो! किसी अरबी को ग़ैर-अरबी पर और किसी ग़ैर-अरबी को अरबी पर कोई बड़ाई नहीं। बड़ाई का पैमाना तो केवल तक़्वा (अर्थात ख़ुदा की नाफ़रमानी से बचना) है।"

तक़रीर कर चुके तो आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह! क्या मैंने तेरा पैग़ाम पहुँचा दिया?"

एक लाख ज़बानें एक साथ बोल उठीं—

"हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल! आपने रब का पैग़ाम पहुँचा दिया।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने तीन बार फ़रमाया : "ऐ अल्लाह! तू गवाह रहा।"

तक़रीर ख़त्म हो गई तो हज़रत बिलाल *(रज़ि.)* ने अज़ान दी और आपने ज़ुहर और अस्र की नमाज़ एक साथ अदा की। ठीक उस समय जबकि आप नुबूवत का यह आख़िरी फ़र्ज़ अदा कर रहे थे, अल्लाह के पास से यह ख़ुशख़बरी आई—

> "आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारे दीन को पूरा कर दिया और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दी और तुम्हारे लिए दीन इस्लाम को पसन्द किया।" (क़ुरआन, 5:3)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यह आयत पढ़ी तो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* रो पड़े। वे समझ गए कि अब आपके इस दुनिया से जाने के दिन आ गए। इसी प्रकार जब आप पर यह सूरः उतरी तब भी लोगों ने देखा कि हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* रो रहे थे और आँखों से आँसुओं के दो सोते जारी थे—

> "जब अल्लाह की मदद आ जाए और विजय प्राप्त हो जाए और तुम देखो कि लोग अल्लाह के दीन में दल के दल दाख़िल हो रहे हैं तो अपने रब की तारीफ़ और बड़ाई बयान करो और उससे नजात की दुआ करो। वह तो बहुत ही तौबा क़बूल करनेवाला है।" (क़ुरआन, सूरा नस्र)

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने ये आयतें सुनीं तो समझ गए कि

आप *(सल्ल.)* जिस काम के लिए दुनिया में आए थे, वह काम अब पूरा हो गया। अब आप हमारे बीच सिर्फ़ कुछ दिन के मेहमान हैं। यह विचार आना था कि दिल बेक़ाबू हो गया और आँखों से गर्म-गर्म आँसू टपकने लगे।

भला अबू-बक्र (रज़ि.) क्यों न रोते? प्यारे नबी *(सल्ल.)* उनको सबसे ज़्यादा प्रिय थे। वही क्या हर-हर मुसलमान आप *(सल्ल.)* पर दिल और जान से न्योछावर था। आप *(सल्ल.)* के सामने जान की कोई क़ीमत न थी। माल का कोई महत्त्व न था और औलाद की भी कोई परवाह न थी।

(2)

हिज्जतुल-वदा को अभी तीन महीने से ज़्यादा न गुज़रे थे कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* पर बीमारी का हमला हुआ— और वह भी इतना ज़ोरदार कि इससे पहले कभी न हुआ था।

बीमारी की शुरुआत इस तरह हुई कि एक रात आप *(सल्ल.)* बिस्तर से उठे। अपने गुलाम अबू-मुऐहबा को उठाया और फ़रमाया अबू-मुऐहबा! मुझे अल्लाह का हुक्म मिला है। इस वक़्त जाकर बक़ीअ (क़ब्रिस्तान) वालों के लिए मग़फ़िरत की दुआ करनी है। तुम भी मेरे साथ चलो! आप *(सल्ल.)* उन्हें साथ लेकर घर से निकले! क़ब्रिस्तान पहुँचे तो फ़रमाया—

"तुम पर सलामती हो, ऐ क़ब्रवालो!"

तुम्हें मुबारक हो वह जगह जहाँ तुम पहुँच गए। तुम्हारी जगहें ज़िन्दा रहनेवालों की जगहों से बेहतर हैं।

मैं देख रहा हूँ कि फ़ितने आ रहे हैं, इतने अन्धकारमय फ़ितने जैसे अँधेरी रात के हिस्से। एक फ़ितने के बाद दूसरा फ़ितना आएगा और बाद में आनेवाला हर फ़ितना अपने से पहलेवाले फ़ितनों से बदतर होगा। इस अवसर पर आप *(सल्ल.)* ने बहुत देर तक क़ब्रिस्तानवालों के लिए दुआएँ कीं। ग़ुलाम कहते हैं कि फिर आप मेरी तरफ़ मुतवज्जेह हुए और कहा, "अबू-मुऐहबा! मुझे दुनिया के ख़ज़ानों की कुंजियाँ दी गईं कि मैं उनके बीच हमेशा रहूँ कि जन्नत में चला जाऊँ। एक ओर दुनिया के ये ख़ज़ाने हैं और फिर जन्नत। दूसरी ओर अपने रब की

मुलाक़ात है और जन्नत।

"मेरे माँ बाप आप पर क़ुरबान जाएँ आप दुनिया के ख़ज़ानों में रहना पसन्द कर लीजिए बाद में जन्नत में चले जाइए"

अबू-मुऐहबा ने बड़ी विनम्रता के साथ अपने दिल की बात कह दी।

"नहीं, अबू-मुऐहबा! मैंने तो अपने रब से मुलाक़ात और जन्नत को पसन्द कर लिया। नबी *(सल्ल.)* ने अबू-मुवबा का तसल्ली दी।"

फिर नबी (सल्ल.) क़ुब्रिस्तान से वापस आ गए। यह हिजरत का 11वाँ साल था। बुद्ध की रात थी। सफ़र माह की आख़िरी तारीख़ें थीं या रबिउल-अव्वल का पहला हफ़्ता था। जिस रात की सुबह आप *(सल्ल.)* की तबीअत ख़राब हो गई। उस दिन आप हज़रत ज़ैनब *(रज़ि.)* के यहाँ थे।

सुबह को हज़रत आइशा (रज़ि.) के पास से नबी *(सल्ल.)* का गुज़र हुआ। देखा तो वे सिर के दर्द में ग्रस्त थीं और बेक़रारी में कह रही थीं, "हाय मेरा सिर!"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने यह देखकर फ़रमाया, "आइशा, ख़ुदा की क़सम! मेरे सिर में तो और भी ज़्यादा दर्द है। हाय मेरा सिर!"

हज़रत आइशा (रज़ि.) दोबारा कराहीं, "हाय मेरा सिर!!" नबी *(सल्ल.)* ने तफ़रीह के अन्दाज़ में फ़रमाया, "आइशा! क्या नुक़सान है अगर तुम मुझसे पहले मर जाओ? कि ख़ुद मैं अपने हाथों से कफ़न पहनाऊँ, तुम्हारी नमाज़ पढ़ाऊँ और ख़ुद ही अपने हाथों से तुम्हें क़ब्र में उतारूँ!!"

जवान आइशा (रज़ि.) ने जवाब दिया, "कौई और बीवी इसके लिए ज़्यादा अच्छी रहेगी।"

हज़रत आइशा (रज़ि.) की बात सुनी तो नबी *(सल्ल.)* के होंठों पर मुस्कराहट खेलने लगी। लेकिन तकलीफ़ बहुत ज़्यादा थी। आप इससे ज़्यादा तफ़रीह न कर सके।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* का नियम था कि एक-एक दिन प्रत्येक बीवी के यहाँ ठहरते। बीमारी की हालत में भी आपके इस नियम में फ़र्क़ न आया। बारी-बारी आप हर बीवी के यहाँ जाते रहे। पाँच दिन तक ऐसा

ही चलता रहा। फिर हालत बहुत ज़्यादा ख़राब हो गई। चलने-फिरने की ताक़त न रही।

आप *(सल्ल.)* ने सारी बीवियों को बुलाया। उनसे किसी एक के घर में ठहरने की इजाज़त चाही सारी बीवियाँ ख़ुशी से तैयार हो गईं। फिर सबकी मर्ज़ी से हज़रत आइशा *(रज़ि.)* के घर पर ठहरना तय हो गया।

कमज़ोरी बहुत ज़्यादा थी। बिना किसी सहारे के चलना आप *(सल्ल.)* के लिए अब मुमकिन न था। हज़रत अली *(रज़ि.)* और हज़रत फ़ज़्ल-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* आपको सहारा देकर बड़ी परेशानियों से हज़रत आइशा *(रज़ि.)* के यहाँ लाए। सिर-दर्द की ज़्यादती के कारण आपके सिर पर पट्टी बँधी हुई थी। यह बुद्ध का दिन था। आपकी बीमारी को पूरे आठ दिन हो चुके थे।

मुसलमान उदास-उदास थे। बेचैन और बेक़रार थे। क्योंकि उनका प्यारा बीमारी के बिस्तर पर था और बीमारी हर क्षण बढ़ती ही जा रही थी। इससे पहले कभी आप इस तरह बीमार न हुए थे, इसलिए वे और भी ज़्यादा निराश और फ़िक्रमन्द थे।

हिजरत के छटे साल आप *(सल्ल.)* को हल्का सा बुख़ार हुआ था। आपने दो-चार दिन खाने-पीने में परहेज़ किया और उसका असर जाता रहा।

सातवें साल एक यहूदी औरत ने आप *(सल्ल.)* को ज़हर मिला हुआ गोश्त खिला दिया था। ज़हर के असर से कई दिन बेचैनी रही, लेकिन कुछ दवा-इलाज के बाद उसका असर भी जाता रहा।

ज़िन्दगी में केवल ये दो घटनाएँ हुईं। इसके अलावा आप *(सल्ल.)* हमेशा सेहतमन्द और तन्दुरुस्त रहे और यह कोई हैरत की बात नहीं, क्योंकि आपके उसूल ही कुछ ऐसे थे कि उनका जो भी पालन करे, बीमारी उसकी तरफ़ निगाह न उठाए।

आप *(सल्ल.)* खाना उसी समय खाते जब भूख लगती। खाकर उठते जब भी कुछ भूखे होते।

एक बार की बात है। मिस्र के बादशाह ने आप *(सल्ल.)* के पास तोहफ़े में शहद, दो बाँदियाँ (मारिया और सीरीन) और एक हकीम भेजा।

आप *(सल्ल.)* ने शहद और बाँदियों को स्वीकार कर लिया और हकीम को यह कहकर वापस कर दिया कि हम लोग तो भूख के बिना खाना ही नहीं खाते और जब खाते हैं तो भूख से कम ही खाते हैं। भला बीमारी का यहाँ कहाँ गुज़र?

इसके अलावा आप *(सल्ल.)* हमेशा स्वच्छ रहते। दिन में कम से कम पाँच बार वुज़ू करते। कपड़े पाक-साफ़ रखते। गन्दगी से ख़ुद भी नफ़रत करते और दूसरों को भी पाक-साफ़ रहने का शौक़ दिलाते, फ़रमाते—

"सफ़ाई-सुथराई ईमान का अंग है।"

आप *(सल्ल.)* कभी सुस्ती अैर बेकारी को राह न देते। हमेशा चुस्त और सतर्क रहते, कभी इबादत में व्यस्त होते। कभी मुसलमानों की भलाई के लिए दौड़-धूप करते और उसके लिए रात-दिन एक कर देते।

आप *(सल्ल.)* भोग-विलास के बन्दे और इच्छाओं के पुजारी न थे। आप की इच्छाएँ भी अल्लाह के अधीन थीं। जितनी ग़लत लज़्ज़तें और नुक़्सानदेह दिलचस्पियाँ हैं, उन सबसे आप कोसों दूर थे।

ये ऐसी बातें हैं कि जो भी इनका ख़याल रखे, सेहत और तन्दुरुस्ती उसके पाँव चूमे। यही कारण है कि जब आप *(सल्ल.)* बीमार हुए और तबीअत सँभलती हुई मालूम न हुई तो बीवियाँ बेचैन हो गईं। साथी बेक़रार हो गए।

(3)

प्यारे नबी *(सल्ल.)* की हालत गिरती गई। बुख़ार कभी घट जाता, कभी बढ़ जाता।

जब तक पैरों में दम रहा और चलने-फिरने की ताक़त रही, आप *(सल्ल.)* मस्जिद में जाते रहे और मुसलमानों की इमामत करते रहे। सबसे आख़िरी नमाज़ जो आप *(सल्ल.)* ने पढ़ाई वह मग़रिब की नमाज़ थी। इशा का वक़्त हुआ तो आप *(सल्ल.)* ने पूछा— "नमाज़ हो चुकी?" साथियों ने कहा, "बस आप का इन्तिज़ार है।" आपने बर्तन में पानी भरवाया और ग़ुस्ल किया। उठना चाहा तो बेहोश हो गए। कुछ देर के बाद होश आया तो पूछा, "नमाज़ हो चकी?" साथियों ने फिर कहा— "हुज़ूर का इन्तिज़ार है।" आप फिर नहाए और उठना चाहा। इस बार भी आप बेहोश हो गए। कुछ देर में होश आया तो पूछा— "नमाज़ हो

चुकी?" फिर वही जवाब मिला, "आपका इन्तिज़ार है।" आपके शरीर पर पानी डाला गया। उठने का इरादा किया तो फिर बेहोश हो गए। इस बार होश आया तो फ़रमाया—

"अबू-बक्र *(रज़ि.)* से कहो, वे नमाज़ पढ़ाएँ।"

हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! उनकी आवाज़ बहुत धीमी है। क़ुरआन पढ़ते हैं तो रोते हैं। लोग उनकी आवाज़ सुन नहीं सकेंगे।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने फ़रमाया "उन्हीं से कहो नमाज़ पढ़ाएँ।"

हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने दोबारा वही बात दोहराई।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* तकलीफ़ से बेचैन थे। गुस्से से आवाज़ काफ़ी बुलन्द हो गई। फ़रमाया, "कहो अबू-बक्र से, वही नमाज़ पढ़ाएँगे।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने आदेश का पालन किया और आख़िर तक वे ही नमाज़ पढ़ाते रहे।

इन्तिक़ाल से चार दिन पहले कुछ सुकून हुआ। ज़ुहर का वक़्त था। सात मश्क पानी से आप *(सल्ल.)* ने ग़ुस्ल किया। फिर कपड़े पहने। सिर पर पट्टी बाँधी और फ़ज़्ल-बिन-अब्बास *(रज़ि.)* और सौबान *(रज़ि.)* के सहारे मस्जिद गए। नमाज़ हो रही थी। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* इमाम थे। आहट पाकर उन्होंने पीछे हटना चाहा। लेकिन आपने रोक दिया और उनके पहलू में जाकर बैठ गए। नमाज़ के बाद आप *(सल्ल.)* ने छोटी सी तक़रीर की, "मुसलमानो! मुझे पता चला है, तुम अपने नबी की मौत से घबरा रहे हो। आख़िर ऐसा क्यों? मुझसे पहले जितने नबी आए, सबको मौत आई। आख़िर मैं भी तो उन ही जैसा एक नबी हूँ।"

सुन लो! जिन लोगों ने पहले हिजरत की है। उनके साथ हमेशा अच्छा बर्ताव करना। मुहाजिर भी आपस में अच्छा सुलूक करें। और हाँ, अनसार के साथ भी अच्छा सुलूक करना। जो अनसार भलाई करें, उनके साथ भलाई करना। जो ग़लती करें उन्हें माफ़ कर देना।"

फिर आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"आम मुसलमान बढ़ते जाएँगे। मगर अनसार उसी तरह कम होकर रह जाएँगे, जैसे खाने में नमक। मुसलमानो! वे अपना काम कर चुके। अब तुमको अपना काम करना है। वे मेरे शरीर में मेदे (आमाशय) के

समान हैं। मेरे बाद जो मुसलमानों का ख़लीफ़ा हो, मैं उसको वसीयत करता हूँ कि उनके साथ नेक सुलूक करे।"

फिर आप *(सल्ल.)* ने फ़रमाया—

"मुसलमानो! मैंने वही चीज़ हलाल की है, जो अल्लाह ने हलाल की है। उसी चीज़ को हराम किया है, जिसको अल्लाह ने हराम किया है।

मुसलमानो! किसी को मैंने मारा हो तो यह पीठ हाज़िर है, मुझे भी वह मार ले। किसी को मैंने कुछ कहा हो तो वह भी मुझको कह ले। किसी का मैंने कुछ लिया हो तो वह मुझ से ले ले।"

एक मुसलमान खड़ा हुआ और बोला—

"अल्लाह के रसूल! आपके पास मेरे तीन दिरहम हैं।"

आप *(सल्ल.)* ने उसको तीन दिरहम दिए। फिर फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह के रसूल की बेटी फ़ातिमा!

ऐ अल्लाह के रसूल की फूफी सफ़िय्या!

अल्लाह के यहाँ के लिए कुछ कर लो। मैं तुम्हें अल्लाह से नहीं बचा सकता।"

प्यारे नबी *(सल्ल.)* के पास बैतुलमाल की नौ अशरफ़ियाँ थीं। बीमार हुए तो आशंका हुई कि कहीं ऐसा न हो कि मौत आ जाए और ये अपने ही पास रह जाएँ। हुक्म दिया कि इन्हें ग़रीबों को दे दिया जाए। लेकिन सब लोग तो आप *(सल्ल.)* की देखभाल में व्यस्त थे, इसलिए किसी को आपका हुक्म याद न रहा।

इन्तिक़ाल से एक दिन पहले आपको फिर ख़याल आया तो पूछा—

"वे अशरफ़िया क्या हुईं?"

हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने कहा, "अल्लाह के रसूल! वे घर ही में हैं।"

आप *(सल्ल.)* ने वे अशरफ़ियाँ मँगाईं और हज़रत आइशा *(रज़ि.)* ने हाज़िर कर दीं। उनको आपने हथेली पर रखा और फ़रमाया—

"अगर मुहम्मद को मौत आ गई और ये उसके पास ही रखी रह गईं तो वह अपने रब को क्या जवाब देगा?"

फिर आप *(सल्ल.)* ने उनको कुछ ग़रीब मुसलमानों में बाँट दिया।

तकलीफ़ बहुत बढ़ गई। बुख़ार इतना तेज़ हुआ कि पूरा शरीर जलने लगा। चहेती बेटी फ़ातिमा *(रज़ि.)* रोज़ बाप की ख़िदमत में हाज़िर होतीं। आप उन्हें देखकर स्नेह से खड़े हो जाते, उन्हें चूमते और अपने पास बिठा लेते। आज बला की बेचैनी थी। कमज़ोरी भी बहुत ज़्यादा थी। हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* आईं तो आप उठकर प्यार न कर सके। वे पास आईं। स्वयं उन्होंने आपको चूमा और पहलू में बैठ गईं।

बुख़ार इतना तेज़ था कि बार-बार आप *(सल्ल.)* बेहोश हो जाते। पास ही एक बर्तन में ठण्डा पानी था। आप उसमें हाथ डालते और चेहरे पर मलते। बेचैनी बहुत थी। ठीक उसी वक़्त आपके होंठ हिले और कानों ने ये शब्द सुने—

"यहूदियों और ईसाइयों पर अल्लाह की लानत हो कि वे अपने पैग़म्बरों की क़ब्रों पर सजदे करने लगे।"

सोमवार की रात हुई तो बुख़ार कम हो गया। ऐसा लग रहा था मानो बुख़ार जाता रहा। बेचैनी नाम को न थी। तबीअत को बिलकुल सुकून था। जिसने देखा, समझा आप *(सल्ल.)* अच्छे हो गए। उदास चेहरे फिर चमक उठे। मुरझाए हुए दिल फिर लहलहा उठे।

आप *(सल्ल.)* का कमरा मस्जिद से मिला हुआ था। सुबह हुई तो आपने पर्दा उठाकर देखा कि सच्चे साथी फ़ज्र की नमाज़ में व्यस्त थे। देखकर आप मुस्करा दिए कि अल्लाह की ज़मीन पर आख़िर वह गरोह पैदा हो गया, जो आपकी शिक्षाओं का नमूना बनकर अल्लाह की याद में लगा हुआ है। कुछ आहट हुई तो साथी समझे कि आप बाहर आना चाहते हैं। वे ख़ुशी से बेताब हो गए और क़रीब था कि वे नमाज़ तोड़ दें। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* इमाम थे। उन्होंने चाहा कि पीछे हट जाएँ। लेकिन आप *(सल्ल.)* ने इशारे से मना कर दिया। फिर कमरे के अन्दर होकर पर्दा गिरा दिया। कमज़ोरी इतनी ज़्यादा थी कि पर्दा भी अच्छी तरह न गिरा सके। पैरों पर खड़े होना भी कठिन था, लेकिन साथियों को ख़ुश देखकर आप भी बेहद ख़ुश थे।

कमज़ोरी हर क्षण बढ़ती जा रही थी। मौत धीरे-धीरे सरकती आ रही थी। आपने बर्तन में ठण्डा पानी माँगा। तुरन्त पानी पेश कर दिया गया। आप बार-बार उसमें हाथ डालते, और चेहरे पर मलते। चादर

कभी मुँह पर डाल लेते, कभी हटा लेते। उस समय निरन्तर आपके मुख से ये शब्द निकल रहे थे :

"ऐ अल्लाह! नज़ा (जान निकलने) के समय की परेशानियों को झेलना मेरे लिए आसान कर दे।"

प्यारे बाप की बेचैनी देखकर हज़रत फ़ातिमा *(रज़ि.)* बेचैन हो गईं। वे खुद ब खुद पुकार उठीं, "हाय मेरे बाप की बेचैनी!" आपने सुना तो फ़रमाया, "आज के बाद फिर तुम्हारा बाप बेचैन न होगा।"

दोपहर के बाद का समय था। सीने में साँस घड़-घड़ा रही थी। इतने में आप *(सल्ल.)* के होंठ हिले और कानों में यह आवाज़ आई—

"नमाज़ और ग़ुलामों से अच्छा सुलूक।"

फिर हाथ ऊपर उठे। आप *(सल्ल.)* ने उँगली से इशारा किया और फ़रमाया, "अब और कोई नहीं। बस वही सबसे बड़ा साथी।"

यही कहते-कहते हाथ लटक आए। आँखें छत से लग गईं और पवित्र आत्मा रब से जा मिली।

सोमवार का दिन था। रबीउल-अव्वल की बारह तारीख़ थी। हिजरत का ग्यारहवाँ साल था। जाँनिसारों की नज़र में दुनिया अँधेरी हो गई और दिल की बस्ती में सन्नाटा छा गया। 'निस्सन्देह हम अल्लाह ही के हैं और बेशक उसी की ओर लौटने वाले हैं। ऐ अल्लाह! सलामती हो प्यारे नबी पर, उनकी सन्तान पर और उनके सब साथियों पर।'

इन्तिक़ाल के समय आप *(सल्ल.)* की उम्र 63 साल थी।

(4)

'क्या सचमुच अल्लाह के रसूल चल बसे?'

जो मुसलमान भी यह दिल दहलानेवाली ख़बर सुनता, उसकी ज़बान पर यह सवाल आ जाता।

यह कैसे सम्भव है? अभी कुछ ही घण्टे पहले तो उन्होंने आप *(सल्ल.)* को देखा था। आपने उनसे बातें भी की थीं।

यह कैसे मुमकिन है?

आप *(सल्ल.)* तो अल्लाह के चहेते हैं। अल्लाह ने आपको नबी बनाया है। आप हज़ारों लोगों के लिए आँखों की ठण्डक और दिल का सुकून हैं।

यह कैसे मुमकिन है?

आप *(सल्ल.)* तो एक ईश्वरीय शक्ति हैं। आप ही ने तो पूरी दुनिया को हिलाकर रख दिया। तमाम शैतानी ताक़तों को धूल चटा दी। ऐसा नहीं हो सकता।

यह कैसे मुमकिन है?

आप *(सल्ल.)* ही ने तो इनसानों को अँधेरे से उजाले में पहुँचाया है। गुमराही से निकाल कर सीधे रास्ते पर लगाया है। अब कौन इन्हें सँभालेगा? कौन इनका रहनुमाई करेगा?

यह कैसे मुमकिन है?

आपकी मृत्यु से तो वह्य रुक जाएगी, जो अब तक किसी नबी की मृत्यु से नहीं रुकी।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने यह ग़मनाक ख़बर सुनी तो पाँवों तले से ज़मीन सरक गई। वे अन्धाधुन्ध आइशा *(रज़ि.)* के घर की तरफ़ दौड़े कि इस बुरी ख़बर की मालूमात करें। पहुँचे तो वहाँ आप *(सल्ल.)* की पवित्र देह पर चादर पड़ी थी।

हज़रत उमर *(रज़ि.)* ने चहरे से चादर हटाई। देखा तो आप *(सल्ल.)* बिलकुल बेहरकत थे। अब शक की क्या गुंजाइश थी? मौत का यक़ीन करना ही पड़ा। एक ज़रा सी आस थी। वह आस भी जाती रही। उनपर ग़मों का पहाड़ टूट पड़ा। वे कलेजा पकड़ कर रह गए।

फिर वे मस्जिद गए। देखा तो लोग सिसकियाँ ले रहे थे। रोते-रोते लोगों का बुरा हाल था। आँसू थे कि थमते ही न थे। किसी को सब्र आए तो कैसे आए! दिल को क़रार आए तो कैसे! आज सभी साथियों के दिल शोकाकुल थे। आँखें सजल थीं। कलेजे मुँह को आ रहे थे। आज किसी से किसी की हालत देखी न जाती थी।

आप *(सल्ल.)* के इन्तिक़ाल की दुख भरी ख़बर हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* को भी मिली। सुनते ही वे तड़प उठे। तुरन्त मस्जिद पहुँचे। वहाँ सच्चे साथियों की भीड़ थी। हर एक बेक़रार था। दुख से निढाल था। वे किसी से कुछ न बोले। सीधे हज़रत आइशा *(रज़ि.)* के घर गए। प्यारे नबी *(सल्ल.)* के शरीर पर चादर थी। चेहरे से चादर हटाई। माथा चूमा। फिर फ़रमाया : "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे माँ-बाप आप पर क़ुरबान!

अल्लाह के रसूल *(सल्ल.)* आपके चले जाने से तो पैग़म्बरी का

सिलसिला ख़त्म हो गया। जो किसी भी पैग़म्बर के जाने से ख़त्म नहीं हुआ।

अल्लाह के रसूल आपकी महानताएँ न ज़बान से बयान हो सकीं, न आँसुओं से उनका हक़ अदा हो सके।

अल्लाह के रसूल अगर यह मौत ख़ुद आपकी पसन्द की हुई न होती तो आपको बचाने के लिए हम अपनी जानें पेश कर देते और अगर आपने रोने से मना न किया होता तो आप पर रोते-रोते अपनी आँखें ख़ुश्क कर लेते। अलबत्ता जो चीज़ हमारे अधिकार में नहीं वह दुख और ग़म की वह आग है जो कभी ठण्डी होनेवाली नहीं। ऐ अल्लाह तू नबी की ख़िदमत में हमारा सलाम पहुँचा दे।

ऐ मुहम्मद! अपने रब के यहाँ हमें भी याद कीजिएगा। अपने मुबारक दिल में हमारी यादों के चिराग़ रौशन रखिएगा।

अल्लाह के रसूल! अगर आप हमारे लिए शान्ति और इत्मीनान का सामान न छोड़ जाते तो आपके चले जाने से जो नीरसता उत्पन्न हो गई है उसके साथ हम जीवित न रह पाते। ऐ अल्लाह। हमारा यह पैग़ाम अपने नबी को पहुँचा दे और हमारे अन्दर उनके मिशन को ग़ालिब कर दे।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने इस तरह सहसा अपना दर्दे-दिल कह सुनाया। ख़ुद भी रोए और दूसरों का भी रूलाया। फिर वापस मस्जिदे नबवी आए तो देखा कि हज़रत उमर *(रज़ि.)* की तक़रीर हो रही थी। वे लोगों को समझा रहे थे। हज़रत अबू-बक्र को देखकर लोग उनके पास जमा होने लगे। जब सारे लोग जमा हो गए तो हज़रत अबू-बक्र ने यह तक़रीर की—

''लोगो! अगर कोई मुहम्मद *(सल्ल.)* की बन्दगी करता था तो मुहम्मद *(सल्ल.)* तो इस दुनिया से जा चुके और अगर कोई अल्लाह की बन्दगी करता था तो अल्लाह ज़िन्दा है। उसके लिए कभी मौत नहीं।

मुसलमानो! अल्लाह ने तो तुम्हें पहले से ही नबी *(सल्ल.)* की मौत की ख़बर दे दी थी। तो तुम ग़म की शिद्दत में इस बात को भूल न जाओ।

मुसलमानो! हमारे इत्मीनान के लिए क्या यह बात काफ़ी नहीं कि अल्लाह ने अपने नबी के लिए इस दुनिया की परेशानियों के बजाए

अपने पास से सुख-चैन और आराम को पसन्द किया। उसने आप *(सल्ल.)* को इस दुनिया से उठा लिया और अपने इनाम और नवाज़िश की दुनिया में पहुँचा दिया और तुम्हारे अन्दर अपनी किताब और अपने नबी की सुन्नत बाक़ी रखी। जो इन को दोनों पकड़े रहेगा वह नेकी की राह पर क़ायम रहेगा और जो इन दोनों को अलग-अलग करेगा वह ग़लत राह पर जा पड़ेगा।

मुसलमानो! होशियार रहो। शैतान तुम्हें तुम्हारे नबी की मौत में व्यस्त न कर दे और इस तरह तुम्हें तुम्हारे दीन से दूर न कर दे।

तुम जल्द से जल्द वह तरीक़ा और वह अन्दाज़ इख़्तियार करो जिससे शैतान को नाकाम कर सको। उसे इतनी मोहलत न दो कि वह तुम्हारा आशियाना तबाह कर डाले।

फिर क़ुरआन की यह आयत पढ़ी—

> "और मुहम्मद तो बस अल्लाह के रसूल हैं। उनसे पहले बहुत से नबी गुज़र चुके। क्या अगर वे मर जाएँ या (अल्लाह की राह में) मारे जाएँ तो क्या तुम उलटे पाँव इस्लाम से फिर जाओगे? और जो कोई फिर जाएगा वह अल्लाह का कुछ नहीं बिगाड़ेगा और अल्लाह इस नेमत की क़द्र करनेवालों को अच्छा बदला देगा।" (क़ुरआन, 3:144)

यह था वह विवेकपूर्ण भाषण, जो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उस समय दिया। मुसलमानों ने सुना तो उनकी आँखें खुल गईं और इस कड़वी हक़ीक़त का उन्हें यक़ीन करना पड़ा। सबको ऐसा महसूस हुआ कि यह आयत आज ही उतरी है। हर मुसलमान की ज़बान पर यही आयत थी। और इसी की चर्चा थी।

मुसलमानों के दिल आप *(सल्ल.)* के प्रेम और श्रद्धा से भरे हुए थे। आपके इन्तिक़ाल की ख़बर उनपर बिजली बनकर गिरी। सुनते ही वे बदहवास हो गए। उनपर ग़म के बादल घिर आए और निराशा की घटा छा गई। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने क़ुरआन की आयत पढ़ी तो उनकी आँखें खुलीं और उन्हें होश आया।

हज़रत उस्मान *(रज़ि.)* का क्या हाल था? उनके भी होश गुम थे और ग़म इतना ज़्यादा था कि ज़बान पर ताला लग गया था।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-उमर *(रज़ि.)* फ़रमाते हैं, "यों समझना चाहिए

जैसे हमारी आँखों पर पर्दे पड़े थे। वे पर्दे हट गए।"

यही नहीं, बल्कि तमाम मुसलमानों का यही हाल था, लेकिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने भाषण दिया तो सबकी आँखें खुल गईं। उन्हें यक़ीन हो गया कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* सचमुच अल्लाह को प्यारे हो गए।

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* का इस अवसर पर क्या हाल था? वे धैर्य और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति और संयम का पहाड़ थे। वे इस नाज़ुक मोड़ पर सही रहनुमाई का बेहतरीन नमूना थे।

हज़रत अबूबक्र *(रज़ि.)* को प्यारे नबी *(सल्ल.)* से कम मुहब्बत न थी। वफ़ादारी और जाँनिसारी में भी वे किसी से पीछे न थे। पहले उल्लेख हो चुका है कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* ने जब क़ुरआन की यह आयत पढ़ी—

"आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारा दीन पूरा कर दिया और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दी और तुम्हारे लिए दीन इस्लाम को पसन्द किया।"

तो हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* रोने लगे और जब यह सूरः उतरी—

> "जब अल्लाह की मदद आ जाए और विजय प्राप्त हो जाए और तुम देखो कि लोग अल्लाह के दीन में गरोह के गरोह दाख़िल हो रहे हैं, तो अपने रब की तारीफ़ और शुक्र अदा करो और उससे नजात की दुआ करो। वह तो बहुत ज़्यादा तौबा क़बूल करनेवाला है।' (क़ुरआन-सूरा नस्र)

तब भी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* बेक़ाबू हो गए थे और आँखों से आँसुओं की झड़ियाँ लग गई थीं, क्योंकि वे समझ गए थे कि अब आप *(सल्ल.)* के दिन निकट आ गए हैं और यह बुरा दिन देखने के लिए पहले ही से तैयार हो गए।

यही वजह है कि प्यारे नबी *(सल्ल.)* का इन्तिक़ाल हुआ तो हर तरफ़ कुहराम मच गया। मुसलमान कलेजा थाम-थाम कर रोने लगे। कितने ही बेख़ुद और बदहवास हो गए, लेकिन हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* धैर्य और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति बने रहे और इस नाज़ुक समय में उन्होंने मुसलमानों की सही रहनुमाई करते रहे।

(5)

यह अल्लाह के इस्लाम दीन पर बहुत बड़ी मेहरबानी है और मुसलमानों के साथ बहुत बड़ा एहसान है कि ऐसे ख़तरनाक समय में हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ने उनको सही राह सुझाई, फिसलते हुए उन्हें सँभाल लिया और उनमें फूट पड़ने से बचा लिया।

प्यारे नबी *(सल्ल.)* का पवित्र पार्थिव शरीर ढका हुआ था। हज़रत उमर *(रज़ि.)* अपने पर क़ाबू नहीं पा रहे थे। सारे मुसलमान बेख़ुद और बदहवास थे और हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* उन्हें समझा रहे थे कि यह ख़ुदा की मर्ज़ी है। मोमिन की शान यह है कि वह ख़ुदा की मर्ज़ी को ख़ुशी-ख़ुशी गवारा करे। उसके हर फ़ैसले को अपने लिए बेहतर समझे। सदैव उसकी इच्छा पर सन्तुष्ट रहे। इतने में एक आदमी दौड़ा हुआ आया और उसने कहा—

"अबू-बक्र! उमर! सब अनसार जमा हैं। अपने में ख़लीफ़ा चुन रहे हैं। जल्दी चलो, वरना एक फ़ितना उठ खड़ा होगा। मुसलमानों में फूट की आग भड़क उठेगी।"

हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* और हज़रत उमर *(रज़ि.)* फ़ौरन दौड़े हुए गए। हज़रत अबू-उबैदा *(रज़ि.)* भी साथ थे। देखा तो वास्तव में सारे अनसार जमा थे। कुछ मुहाजिर भी वहाँ मौजूद थे। ख़ूब गर्मागर्म बहसें और एक-दूसरे पर चोटें हो रही थीं।

उन लोगों ने पहुँचकर हालात पर क़ाबू पाया। हिकमत से लोगों को समझाया-बुझाया। आख़िर सबने सलाह की। हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* ख़लीफ़ा चुन लिए गए। सारा झगड़ा ख़त्म हो गया।

आप *(सल्ल.)* का पवित्र पार्थिव शरीर उसी तरह रखा था। घर और ख़ानदान के लोग उसे घेरे हुए थे और आप *(सल्ल.)* को आँसुओं की श्रद्धांजलि अर्पित कर रहे थे।

ख़लीफ़ा का चुनाव हो चुका तो आप *(सल्ल.)* के कफ़न-दफ़न का इन्तिज़ाम हुआ। आप *(सल्ल.)* को नहलाया गया। नहाने के बाद तीन कपड़ों में कफ़न दिया गया। फिर मुसलमानों को मौक़ा दिया गया कि महबूब *(सल्ल.)* पर आख़िरी नज़र डाल लें और दुआ व नमाज़ से भी निबट लें।

आप *(सल्ल.)* के पवित्र शव के आस-पास साथियों की भीड़ थी कि प्रेम और श्रद्धा में डूबी हुई यह आवाज़ कानों में आई—

"ऐ अल्लाह के रसूल! सलामती हो आप पर!

ख़ुदा की रहमतें और बरकतें हों आप पर!

हम गवाह हैं कि आपने रब का पैग़ाम पहुँचा दिया।

और दीन के लिए जान लड़ाते रहे। यहाँ तक कि अल्लाह ने उसे ग़ालिब कर दिया।"

यह आवाज़ आप *(सल्ल.)* के गुफा के साथी हज़रत अबू-बक्र *(रज़ि.)* की आवाज़ थी।

मर्द नमाज़ से निबटे तो औरतों की बारी आई। फिर बच्चों को भी मौक़ा दिया गया। लोग विकल आते थे और सजल नेत्र लिए वापस जाते थे।

इन्तिक़ाल के दो दिन बाद आप *(सल्ल.)* क़ब्र में लिटाए गए और फिर क़ियामत तक के लिए निगाहों से ओझल हो गए।

मुहम्मद (सल्ल॰) की सीरत और हदीस पर हमारी हिन्दी पुस्तकें

क्रान्ति-दूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰)	नईम सिद्दीक़ी
जिसका इन्तिज़ार था	माहिरुल क़ादिरी
जगत-गुरु	अबू ख़ालिद
रह्‌मतुल-लिल-आलमीन	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
विश्व-नायक	डॉ॰ कौसर यज़दानी नदवी
विश्व-नेता हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰)	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
हज़रत मुहम्मद : एक संक्षिप्त परिचय	डॉ॰ मुहम्मद अहमद
रिसालत	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
अल्लाह के रसूल का व्यवहार अपने शत्रुओं के साथ	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
क़ुरआन और पैग़म्बर	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
प्यारे नबी ऐसे थे!	माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी कैसे थे?	इरफ़ान ख़लीली
हज़रत मुहम्मद का आदर्श	श्री नाथूराम
हज़रत मुहम्मद सल्ल॰ का सन्देश	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
हज़रत मुहम्मद स॰ जीवन और सन्देश	मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी
हदीस क़ुदसी	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
हदीस प्रभा (सफ़ीन-ए-नजात)	मौलाना जलील अहसन नदवी
हदीस शास्त्र एक परिचय	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
हदीस सौरभ (पहला भाग)	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
हदीस सौरभ (दूसरा भाग)	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ

हमारी अन्य इस्लामी पुस्तकें

अनूदित क़ुरआन	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
तलख़ीस तफ़हीमुल क़ुरआन भाग-1	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
तलख़ीस तफ़हीमुल क़ुरआन भाग-2	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
सूरा फ़ातिहा	मौलाना फ़ारूक़ ख़ाँ
इनसान की आर्थिक समस्या और उसका इस्लामी हल	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इस्लाम धर्म	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इस्लाम एक सिद्धान्त, एक आन्दोलन	मरयम जमीला
इस्लाम की जीवन-व्यवस्था	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इस्लाम भविष्य की आशा	सय्यद क़ुतुब
क़ुरआन सबके लिए	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
परदा	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
परलोक की छाया में	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
परलोकवाद और भारतीय धर्म-ग्रन्थ	मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ
बनाव-बिगाड़	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
शराब	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इस्लाम दर्शन	डॉ॰ गणेशदत्त सारस्वत
शान्ति मार्ग	मौलाना सय्यद अबुल आला मौदूदी
इस्लाम आप से क्या चाहता है?	मौलाना सय्यद हामिद अली
औरत और इस्लाम	मौलाना सय्यद जलालुद्दीन उमरी
नमाज़	नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
इस्लाम में पाकी और सफ़ाई	नसीम ग़ाज़ी फ़लाही

सम्पूर्ण पुस्तक सूची मुफ़्त मँगाएँ